जैनागमों में भगवान महावीर

[आगमो के आधार पर भगवान महावीर का जीवन चरित्र]

लेखक

श्री हीरामुनि 'हिमकर'

प्रस्तावना

श्री देवेन्द्रमुनि, शास्त्री

सम्पादन

साध्वी चन्दनबाला 'शास्त्री'

प्रकाशक

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

शास्त्री सर्कल, उदयपुर

○ पुस्तक :

जैनागमों में भगवान महावीर

○ लेखक

श्री हीरामुनि 'हिमकर'

○ सम्पादन

साध्वी चन्दनबाला, शास्त्री

○ प्रकाशन व्यवस्थापक :

सुगनराज मूकड़,
श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ, समदड़ी (राज०)

○ प्रथमावृत्ति

वि० सं० २०३५ आश्विन (विजयादशमी)
वीर निर्वाण सं० २५०४
ई० सन् १९७८ अक्टूबर

○ प्राप्ति स्थान

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर

○ मुद्रक

श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२

जिन महासतीजी के सद्वोध से प्रेरित हो,
मैंने सयम-पथ पर कदम वढाया, तथा
आत्म-विकास हेतु मार्गदर्शन मिलता रहा,

जिनके जीवन मे—

ज्ञान - दर्शन - चारित्र - वैराग्य - तप की
रश्मियाँ सदा आलोकमान रही हे,

उन,

अमर-गच्छीय वालब्रह्मचारिणी, विदुपी
सद्गुरुणी श्रद्धेया श्री शीलकुँवर जी महाराज

के कर कमलो मे

जोधपुर
१३।१०।७८

—हीरामुनि 'हिमकर'

महास्थविर पूज्य गुरु महाराज श्री ताराचंद्र जी म०

अमर पूज्य गुरु ताराचन्द,
घर-घर में करदे आनन्द।

जन्म वि० सं० १९४०	दीक्षा वि० सं० १९५०	स्वर्गवास सं० २०११
आश्विन शुक्ल चतुर्दशी	ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी,	कार्तिक चतुर्दशी,
बम्बोरा (मेवाड़)	समदड़ी (मारवाड़)	लाल भवन, उदयपुर

आशीर्वचन

विश्व ज्योति भगवान् महावीर का जीवन इन्द्रधनुष की तरह रग-विरगा और विराट् है। जैसे इन्द्रधनुप का रग-विरगा रूप आकाश मे परिव्याप्त रहता है, उसी तरह भगवान महावीर का जीवन भी भारतीय सस्कृति मे व्याप्त है। वे ज्योतिर्मय महापुरुष थे। उनके जीवन की प्रकाश-रेखाएँ जीवन की एक दिशा को ही नही, सभी दिशाओ को छूती रही है। यही कारण है कि पच्चीमसौ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी उनकी जीवन-रेखा धुधली नही पडी है। शताधिक लेखको ने प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश भापाओ मे ही नही, अपितु प्रान्तीय भापाओं में भी उनके पवित्र चरित्र का उट्टकन किया है। निर्वाण शताब्दी के सुनहरे अवमर पर तो भगवान महावीर के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक विराटकाय ग्रन्थ और अनेक लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई। उसी लडी की कडी मे "जैन आगमो मे भगवान महावीर" ग्रथ भी है। इस ग्रथ मे आगम साहित्य और उसके व्याख्या साहित्य के आलोक मे श्री हीरामुनिजी ने भगवान महावीर के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व को बाँधने का प्रयास किया है। प्रस्तुत ग्रथ पाठको को भगवान महावीर के सम्बन्ध मे खासी अच्छी जानकारी प्रदान करेगा।

लेखक के मन मे एक उत्साह है, उमग है। निठल्ले बैठे रहने की अपेक्षा कुछ न कुछ करते रहना अच्छा है, इसी पवित्र भावना से उत्प्रेरित होकर वह लिखता रहा है। वह अधिक मे अधिक ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे प्रगति करे—यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है।

जैन स्थानक
मिंट स्ट्रीट, मद्रास
३१-१०-१९७८

—उपाध्याय पुष्कर मुनि

भगवान महावीर का पवित्र चरित्र अक्षय प्रेरणाओ का स्रोत है। त्याग, वैराग्य, तितिक्षा, समता, सत्यनिष्ठा और जीवत साहस की अगणित लहरे उस महासागर मे लहरा रही है। जो उसका सच्चे मन से पठन एव स्वाध्याय करता है उसका जीवन भी समता की शीतलता और धैर्य-तितिक्षा की तेजस्विता से दमक उठता है। आज तक सैकडो-हजारो लेखको ने उस गौरव-मडित जीवन गाथा का गान कर अपनी वाणी तथा लेखनी को पवित्र किया है।

श्री हीरामुनिजी 'हिमकर' भी उस महिमामय परम-पुरुष के यशोगान मे पीछे कैसे रहते? ये भी तो एक भावनाशील सत है, उसी महाप्रभु के चरण-शरण मे समर्पित जीवन है। मन-वचन से सरल, शान्तिप्रिय और भद्रहृदय श्री हीरामुनिजी ने अत्यन्त ही श्रम करके जैन आगमो के अनुसार प्रभु महावीर के जीवन की दिव्य रेखाओ का सरल-सहज अकन किया है।

भले ही शब्दचातुर्य और भाषा-सौन्दर्य की छटा न चमकी हो, पर उनकी स्वाभाविक सरल भाषा और सहज अभिव्यजना उस महान चरित्र की गरिमा को व्यक्त तो करती ही है। पाठक और स्वाध्यायप्रेमी भक्त इसके अध्ययन-मनन से प्रेरणा और आत्मतुष्टि अनुभव करेगे, ऐसा विश्वास करता है।

श्री हीरामुनिजी की अनेक रचनाएँ मै देख चुका है, उनमे सर्वत्र सरलता रहती है। इसी प्रकार यह ग्रन्थ भी उनकी सहज लेखनी का सुन्दर दर्पण सिद्ध होगा।

—उपाध्याय अमरमुनि

शान्त स्वभावी उप-प्रवर्तक-स्वाध्यायप्रेमी

श्री हीरामुनि जी महाराज 'हिमकर'
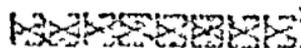
प्राक्कथन

श्री वर्द्धमान गुण - सन्निधानम,
सिद्धालये शाश्वत - राजमानम् ।
धर्मोपदेशादि विधेनिधानम्,
नमामि भक्त्या जगति प्रधानम् ॥

मै इष्टदेव के श्रीचरणो मे अपनी श्रद्धा के पुष्पाजलि रूप विचार अर्पित करता हूँ। भगवान महावीर स्वामी का परिचय लम्बे समय के बाद मिला। कारण मेरा जन्म देहाती राजपूत जाति मे हुआ। बीस वर्ष की वय होने पर जैन धर्म के सस्कार प्राप्त हुए। विक्रम सवत् १९९४ के माघ मास मे गुरुणीजी श्री महासतीजी श्री शीलकुँवरजी म० सा० ने समकित तत्त्व समझाकर जैनधर्म का श्रद्धालु बनाया।

स्व० श्री गुरु महाराज श्री मरुधर मत्री महास्थविर श्री ताराचन्दजी म० सा० की छत्रछाया (नेश्राय) मे श्री महासतीजी म० सा० ने पहुँचाया। मेरी जन्मभूमि अरावलि पहाड की विकट चोटियो के बीच भोमट मे समीजा गाव है। उसी के समीप मादडा गाव मे वि० सवत् १९९५ को पोप वदि ५ के दिन भागवती दीक्षा अगीकार की। २१ वर्ष की उम्र मे मुनि बन कर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पूज्य गुरु म० सा० की हाजरी मे रहते हुए लगभग पन्द्रह वर्ष तक पढता रहा। मेरे शिक्षा-जीवन के सह-पाठी श्री देवेन्द्र मुनि का बहुत सहयोग रहा और इसी बीच में मेरे पूज्य गुरु महाराज सा० की माला की साधना देखते-देखते मेरा मन स्वत सस्कारित बन गया, फलस्वरूप—"नमो समणस्स भगवओ महावीरस्स" इस जाप की धुन चढ गई।

धीरे-धीरे अनुभव की आखे खुली। जीवन मे आचार-विचार को पाँचे पावन एव बलवती बनाकर पवित्र शुद्ध जाप किया जाय तो आध्यात्मिक

अनुभव की सफलता जरूर प्राप्त होती है। मेरी धर्म-जागरणा की जडे जम गई।

जैन धर्म की आराधना मे साधको के लिए दो जाप ही आराधनीय माने गये है "नवकार मत्र" अपर "तीर्थंकर नाम"। आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने योगशास्त्र मे जाप का महत्त्व दिया है—कर्मयोग, उर्णयोग (जाप), ज्ञानयोग, अवलम्बनयोग और रहितयोग।

मेरे पूज्य गुरु म० सा० ने जाप का इतना पवित्र मार्गदर्शन दिया कि मै अभी भी उन्ही की देन समझता हूँ। मै अपने शिक्षण जीवन से जैन धर्म की बुनियाद को समझ पाया और लेखन कार्य मे आगे से आगे बढता रहा। वि० सवत् २०१० के जयपुर चातुर्मास, २०११ के देहली चातुर्मास मे साहित्य रचना का प्रथम पुष्प स्व० पूज्य गुरु म० सा० का जीवन चरित्र "जीवन पराग" तैयार किया। जोधपुर और व्यावर के चातुर्मास मे "जैन जीवन" लिखा, नाथद्वारा, पदराडा चौमासे मे 'विचार ज्योति' लिखी, बम्बई वालकेश्वर चौमासे मे 'सुबाहु कुमार' (सुख विपाक) तैयार किया, घोडनदी और पूना के वर्षावास मे "मेघचर्या' (ज्ञातासूत्र का प्रथम अध्याय) लिखी। मेरे इन प्रकाशनो के प्रसग पर उपाध्याय, कविरत्न, राष्ट्र सन्त, श्रीअमरचन्द्रजी म० सा० ने आशीर्वचन भेजकर मेरे दिल और दिमाग का उत्साह आगे बढा दिया। बम्बई कान्दावाडी के चौमासे मे भगवान महावीर का जीवन लिखने के लिए सूत्र सोचा, मगर मार्गदर्शन नही हो पा रहा था। साण्डेराव सम्मेलन मे पहुँचे। वहाँ श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना मिले। सुरानाजी बोले —जिस शैली मे आपने सुबाहु कुमार, मेघचर्या आदि पुस्तके लिखी है उसी शैली मे महावीर जीवन भी लिख दीजिए चूंकि यह शैली जनता मे अच्छी रुचिकर हो रही है। इसी प्रकार श्रीमान् प० शोभाचन्दजी सा० भारिल्ल (व्यावर) भी समय-समय पर मुझे इसी प्रकार का मार्गदर्शन देते रहे है।

इन चोटी के विद्वान् सज्जनो का मार्गदर्शन प्राप्त होने पर मैने यह साहित्य सर्जन प्रारम्भ किया। टोलगाव के चातुर्मास मे इस कार्य को हाथ मे लिया। उस समय प० श्री पुनीत मुनिजी का सहयोग सराहनीय रहा। हर तरह से इनसे मुझे मदद मिली। इसी प्रकार अजमेर मे भी मुनिजी का सहयोग सदा रहा और बार-बार मुझे प्रेरित करते रहे तथा लेखन का कार्य भी उन्होने किया।

होने के बाद वहाँ भगवान के चतुर्मासो का कोई क्रम नही मिला। दूसरा प्रश्न आया कि चौदह हजार शिष्य हुए उनमे कौन कब किस चातुर्मास मे या शेषकाल मे बने होगे जैसे धन्ना और शालिभद्र राजगृह नगर निवासी, दूसरे धन्नाजी काकन्दी नगरी के निवासी इनमे आगे-पीछे कौन बना आदि। समाधान हेतु उसी समय हमने मूर्धन्य मुनिराजो की सेवा मे पत्राचार किया। उपाध्यायश्री कविजी म० सा० की सेवा मे, पूज्य हस्तीमल जी म० सा० की सेवा मे, उपाध्याय मिश्रीमलजी (मधुकर) की सेवा मे एवम् साहित्यरत्न देवेन्द्र मुनि की सेवा मे। प्राय सभी पत्रो के उत्तर आये मगर समाधान सन्तोषप्रद नही रहा।

जोधपुर के चातुर्मास मे 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' लेखक श्री देवेन्द्र मुनिजी म०, 'तीर्थंकर महावीर' सम्पादक श्रीचन्दजी सुराना का प्राप्त हुआ, तब मिलान किया घटना चक्र ठीक नही मिला तो मैने शुरू से दुबारा लिखा, उसमे 'अनुशीलन' का विशेष आधार रखा गया। इस प्रकार अनेकानेक विघ्न आते रहे।

यो देखा जाय तो मेरी जीवन यात्रा मे अनेक सघर्ष आये, उतार-चढाव आये मगर मैं अपने साधना क्षेत्र मे बढता ही चला गया। मेरे जीवन मे आज्ञारुचि अच्छी बनी रहती है।

पूज्य श्री ताराचन्द जी म० की सेवा मे और मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता आदरणीय पूज्य उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी की सेवा मे ही प्राय चौमासे मेरे हुए है। कभी कभी प्रसग एवम् परिस्थिति वश पृथक चौमासे भी किये, जैसे कि अभी चार वर्ष हुए उपाध्यायजी के दर्शन नही हो रहे हैं। कारण अजमेर चातुर्मास के पश्चात् आज्ञा प्राप्त कर आँख के इलाज हेतु हम ठाणे २ जोधपुर चले गये और आपका विहार ठाणा ५ से अहमदाबाद की ओर हो गया।

अभी आप मद्रास मे विराज रहे है।

जोधपुर चातुर्मास मे महास्थविर श्रीव्रजलाल जी म० सा०, उपाध्याय श्री मधुकर जी म० सा० और विनय मुनि ठाणा ३ का खूब ही प्रेम रहा। श्री मधुकर मुनिजी म० सा० का सहयोग एवम् स्नेहसिक्त व्यवहार इतना बढिया रहा कि मै अपने लेखन कार्य मे आराम से दत्तचित्त रहा।

सं० २०३२ तथा २०३३ का वर्षावास क्रमानुक्रम उदयपुर और फिर देलवाडा हुआ। मेवाड भूषण प्रवर्त्तक श्री अम्बालाल जी म० सा०, तपस्वी

प्रस्तावना

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व के भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करते है तो हृदय मन्न रह जाता है। यह विश्वास ही नही हो पाता कि क्या भारतीय संस्कृति इतनी विकृत, इतनी गंदली, इतनी तिरस्कृत बन सकती है? सत्ता, महत्ता, प्रभुता व अधविश्वास के नाम पर इतने अधिक अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचार पनप सकते है?

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि उस युग का मानव दानव बन चुका था। धर्म के नाम पर, संस्कृति के नाम पर, सभ्यता के नाम पर वह मूक पशुओ के प्राणो के साथ खिलवाड कर रहा था। जातिवाद, पथवाद और गुरुडमवाद का स्वर इतना तेजस्वी बन चुका था कि मानवता की आवाज सुनाई नही दे रही थी। स्त्री जाति की दशा भी दयनीय थी। वह गृहलक्ष्मी के पद से हटकर गृहदासी बन गई थी। मानवीय आदर्शो के लिये वस्तुत वह एक प्रलय की घडी थी। ऐसी विकट परिस्थिति मे चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मध्य रात्रि मे क्षत्रियकुण्ड मे भगवान महावीर का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम त्रिशला[1], पिता का नाम सिद्धार्थ[2], बड़े भाई का नाम नन्दीवर्द्धन, बहन का नाम सुदर्शना[4], पत्नी का नाम यशोदा[5] और पुत्री का नाम प्रियदर्शना[6] था। विदेह गणराज्य के मनोनीत अध्यक्ष चेटक उनके मामा थे।[7]

---

१ आचारांग, द्वि० श्रु० भावनाधिकार, कल्पसूत्र पुण्य० सू० १०५, पृ० ३३ ।
२ आचारांग, द्वि० श्रु०, कल्पसूत्र, सू० १०५, पृ० ३६ ।
३ कल्प० सू० १०५, पृ० ३६ ।
४ (क) आचा० द्वि० श्रु० भा० ।
(ख) कल्पसूत्र, सूत्र १०५ पृ० ३६ ।
५ (क) आचारांग, द्वि० श्रु० भा० ।
(ख) कल्प०, सू० [illegible], पृ० ३६ ।
६ [illegible] ।
७ [illegible] चूर्णि, [illegible], पृ० [illegible] ।

बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले मे जो वर्तमान मे बसाढ गांव (वैशाली नगरी) है, वही एक समय मे इतिहास प्रसिद्ध गणतन्त्रो की राजधानी थी। वैशाली के पास ही क्षत्रियगण की राजधानी थी। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक डाक्टर हर्मन जैकोबी और डाक्टर ए० एफ० आर० हार्नल आदि का मन्तव्य है कि वैशाली नगरी, जिसका वर्तमान मे "बेसाडपट्टी" (बसाट) नाम है उसका उपनगर ही वस्तुत क्षत्रियकुण्ड है। वैशाली के सन्निकट होने से महावीर को आगमो मे वैशालिक[८] भी कहा गया है।

जब भ० महावीर गर्भ मे आये थे तब धन-धान्य की विशेष समृद्धि होने से उनका नाम वर्धमान[९] हुआ और ज्ञातृकुल मे उत्पन्न होने से दूसरा नाम "नायपुत्त" (ज्ञातपुत्र या नातपुत्र) रखा गया। आचारांग[१०], सूत्रकृतांग[११], भगवती[१२], उत्तराध्ययन[१३], दशवैकालिक[१४] आदि मे प्रस्तुत नाम का स्पष्ट उल्लेख अनेक स्थलो पर हुआ है। विनयपिटक[१५], मज्झिम-

---

८ (क) भगवती० श० २, उ० १० ।
   (ख) भगवती० श० १२, उ० २ ।
   (ग) उत्तरा० अ० ६, गा० १८ ।
९ (क) आचा० श्रु० २, अ० १, ९९५ ।
   (ख) कल्प० सू० १०३, पृ० ३५ ।
१० (क) आचारांग द्वि० श्रु० अ० १५, सूत्र० १००३ ।
   (ख) आचा० श्रु० १, अ० ८, उ० ८, ४८८ ।
११ (क) सूत्र० उ० १, गा० २२ ।
   (ख) सू० श्रु० १, अ० ६, गा० २ ।
   (ग) सू० श्रु० १, अ० ६, गा० २४ ।
   (घ) सूत्र० श्रु० २, अ० ६, गा० १९ ।
१२ भगवती श० १५, ७९ ।
१३ उत्तरा० अ० ६, गा० १७ ।
१४ (क) दश० अ० ५, उ० २, गा० ४९ ।
   (ख) दश० अ० ६, गा० २१ ।
१५ महावग्ग पृ० २४२ ।

निकाय[16], दीघनिकाय[17], सुत्तनिपात[18] में भी यह नाम मिलता है। इस नाम के पीछे एक भावना है।

श्री जिनदास महत्तर और अगस्त्यसिंह स्थविर के कथनानुसार 'ज्ञात' क्षत्रियों का एक कुल या जाति है। वे ज्ञात शब्द से ज्ञातकुल समुत्पन्न सिद्धार्थ का ग्रहण करते हैं और ज्ञातपुत्र से महावीर का[19]। आचार्य हरिभद्र ने "ज्ञात" का अर्थ उदार क्षत्रिय सिद्धार्थ किया है। प्रो० वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय के अनुसार लिच्छवियों की एक शाखा या वंश का नाम 'नाय' (नात) था। 'नाय' शब्द का अर्थ संभवत ज्ञाति[20] है।

जैनागमों में एक आगम का नाम 'नायधम्मकहा' है। यहाँ 'नाय' शब्द भगवान के नाम का प्रतीक है। 'नायधम्मकहा' को दिगम्बर साहित्य में 'नाथधम्मकहा' कहा गया[21] है। 'धनंजय नाममाला' में भी महावीर का वंश 'नाथ' माना है और उन्हें 'नाथान्वय' कहा[22] है। संभवत 'नाय' शब्द का ही 'नाथ' और 'नात' अपभ्रंश हो गया है।

---

१६ (क) उपालि-सुत्तन्त पृ० २२२।
(ख) चूल-दुक्ख-क्खन्ध-सुत्तन्त पृ० ५६।
(ग) चूल सारोपम-सुत्तन्त पृ० १२८।
(घ) महा० सच्चक सुत्तन्त पृ० १४७।
(ङ) अभयराज कुमार सुत्तन्त पृ० २३४।
(च) देवदह सुत्तन्त पृ० ४२८।
(छ) सामगाम सुत्तन्त पृ० ४४१।

१७ (क) सामञ्ञफल सुत्त पृ० १८-२१।
(ख) संगीति परियाय सुत्त २८२।
(ग) महापरिनिब्बाण सुत्त पृ० १४५।
(घ) पासादिक सुत्त २५२।

१८ सुभिय सुत्त पृ० १०८।

१९ (क) दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ० २२१। (ख) अगस्त्यचूर्णि।

२० जैन भारती वर्ष २, अं० २४, २५, पृ० २३९।

२१ जयधवला, भाग १, पृ० १२५।

२२ धनंजय नाममाला ११५।

सूत्रकृतांग[२३], भगवती[२४], उत्तराध्ययन[२५], आचारांग[२६], कल्पसूत्र[२७] आदि में महावीर का एक नाम 'काश्यप' प्राप्त होता है और अनेक स्थलों पर वह विशेषण के रूप में व्यवहृत हुआ है। कश्यप गोत्रीय होने से वे काश्यप कहलाये[२८]। इक्षुरस का पान करने के कारण भगवान् ऋषभ कहलाये और उनके गोत्र में उत्पन्न होने से महावीर भी काश्यप कहलाये[२९]। 'धनंजय नाममाला' में महावीर को अन्तिम तीर्थंकर होने से 'अन्त्यकाश्यप' लिखा है।[३०]

भयंकर-भय-भैरव तथा महान् उपसर्गों को सहन करने के कारण देवों ने उनका नाम महावीर रखा।[३१] आचार्य हरिभद्र के शब्दों में जो शूर विक्रान्त होता है, वह वीर कहलाता है। कषायादि महान् अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से भगवान् महाविक्रान्त- महावीर कहलाये।[३२] जिनदासगणी महत्तर ने लिखा है "यश और गुणों में महान् वीर होने से भगवान् का नाम महावीर हुआ।"[३३] और इसी नाम से वे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं।

महावीर के प्रमाणोपेत शरीर का, उत्फुल्ल नयनों का और चमकते हुए चेहरे का चित्रण "औपपातिक"[३४] में विस्तार से किया गया है। उनकी कमनीय कांति के दर्शन से दर्शक आनन्द-विभोर हो जाते थे। समस्त सुख-साधनों से सम्पन्न होने पर भी वे सदा निर्लेप रहे।

अट्ठाईस[३५] वर्ष की उम्र में माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर संयम

---

२३ सूत्र० १, ६, ७, १, १५, २१, १, ३, २, १४, १, २, १, २१, ५, ३२।

२४ भगवती १५,८७, ८६।

२५ उत्तरा० २, १, ४६, २६१।

२६ आचा० २, १०, ९९३, १००३।

२७ कल्पसूत्र १०६।

२८ (क) दशवै० जिनदास-चूर्णि पृ० १३२।
(ख) दशवै० हारिभद्रीया टीका, पत्र० १३७।

२९. दशवै० अगस्त्यचूर्णि।

३० धनं० नाम० पृ० ५८।

३१ आचारांग २, ३, ४०० पृ० ३८९।

३२ दशवै० हारिभद्रीया टीका, पत्र १३७।

३३ दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० १३२।

३४ औप० वीरवर्णन।

३५ (क) महावीर कथा, पृ० ११३।
(ख) कल्पसूत्र सू० ११०, पृ० ३६।

ग्रहण करने की उत्कट भावना होने पर भी अपने, बडे भाई नन्दीवर्धन के विशेष आग्रह से उन्होने दो वर्ष[३६] का समय गृहस्थाश्रम मे व्यतीत किया पर अपने सयम मे व्यतिक्रम नही आने दिया। उन्होने सचित्त जल का भी उपयोग नही किया, न रात्रिभोजन ही किया। वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए रहे।[३७] उनका मन उस राजसी वैभव मे उलझा नही।

तीस वर्ष के कुसुमित यौवन मे गृहवास त्याग कर एकाकी निर्ग्रन्थ मुनि बने।[३८] प्रव्रजित होने पश्चात् चार-चार, छ-छ माह तक निराहार और निर्जल रहकर कठिन तप किया।[३९]

निर्जन स्थानो मे रहकर विशुद्ध आत्म चिन्तन से अन्तर्ज्योति जगाई।[४०] वर्षा मे, सर्दी मे, धूप मे, छाया मे, आधी और तूफानो मे भी उनका साधना-दीप जगमगाता रहा। देव, दानव, मानव और पशुओ के द्वारा भीषण कष्ट देने पर भी अदीनभाव से, अव्यवस्थित मन से, अम्लान चित्त से व मन-वचन और काया को वश मे रखते हुए उनको सहन किया।[४१] वे वीर सेनानी की भाति निरन्तर आगे बढते गए, कभी भी पीछे कदम नही रखा।[४२] गौतम बुद्ध की तरह उनका मन कभी भी तपस्या से नही ऊबा। अपितु आत्मसाधना के लिए मानो उन्होने शरीर का व्युत्सर्ग ही कर दिया।[४३]

अन्य तीर्थकरो की अपेक्षा महावीर का तप कर्म अधिक उग्र था।[४४] बौद्ध ग्रथो मे[४५] और जैनागमो[४६] मे महावीर के शिष्यो को भी दीर्घतपस्वी कहा गया है। इससे भी स्पष्ट है कि महावीर कठोर तपस्वी थे। "जिस

---

३६ महावीर कथा पृ० ११३।
३७ आचारांग-प्रथम, उ० अ० ९, गा० ११, पृ० ५६३।
३८ आवश्यक नियुक्ति गा०, [illegible]
३९ [illegible] ।
४० आचारांग श्रु० २, अ० १५, सूत्र १०१८, सुत्तागमे, पृ० ९३।
४१ आचारांग श्रु० २, अ० १५, सूत्र १०१९, सुत्तागमे, पृ० ९३-९४।
४२ आचारांग श्रु० १, अ० ९, उ० ३ गा० १३।
४३ आचारांग श्रु० २, अ० १५, सू० १०१८, पृ० ९३।
४४ आवश्यक नियुक्ति गा० [illegible]।
४५ [illegible]।
४६ [illegible]।

प्रकार समुद्रों में स्वयंभूरमण श्रेष्ठ है, रसों में इक्षुरस श्रेष्ठ है उसी प्रकार तपस्वियों में महावीर।[४७] आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध[४८] में महावीर की साधना का जो शब्दचित्र प्रस्तुत किया है वह पढ़ते ही पाठक का सिर श्रद्धा से नत हो जाता है। साधना करते हुए बारह वर्ष बीते, तेरहवां वर्ष आया, वैशाख महीना था, शुक्लपक्ष की दशमी के दिन अन्तिम पहर था, शाल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन में आतापना ले रहे थे, आत्म-चिन्तन की धारा विशुद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँची, साधना सफल हुई, केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हुआ।[४९]

सर्वज्ञ होने के पश्चात् भगवान् का प्रथम प्रवचन देव-परिषद में हुआ।[५०] देव विलासी होने से संयम व व्रत के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग पर नहीं बढ़ सकते थे अतः प्रथम प्रवचन निष्फल हुआ, जो एक प्रकार से आश्चर्य था।[५१]

वहाँ से विहार कर भगवान् पावापुरी पधारे। वहाँ सोमिल ब्राह्मण ने एक विराट् यज्ञ का आयोजन कर रखा था, जिसमें इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य, प्रभास—ये ग्यारह वेद-विद् ब्राह्मण आए हुए थे। भगवान् की देव-कृत महिमा से इन्द्रभूति के अहंकार को ठेस लगी। वे भगवान् को वाद में पराजित करने के संकल्प से और स्वयं विजेता का गौरव प्राप्त करने का विचार लेकर अपनी शिष्य-मंडली सहित धर्म-सभा में उपस्थित हुए।[५२]

भगवान् ने मधुर सम्बोधन से कहा—गौतम! तुम वेद-वाक्यों का असली अर्थ नहीं जानते, तुम्हारे मानस में यह संशय है कि जीव है या नहीं?

इन्द्रभूति सहम गये। उन्हें सर्वथा अपने प्रच्छन्न विचार के प्रकाशन पर आश्चर्य हुआ। भगवान् ने वेदार्थ समझाकर उनका समाधान किया।

---

४७ सूत्रकृतांग श्रु० १, अ० ६, गा० २०।
४८ आचारांग श्रु० १, अ० ९, उ० १, २, ३, ४।
४९ आचारांग श्रु० २, अ० १५ सू० १०२०।
५० आचारांग श्रु० २, अ० २६, सूत्र २०।
५१ स्थानांग १० सू० १०३५।
५२ आवश्यक निर्युक्ति गा० ५९२।

अपने चिरसंस्थित संशय के समाधान से तथा भगवान् की दिव्य ज्ञानशक्ति से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। विजेता बनने की कामनावाले स्वयं पराजित हो गए। इन्द्रभूति की भांति अन्य पण्डित भी अपने शिष्य वर्ग सहित एक-एक कर आये और भगवान् के शिष्य बन गये। इस प्रकार चार हजार चार सौ विद्वान् ब्राह्मणों ने जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। भगवान् ने उन्हीं ग्यारह विज्ञों को गणधर के महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया।[५३]

श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर तीर्थंकर बने। भगवान् के संघ में चौदह हजार श्रमण और छत्तीस हजार श्रमणियाँ सम्मिलित हुईं।[५४] नन्दीसूत्र के अनुसार चौदह हजार साधु प्रकीर्णकार थे।[५५] इससे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण साधुओं की संख्या इससे अधिक थी। कल्पसूत्र के अनुसार एक लाख उनसठ हजार श्रावक और तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएँ थीं।[५६] यह संख्या भी व्रती श्रावकों की दृष्टि से ही संभव है। जैनधर्म का अनुगमन करने वालों की संख्या इससे बहुत अधिक होनी चाहिए।

भगवान् महावीर के प्रभावोत्पादक प्रवचनों से प्रभावित होकर भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के सन्त भी उनकी ओर आकर्षित हुए। उत्तराध्ययन सूत्र में पार्श्वापत्य केशी श्रमण और गौतम का मधुर संवाद है। संशय नष्ट होने पर उन्होंने भगवान् से पांच महाव्रत वाले धर्म को ग्रहण किया।[५७] वाणिज्यग्राम में भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी गांगेय अणगार और भगवान् महावीर के बीच महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में सर्वज्ञ समझ कर महावीर के संघ में मिले।[५८] गौतम ने निर्ग्रन्थ उदकपेढालपुत्र को समझाकर संघ में सम्मिलित किया[५९] और स्थविरों ने समझाकर काल-स्यवेषि अनगार को भी।[६०] भगवती सूत्र में यह भी ज्ञात होता है कि

---

५३ समवायांग ११।

५४ [illegible] तीर्थ वर्णन।

५५ नन्दीसूत्र।

५६ कल्पसूत्र, सूत्र १३४, [illegible] १३, सू० १३६, पृ० ४४।

५७ उत्तराध्ययन, अ० २३, गा० ८७।

५८ [illegible], [illegible] ३२, सू० [illegible]।

५९ [illegible]।

६० [illegible]।

भगवान की परिषद में अन्यतीर्थिक सन्यासी भी उपस्थित होते थे। आर्य स्कन्धक[६१], अम्बड[६२], पुद्गल[६३] और शिव[६४] आदि परिव्राजको ने भगवान से प्रश्न किये और प्रश्नो के समाधान से सतुष्ट होकर अन्त मे शिष्य बने।

भगवान सर्वज्ञ थे, अत उनके समक्ष गहन से गहन और सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्न आते थे और प्रभु उनका उसी क्षण समाधान करते थे। सोमिल ब्राह्मण[६५], तुगिया नगरी के श्रमणोपासक[६६], राजकुमारी जयन्ती[६७], माकन्दी[६८], रोह[६९], पिगल[७०] प्रभृति के प्रश्नो के उत्तर इस तथ्य के स्पष्ट प्रतीक है।

भगवान के त्यागमय उपदेश को श्रवण कर (१) वीरागक (२) वीर यश (३) सजय (४) एणेयक (५) सेय (६) शिव (७) उदयन और (८) शख-काशीवर्धन ने श्रमणधर्म अगीकार किया था।[७१] मगधाधीश सम्राट् श्रेणिक के पुत्रो ने भी भगवान् के पास सयम ग्रहण किया था और श्रेणिक की सुकाली, महाकाली, कृष्णा आदि दश[७२] महारानियो ने भी दीक्षा ली थी। धन्ना[७३] और शालिभद्र[७४] जैसे धन-कुबेरो ने भी सयम स्वीकार किया। आर्द्रकुमार[७५] जैसे आर्येतर जाति के युवको ने और हरिकेशी[७६] जैसे

---

६१ भगवती श० १, उ० १०।

६२ (क) औपपातिक टी० सू० ४, प० १८२, १९५।
(ख) भगवती श० १४, उ० ८।

६३ भगवती श० २, उ० ५।

६४ भगवती श० उ०, १०।

६५ भगवती उ० १०, प० १३९९-१४०१।

६६ भगवती श० २, उ० ५।

६७ भगवती श० १२, उ० १।

६८ भगवती श० १८, उ० ३।

६९ भगवती श० १, उ० ६।

७० स्थानाग स्था० ८, सू० ७८८।

७१ ज्ञातृधर्म कथा अ० १।

७२ अन्तकृत्दशाग।

७३ त्रिषष्टि शलाका०, पर्व० १०, सर्ग० १० श्लो० २३६ से २४८, प० २३४-५।

७४. त्रिषष्टि शलाका० पर्व० १० श्लो० ८४, प० १३३-१।

७५ सूत्रकृताग टी० श्रु० २, अ० ६, प० १३६-१।

७६ उत्तराध्ययन अ० १२।

चाण्डाल जातीय मुमुक्षो ने और अर्जुन मालाकार[७७] जैसे क्रूर नर हत्यारो ने भी दीक्षा स्वीकार की थी।

गणराज्य के प्रमुख चेटक[७८] भ० महावीर के प्रमुख श्रावक थे। उनके छ जामाता[७९]—उदयन, दधिवाहन, शतानीक, चण्डप्रद्योत, नन्दीवर्धन, और श्रेणिक तथा नौ मल्लवी और नौ लिच्छवी ये अठारह गण-नरेश भी भगवान के परम भक्त थे।

इस प्रकार केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त होने के पश्चात् तीस वर्ष तक काशी, कोशल, पाचाल, कलिग, कम्बोज, कुरु, जागल, वाल्हीक, गान्धार, सिधु, सौवीर आदि प्रान्तो मे परिभ्रमण करते हुए, भूले-भटके जीवन के राहियो को मार्गदर्शन देते हुए उन्होने अपना अतिम वर्षावास "मध्यमपावा" मे सम्राट् हस्तिपाल की रज्जुक-सभा मे किया।[८०] कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि मे स्वाति नक्षत्र के समय बहत्तर वर्ष की आयु भोगकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए। निर्वाण के समय नवमल्लवी, नवलिच्छवी ये अठारह गण-राजा समुपस्थित थे। उन्होने भाव उद्योत के चले जाने पर द्रव्य उद्योत प्रारम्भ किया था।[८१] तभी से भारतवासी उनकी याद मे दीपावली का प्रकाश-पर्व मनाने लगे।

श्रमण भगवान महावीर के उदात्त जीवन की रेखाएं आचाराग, कल्पसूत्र, और अन्यान्य आगम ग्रथो मे उपलब्ध होती है। उसका विस्तार आगम के व्याख्या साहित्य मे हुआ, आवश्यक निर्युक्ति और चूर्णि मे अनेक जीवन प्रसग उट्टकित किये गये और उन्ही के आधार से आचार्य हरिभद्र,

---

७७ अन्तकृतदशा।
७८ आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध प १६४।
७९ त्रिषष्टि-पर्व, १०, सर्ग-६, श्लो० १८८ प० ७७-२।
८० (क) आवश्यक चूर्णि २, प, २६०।
(ख) त्रिषष्टि० प० १०, सर्ग-६, श्लो० १८७ प०, ६६-२।
कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका सू० १२८।
पावाए मज्झिमाए, हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसभाए अपच्छिम अन्त-
रावास वासावास उवागए।
८१ (क) समवायाग समवाय० ७२।
(ख) स्थानाग ६, उ० ३, सू० ६६६, ३ कल्पसूत्र।

मलयगिरि, गुणचन्द्र, नेमिचन्द्र, आचार्य शीलाक, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य गुणभद्र आदि अनेक जैनाचार्यो ने प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश भापा मे महावीर के जीवन को श्रद्धास्निग्ध शब्दो मे लिखा। अन्यान्य प्रातीय भापाओ मे भी विपुल साहित्य का सृजन हुआ, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा मे आवश्यक निर्युक्ति और चूर्णि के ही प्रसगो को कुछ शब्दो के हेरफेर के साथ रखा गया और दिगम्बर लेखको ने गुणभद्र की कथा को विकसित किया। पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के सुनहरे अवसर पर शताधिक लेखको ने भगवान महावीर के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करने के लिए ग्रथो का निर्माण किया। उसी लड़ी की कडी मे प्रस्तुत "जैन आगमो मे भगवान महावीर" ग्रथ भी है। यद्यपि मूल आगम साहित्य मे भगवान महावीर के सत्ताईस भवो का वर्णन नही है और न उनकी वाल्यकालीन क्रीडाओ का वर्णन है, न वस्त्रदान और न साधना काल के उपसर्गो का ही वर्णन हे तथापि लेखक ने "जैन आगमो मे भगवान महावीर" ग्रथ का जो नामकरण किया है उसके पीछे लेखक का उद्देश्य हे—आगम और आगम के व्याख्या साहित्य मे भगवान महावीर सम्बन्धी जो भी प्रसग प्राप्त है उन सभी का इसमे सकलन-आकलन किया जाय जिससे भगवान महावीर की छवि का पूर्ण रूप से उट्टकन हो सके। इस दृष्टि से लेखक का प्रस्तुत प्रयास सराहनीय है। लेखक ने प्रस्तुत ग्रथ मे मध्यम शैली के द्वारा महावीर के जीवन-प्रसगो को चित्रित किया है।

ग्रथ की भापा वहुत ही सरल और सरस है। कही कही पर लेखक ने अन्य कवियो के पद्य देकर विपय को सरस वनाने का प्रयास किया है। लेखन मे ऐतिहासिक दृष्टि उतनी प्रधान नही है जितनी भावना प्रधान है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रथ का अपने आप मे महत्त्व है।

प्रस्तुत ग्रथ के लेखक स्नेह सौजन्य मूर्ति पण्डितप्रवर श्री हीरा-मुनिजी सिद्धान्त प्रभाकर है। उन्होने इस ग्रथ के पूर्व "जीवन पराग", "जैन जीवन", "विचार ज्योति", "मेघचर्या", "सुवाहुकुमार" प्रभृति अनेक ग्रथो का लेखन किया है जिसमे उनकी प्रतिभा झलक रही हे। प्रस्तुत ग्रथ मे भी पूर्व ग्रथो की तरह उनकी प्रतिभा का चमत्कार देखा जा सकता है। उन्होने अट्ठारह वर्ष की किशोर वय मे महास्थविर परम श्रद्धेय ताराचन्दजी महाराज तथा राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्रीपुष्करमुनिजी महाराज के सान्निध्य मे आकर अक्षर ज्ञान प्राप्त किया। और आर्हती दीक्षा ग्रहण कर परिश्रम से अध्ययन कर प्रगति की। एक

व्यक्ति परिश्रम के द्वारा कितना विकास कर सकता है यह कोई भी व्यक्ति आपसे सीख सकता है। आप सेवाभावी, मधुर प्रकृति के सन्त हैं। आप लेखक, कवि और वक्ता के साथ एक जप-प्रेमी सन्तरत्न है।

मुझे आशा ही नही अपितु दृढ विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रथ श्रद्धालु पाठको के अन्तर्मानस को लुभाएगा और वे इसका स्वाध्याय कर श्रमण भगवान महावीर की तेजस्वी जीवन-गाथा से प्रभावित होंगे। इसी प्रकार पडित मुनिश्री जी इससे भी अधिक श्रेष्ठ कृतियाँ लिखकर सरस्वती के भण्डार को भरने का प्रयास करेंगे।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

जैन स्थानक,
मिण्ट स्ट्रीट, मद्रास
धननेरम २६-१०-१९७८

त्रिमूर्तिः—

सरलचेता सन्तप्रवर श्री हीरामुनि जी 'हिमकर' (मध्य में पट्टासीन)

विषय-सूची

तीर्थंकर जीवन १३५–३१७

उदार अर्थसहयोगी सज्जन

"जैनागमो मे भगवान महावीर' पुस्तक के प्रकाशन मे मुद्रण की व्यवस्था मे समदडीनिवासी धर्मप्रेमी अत्यन्त उत्साही और कर्त्तव्यशील श्रावक सेठ सुगनराजजी साहब लूंकड ने जो लोकतन्त्रीय विधि से अर्थव्यवस्था जुटाई, दानी-मानी, धर्मप्रेमी सज्जनो को प्रेरणा देकर सहयोग का वचन लिया वह वास्तव मे ही सराहनीय तथा अनुकरणीय कार्य है।

श्री तारकगुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर की ओर से हम सेठ सुगनराजजी साहब लूंकड को तथा दानदाता निम्न सज्जनो को हार्दिक धन्यवाद देते हुए उनकी शुभ नामावली प्रकाशित कर रहे है।

—चुन्नीलाल धर्मावत, कोषाध्यक्ष

२४००) शा० साकलचन्दजी, पारसमलजी, धनराजजी, देवीचन्दजी, दिलीपकुमारजी, राजमलजी, मदनलालजी, जवरीलालजी, गुलाबचन्दजी, शान्तीलालजी, मोतीलालजी ओस्तवाल, मु० समदडी।

१२००) शा० सुकनराजजी, ब्रिजेशकुमारजी, लूंकड (दाती) मु० समदडी।

१२००) शा० हरकचन्दजी, कान्तीलालजी, शान्तीलालजी पारलेचा, मु० समदडी।

१२००) शा० धीगडमलजी, जवेरीलालजी, शान्तीलालजी, सुभापकुमारजी, भेरूलालजी, बसावत मुथा, मु० समदडी।

१२००) मागीलालजी, सुमेरमलजी, इन्द्रमलजी, बाबूलालजी, सम्पतराजजी लूंकड़, मु० समदडी।

१२००) शा० मिश्रीमलजी, पारसमलजी, चम्पालालजी, कान्तीलालजी, सोहनलालजी पारख, मु० समदडी।

१२००) शा० खेतमलजी, नेमीचन्दजी, महेन्द्रकुमारजी, बाबूलालजी, बागरेचा मु० समदडी।

१४००) मजलजैन, श्री सघ की ओर से।

७५१) भारडा श्री सघ, मार्फत-शा० सुमेरमलजी, दीपचन्दजी, शान्तीलालजी।

१५१) शा० उम्मेदमलजी सा० लोढा, अजमेर।

जैन आगमों में भगवान महावीर

मंगलस्तुति

जयइ जग जीव जोणी, वियाणओ जगगुरु जगाणदो ।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयव ॥१॥
जयइ सुआणं पभओ, तित्थयराण अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥२॥

—श्रीनन्दीसूत्रम्

अह तेणेव कालेण धम्मतित्थयरे जिणे ।
भयवं वद्धमाणो त्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥१॥
तस्स लोगपदीवस्स, आसि सासे महायसे ।
भयवं गोयमे नामं, विज्जाचरणपारगे ॥२॥

—श्रीउत्तराध्ययनसूत्र, अ० २३

वीर. सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीर बुधा. सश्रिता ।
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो वीराय नित्य नमः ॥
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल वीरस्य घोर तपो ।
वीरे श्री-धृति-कीर्ति-काति-निचय , श्री वीरभद्र दिश ॥

भगवान महावीर स्वामी

सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु ने काल-चक्र के दो विभाग बताये है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। जिस काल मे जीवो का आयुष्य, बल, प्रतिभा उत्तरोत्तर बढती जाती है वह उत्सर्पिणी काल कहलाता है और जिस काल मे उत्तरोत्तर आयुष्य, बल, प्रतिभा कम होती जाती है वह अवसर्पिणीकाल कहलाता है। अवसर्पिणीकाल मे भौतिक शक्ति के साथ ही आध्यात्मिक वैभव भी क्षीण होता जाता है और उत्सर्पिणी काल मे भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास भी उत्तरोत्तर बढता जाता है।

प्रभु ऋषभदेव इस युग के प्रथम तीर्थंकर थे। उनके युग मे जितने पौष्टिक तत्त्व पाये जाते थे उतने महावीर प्रभु के युग मे नही थे फिर भी वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्रसंस्थान वर्धमान युग मे भी थे। किन्तु आज वे मौजूद नही है। किसी युग मे एक बार वर्षा होती तो दस हजार वर्ष तक अनाज पैदा होता था, कभी समय आया तो एक वर्षा मे कई बार अनाज उत्पन्न होने लगा और युग ने करवट बदली तो काल प्रभाव मे कई बार वर्षा होने पर एक बार अनाज पैदा होने लगा। यह सारा प्रभाव ससार के रगमच पर किसका है? कहना होगा यह काल का ही प्रभाव है।

इस वर्तमान अवसर्पिणी काल मे इस जबूद्वीप के भरतक्षेत्र मे क्रमश चौबीस तीर्थंकर हुए—इनमे प्रथम ऋषभदेव है और अन्तिम महावीर। पूर्व तीर्थंकरो की अपेक्षा पश्चात् के तीर्थंकरो की आयु, अवगाहना आदि मे भारी अन्तर है। जैसे भगवान् ऋषभदेव की अवगाहना पाच सौ धनुष्य की तथा आयु चौरासी लाख पूर्व की थी और महावीर प्रभु की अवगाहना सात हाथ की तथा आयु केवल बहत्तर वर्ष की ही थी। काया की लघुता होते हुए भी उनका मन लघु नही था। मन बडा ही साहसी, धीर और गम्भीर था। यही कारण है प्रभु महावीर ने भयकर उपसर्गों और परीषहो को सहन किया, सुमेरु की तरह अचल-अकप होकर। सागर के समान गभीर होकर अनुपम सम्भाव के साथ केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त किया था।

महावीर का युग और भारत की दशा

प्रभु महावीर के पूर्व तेवीस तीर्थंकर हो चुके थे। तेवीसवे तीर्थंकर प्रभु पार्श्वनाथ का शासन काल २५० वर्ष का था। इस अल्प समय मे भी धर्म के नाम पर यत्र-तत्र-सर्वत्र आडम्बर का वोलवाला हो गया था। प्रभु पार्श्व द्वारा प्रतिपादित तप, सयम और धर्म के प्रति रुचि मद पड गई थी। यज्ञ-याग और वाह्य क्रिया-काण्ड ही धर्म माना जाने लगा था। यज्ञ मे घृत-मधु ही नही किंतु पशु एव मनुष्य तक भी धर्म के नाम पर जीवित ही अग्नि की भेट चढा दिये जाते थे। यहाँ तक कहा जाता था कि ईश्वर ने यज्ञ के लिये ही इन पशुओ की रचना की है। हिंसा का ऐसा घोर ताण्डव नृत्य भारत की पुण्यभूमि पर आगे वढता जा रहा था। पशुहिंसा के साथ ही साथ निम्न श्रेणी की जनता भारी कष्टो और पीडाओ से व्याकुल थी। नीच जाति के समझे जाने वाले लोग उन उच्च जाति के लोगो के समक्ष अपनी मानवीय भावनाओ को भी व्यक्त नही कर सकते थे।

शूद्र और ब्राह्मण एक साथ चल भी नही चल सकते थे। शूद्र के लिए शिक्षा-दीक्षा तथा वैदिक शास्त्रो को सुनना वहुत वडा अपराध वन गया था। स्त्री भी शूद्रो के समान समझी जाती थी। उसका वर्तमान मे अगर प्रमाण देखना है तो हिंदूधर्म का प्रमुख चिह्न "जनेऊ" (यज्ञोपवीत) आज भी शूद्रो और स्त्रियो को नहीं दिया जाता है तथा उसी प्रकार मदिर मे पुजारी वनकर स्त्री और शूद्र पूजा नहीं कर सकते है।

ब्राह्मणो ने यहाँ तक सत्ता प्राप्त करली थी कि यदि कोई शूद्र जाति वाला वेद सुने तो उसके कान मे पिघला हुआ गरम शीशा डलवा देते। वेद के पाठ का उच्चारण करले तो जिह्वा काट डालते, उन ऋचाओ को कोई कण्ठस्थ करले तो उसको जान से ही मार डालते थे।[1]

देश की विगडी दशा को सुधारने के लिए भगवान महावीर ने भरसक प्रयत्न किया तथा देश की सस्कृति का कायाकल्प कर दिया और अहिंसा

---

१ गौतम धर्मसूत्र, पृष्ठ १६५

नही कर पाता अत. परिमित जल, स्नान और पीने के लिए ग्रहण करूँगा ।"

इस प्रकार मरीचि ने अपनी नवीन परिकल्पना के परिव्राजक परिधान एव मर्यादा का निर्माण किया और भगवान के साथ ही ग्राम, नगर आदि मे विचरने लगा । भगवान ऋपभदेव के श्रमणो से मरीचि की पृथक् वेश-भूपा को देखकर जन-जन के मानस मे कुतूहल उत्पन्न होता । जिज्ञासु वनकर उसके पास पहुँचते । मरीचि प्रतिवोध देकर उन्हे भगवान का शिप्य वनाता ।

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान श्री ऋपभदेव से जिज्ञासा की—"प्रभो ! क्या इस परिपद् मे कोई व्यक्ति ऐसा है जो आपके सदृश ही भरत क्षेत्र मे तीर्थंकर वनेगा ?" जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान ने फरमाया—"स्वाध्याय ध्यान से आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक भविप्य मे वर्धमान (महावीर) नामक अन्तिम चौवीसवाँ तीर्थंकर होगा । इससे पूर्व यह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव वनेगा और विदेहक्षेत्र की मूकानगरी मे तुम्हारे जैसा ही प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती वनेगा। इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियो को वह अकेला ही प्राप्त करेगा।"

भगवान की भविप्यवाणी को श्रवण कर सम्राट् भरत भगवान को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचे और भगवान की भविप्यवाणी सुनाते हुए वोले—"हे मरीचि (त्रिदण्डी) परिव्राजक ! तुम अन्तिम तीर्थंकर वनोगे, अत मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ । साथ ही वासुदेव व चक्रवर्ती भी होओगे ।" यह सुनकर मरीचि की हृत्तत्री के सुकुमार तार झनझना उठे । 'मैं वासुदेव वनूंगा, मैं चक्रवर्ती पद प्राप्त करूँगा और तीर्थंकर होऊँगा । मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती है, मेरे पितामह प्रथम तीर्थंकर है, और मैं अकेला ही वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर तीन पदवियो को धारण करूँगा, मेरा कुल कितना महान् है कितना उत्तम है ?' यह विचारता हुआ मारे खुशी के वह वांसो उछलने लगा ।

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य विगड गया । कोई उसकी सेवा करने वाला नही था । सेवा करने वाले के अभाव मे क्षुब्ध होकर मरीचि के मानस मे ये विचार उठे कि 'मैंने अनेको को उपदेश देकर भगवान का शिप्य वनाया, पर आज मैं स्वय सेवा करने वाले शिप्य से वचित हूँ, स्वस्थ होने पर मैं स्वय अपने शिप्य वनाऊँगा ।' वह स्वस्थ हुआ

कपिल धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया। उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी। कपिल ने प्रश्न किया—"आप स्वय आर्हत् धर्म का पालन क्यो नही करते ?"

उत्तर मे मरीचि ने कहा—"मैं उसे पालन करने मे असमर्थ हूँ।"

कपिल ने पुन प्रश्न किया—"क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे है, उसमे धर्म नही है ?"

इस प्रश्न ने मरीचि के मानस मे प्रतिष्ठा का सघर्ष पैदा कर दिया और कुछ क्षण रुककर उसने कहा—"यहाँ पर भी वही है जो जिनधर्म मे है।"

कपिल मरीचि का शिष्य बना और मिथ्यामत की सस्थापना की, जिसके कारण वह बहु-ससारी बना और कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण ससार भ्रमण करना पडा। कृत-दोषो की आलोचना किए बिना ही उसने अपना आयु पूर्ण किया।

(४) **ब्रह्म देवलोक मे देव**—८४ लाख पूर्व की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव ब्रह्मदेवलोक मे दस सागर की स्थिति वाला देव हुआ।

(५) **कौशिक**—वहाँ से च्यवकर मरीचि के जीव ने कोल्लाक सन्निवेश मे ८० लाख पूर्व की आयु वाले कौशिक ब्राह्मण के रूप मे जन्म लिया। वहाँ भी वह परिव्राजक बना।

(६) **पुष्यमित्र**—कौशिक की आयु पूर्ण करके वह स्थूणा नगरी मे पुष्यमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ। उसकी आयु ७२ लाख पूर्व की थी। अन्त समय में वह यहाँ भी त्रिदण्डी परिव्राजक के रूप मे मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(७) **सौधर्मदेवलोक मे देव**—सौधर्मकल्प मे वह मध्यम स्थिति वाला देव बना।

(८) **अग्निद्योत**—सौधर्म देवलोक से च्यवकर चैत्य सन्निवेश मे वह अग्निद्योत नामक ब्राह्मण हुआ। यहाँ उसकी आयु ६४ लाख पूर्व की थी। अन्त मे त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

(९) **ईशान देवलोक मे देव**—आयु पूर्ण कर वह ईशान देवलोक मे मध्यम स्थिति वाला देव बना।

(१०) **अग्निभूति**—तत्पश्चात् मरीचि का जीव मन्दिर नामक सन्निवेश मे अग्निभूति ब्राह्मण बना। उसने छप्पन लाख पूर्व की आयु पायी। अन्त मे त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

(११) सनत्कुमार देवलोक में देव—इसके बाद मरीचि का जीव सनत्कुमार कल्प मे मध्यम स्थिति वाला देव बना।

(१२) भारद्वाज—तत्पश्चात् वह श्वेताम्बिका नगरी मे भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ। चवालीस लाख पूर्व की आयु उसे प्राप्त हुई। जीवन की सध्या वेला मे वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।

(१३) माहेन्द्र देवलोक में देव—तदनन्तर माहेन्द्र कल्प मे मध्यम स्थिति वाला देव बना।

(१४) स्थावर ब्राह्मण—देवलोक से च्यवकर और कितने ही काल तक ससार मे परिभ्रमण करके मरीचि का जीव राजगृह नगर मे स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। चौतीस लाख पूर्व की आयु पाई। अन्त मे त्रिदण्डी परिव्राजक बना और मिथ्यामत का प्रचार किया।

(१५) ब्रह्मदेवलोक मे देव—फिर ब्रह्मदेवलोक मे वह मध्यम स्थिति वाला देव हुआ।

(१६) विश्वभूति—देवलोक की आयु पूर्ण होने पर लम्बे समय तक ससार मे परिभ्रमण करने के बाद मरीचि का जीव राजगृह नगर मे विश्वनन्दी राजा के भ्राता तथा युवराज विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति हुआ।

राजा विश्वनन्दी का पुत्र विशाखनन्दी था।

एक बार विश्वभूति पुष्पकरण्डक उद्यान मे पत्नियो के साथ उन्मुक्त-क्रीडा कर रहा था। महारानी की दासियाँ उस उद्यान मे पुष्पादि लेने के लिए आई। उन्होने विश्वभूति को यो सुख के सागर मे तैरता हुआ देखा तो डाह (ईर्ष्या) से उनका मुख म्लान हो गया। उन्होने राजरानी से कहा—"महारानीजी! सच्चा सुख तो विश्वभूति कुमार भोगता है। विशाखनन्दी को राजकुमार होने पर भी विश्वभूति के समान सुख कहाँ है? कहलाने को आप भले ही अपना राज्य कहे, पर सच्चा राज्य तो विश्वभूति का है।" दासियो के कथन से रानी के हृदय मे भी ईर्ष्या की आग भडक उठी। वह आपे से बाहर हो गई। राजा ने उसको शात करने का प्रयास किया, पर वह तडक कर बोली—"जब आपके रहते यह स्थिति है तो बाद मे क्या होगा?"

नरेश ने समझाया—"यह हमारी कुल-मर्यादा के विरुद्ध है, जब तक एक पुरुष अन्तःपुर सहित उद्यान मे है तब तक द्वितीय पुरुष उसमे प्रवेश नहीं कर सकता।" अन्त मे अमात्य ने प्रस्तुत समस्या को सुलझाने के लिए अपने मनुष्यों के द्वारा राजा के पास कृत्रिम लेख पहुँचाया। लेख पढते ही

राजा ने युद्ध की उद्घोषणा की। रणभेरी बज गई। वह यात्रा के लिए प्रस्थान करने लगा। विश्वभूति को ज्योही यह सूचना मिली वह उद्यान से निकल कर राजा के पास पहुँचा। राजा को रोककर स्वय युद्ध के लिए चल दिया। युद्ध के मैदान मे किसी भी शत्रु को न देखकर वह पुन दलबल सहित लौट आया। इधर विश्वभूति के जाने के बाद राजकुमार विशाखनन्दी ने अन्त पुर सहित उद्यान मे अपना डेरा डाल दिया। विश्वभूति उद्यान मे प्रवेश करने लगा तो दण्डधारी द्वारपालो ने रोक दिया। कहा—"अन्दर सपत्नीक विशाखनन्दी राजकुमार है।" यह सुनकर विश्वभूति को सारे रहस्य का परिज्ञान हो गया कि युद्ध के बहाने मुझे यहाँ से निकाला गया है। उसने कुपित होकर वही पर कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर एक जोरदार प्रहार किया, जिससे कपित्थ के सारे फल भूमि पर गिर पडे। उसने द्वारपालो को ललकारते हुए कहा—"इसी प्रकार मैं तुम्हारे सिरो को नष्ट कर सकता हूँ, पर राजा के गौरव की रक्षा के लिए ऐसा नही करता। मुझसे माँगकर यह उद्यान लिया जा सकता था। परन्तु इस प्रकार छल-छद्म करना अनुचित है।"

विश्वभूति को इस अपमान से बडा आघात लगा। ससार मे विरक्ति हो गई। उसने आर्य सम्भूति स्थविर के पास सयम ग्रहण कर लिया। उत्कट तप के प्रभाव से उन्हे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई।

एक समय विहार करते हुए विश्वभूति अनगार मथुरा नगरी मे आये। इधर विशाखनन्दी कुमार भी राजकन्या से विवाह करने मथुरा आया हुआ था और मुख्य मार्ग पर स्थित राजप्रासाद मे ठहरा।

विश्वभूति अनगार मासिक व्रत के पारणाहेतु घूमते हुए उधर निकल आये। विशाखनन्दी के अनुचरो ने मुनि को पहचान कर उसे सम्वाद सुनाया। मुनि को देखते ही उसके अन्तर्मानस मे क्रोध की आँधी उठी। सकोप मुनि को देख ही रहा था कि सद्य प्रसूता गाय की टक्कर से विश्व-भूति अनगार पृथ्वी पर गिर पडे। गिरे हुए मुनि का उपहास कर विशाखनन्दी कुमार ने कहा—"तुम्हारा वह पराक्रम, जो कपित्थ पर टूट गिराते समय देखा था, आज कहाँ गायब हो गया है?" और निदान के कर हँस पडा। विश्वभूति अनगार ने भी आवेश मे आकर तरह उसे चीर पकड कर, चक्र की तरह घुमाकर आकाश मे उछाल विशाखनन्दी का "क्या दुर्बल सिंह शृगाल से भी गया गुजरा होता है?

मूल—

नमोत्थुण''जाव जियभयाणं। नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरिम तित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव सपाविउकामस्स वंदामि ण भगवंतं तत्थगय इहगये पासउ मे भगवं तत्थगए इहगय-ति कट्टु समण भगव महावीर वदइ नमंसई-नमंसईत्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

—कल्पसूत्र, सूत्र १६

मूलार्थ—

सिद्ध गति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके ह उन जिन भगवान को नमस्कार करके फिर श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया जो धर्म रूप आदि के करने वाले, चरम तीर्थंकर, पूर्व तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट और सिद्धि को पाने की अभिलाषा वाले है। यहाँ मै रहा हुआ वहाँ रहे हुए भगवान् को वन्दना करता हूँ। वहाँ रहे हुए भगवान मुझे देखते हे। इस प्रकार भावना व्यक्त करके देवराज देवेन्द्र श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन व नमन करते हे, और अपने श्रेष्ठ शक्र सिहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठे।

भावबोधिनी विशेष वृत्ति—

शक्रेन्द्र को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ कि ऐसा न कभी पहले हुआ, न वर्तमान मे होता ही है और न भविष्य मे होगा ही कि अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव ब्राह्मण कुल मे जन्मे हो, जन्मते हो, और जन्मेगे।

मूल—

अत्थि पुण ऐसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहि ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहि वीइक्कंताहि समुप्पज्जति ॥१८॥

—कल्पसूत्र, सूत्र १८

मूलार्थ—

किन्तु लोक मे इस प्रकार का आश्चर्यभूत कार्य भी अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी व्यतीत होने के पश्चात् होता है।

यहाँ पर विश्व के अन्य आश्चर्यों का वर्णन न करके केवल जैनागमो मे आये हुए इन आश्चर्यों का वर्णन करते है।

स्थानाग, प्रवचनसारोद्धार एव कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओ मे १० आश्चर्यो का उल्लेख है।

उवसग्ग[1]गब्भहरण,[2] इत्थीतित्थ[3] अभाविया परिसा[4]।
कण्हस्स[5] अवरकका, उत्तरण चन्दसूराण[6] ॥१॥
हरिवसकुलुप्पत्ती[7], चमरुप्पाओ[8] य अट्ठसया[9] सिद्धा।
अस्सजएसु[10] पूया, दसवि अणतेण कालेण ॥२॥

—स्थानागसूत्र, गाथा ७७७

(१) **उपसर्ग**—तीर्थंकर के समवशरण मे उपसर्ग नही होता है किन्तु श्रमण भगवान महावीर को गोशालक द्वारा तेजोलेश्या के प्रभाव से उपसर्ग हुआ।

(२) **गर्भापहरण**—तीर्थंकरो के गर्भ का अपहरण नही होता है परन्तु श्रमण भगवन्त महावीर का गर्भापहरण हुआ।

(३) **स्त्री तीर्थंकर**—तीर्थंकर पुरुष ही होते है, स्त्री नही। परन्तु प्रस्तुत अवसर्पिणी काल मे उन्नीसवे तीर्थंकर मल्लि भगवती स्त्री हुई है।

(४) **अभावित परिषद्**—तीर्थंकर का प्रथम प्रवचन इतना प्रभावपूर्ण होता है कि उसे श्रवण कर भौतिकता मे निमग्न मानव भी त्यागमार्ग को स्वीकार कर लेते है किन्तु भगवान महावीर ने कुछ समय तक प्रवचन किया, पर किसी ने भी चारित्र स्वीकार नही किया। एतदर्थ उनकी प्रथम परिषद् को अभावित कहा है। तीर्थंकर का प्रवचन पात्र की अपेक्षा से निष्फल गया।

(५) **कृष्ण का अमरकंका गमन**—अमरकका नगरी घातकीखण्ड मे है। कोई भी वासुदेव अपनी सीमा से वाहर अन्य सीमा मे नही जाते परन्तु श्रीकृष्ण अपनी सीमा से वाहर द्रौपदी को वापिस लाने के लिये गये थे।

(६) **चन्द्र-सूर्य का आकाश से उतरना**—सूर्य-चन्द्र तीर्थंकरो के दर्शन हेतु आते है किन्तु शाश्वत विमानो मे नही। श्रमण भगवत महावीर के दर्शन हेतु सूर्य-चन्द्र दोनो अपने-अपने शाश्वत विमानो के साथ उपस्थित हुए।[1]

---

१ जन धारणा इस प्रकार है कि कोई भी देव यथाप्रसग तिर्यक् लोक मे आते है तो मूल रूप मे नही किन्तु उत्तर वैक्रिय वैमान एव रूप वनाकर आते है तथा जिस काल मे जितनी अवगाहना वाले मानव होते हैं उतनी ही अवगाहना वनाकर आते है ताकि जन-मन मे भय-क्षोभ पैदा न हो किन्तु एक बार प्रभु महावीर के समवसरण मे चन्द्र-सूर्य मूल रूप मे ही उपस्थित हुए, अत आश्चर्य हुआ।

जन्म और बाल्यकाल

उस काल, उस समय मे ग्रीष्म ऋतु चल रही थी। ग्रीष्म का प्रथम मास (चैत्रमास) और द्वितीय पक्ष का तेरहवाँ दिवस था अर्थात् चैत्र सुदी १३ के दिन नवमास और सार्द्ध सात दिन व्यतीत होने पर, जब सभी ग्रह उच्च स्थान मे आये हुए थे, चन्द्र का प्रथम योग चल रहा था, दिशाएँ सभी सौम्य और विशुद्ध थी, जय-विजय के सूचक सभी प्रकार के शकुन थे, तब मध्यरात्रि के समय हस्तोत्तर नक्षत्र के योग मे त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्यपूर्वक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। भगवान् महावीर के जन्म के समय सभी ग्रह उच्च स्थान मे थे, जैसे—

जन्म-कुण्डली

११ ९
१२ के.१० मं. ८
र.१ बु. ७श.
शु.२ रा.४ बृ. चं.६
३ ५

ग्रहो के उच्च स्थान

राशि	ग्रह	अंश
मेष	सूर्य	१०
वृषभ	चन्द्र	३
मकर	मंगल	२८
कन्या	बुध	१५
कर्क	गुरु	५
मीन	शुक्र	२७
तुला	शनि	२०

जन्म महोत्सव[१]

जिस रात्रि मे श्रमण भगवन्त महावीर ने जन्म ग्रहण किया उस रात्रि मे बहुत देव और देवियो के आवागमन से लोक मे एक चहल-पहल मच गई और सर्वत्र हर्षनाद व्याप्त हो गया। प्रभु का जन्मोत्सव करने के लिये सर्वप्रथम छप्पन दिक्कुमारिकाएं आती है।

---

१ जन्म महोत्सव अधिकार—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र से।

अधोलोक में रहने वाली आठ दिक्कुमारियो के आसन चलित होने से अवधिज्ञान के द्वारा जिस नगर मे तीर्थंकर का जन्म हुआ है उसे जानकर सपरिवार उत्तर वैक्रिय रूप वनाकर उत्तर वैक्रिय विमान मे वैठकर जहाँ तीर्थंकर व उनकी माता हैं, वहाँ आती है। तीर्थंकर व उनकी माता को तीन वार आदान प्रदक्षिणा करके वोलती है **"नमोत्थुण ते रयण कुच्छि धारिए जगप्पईव दीतीए"** अहो जगत के प्रदीप को जन्म देने वाली व रत्नकुक्षि धारण करने वाली आपको हम नमस्कार करती है। अपना परिचय देकर, आप डरना मत और कहती है हम अधोलोक मे रहने वाली ८ दिशा-कुमारियाँ है। तीर्थंकर की जन्म-महिमा मनाने आई है। तदनन्तर वे वैक्रिय समुद्घात के द्वारा तीर्थंकर के जन्म भवन से चारो तरफ चार-चार कोस मे दुर्गन्ध हटाने वाला और सुगध लाने वाला तिरछा वायु चलाती हे। उस वायु के द्वारा वे त्रण, काष्ट, अशुचि और दुर्गन्ध को दूर फेक देती हे और भवन मे आकर माता के पास मनपसद सुहाने मगलमय कर्णप्रिय गीत गाती है।

ऊर्ध्वलोक मे रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ पूर्वोक्त विधि से आकर प्रणाम कर, परिचय देकर चारो दिशा मे एक-एक योजन पर्यंत सुगधित जल की वर्षा करके रजकण को दवा देती है। पुष्प वृष्टि करती है और काला-गुरु आदि धूप की सुगध से दिशा मण्डल को सुगधित वना देती है पुन भवन मे आकर खडी-खडी मगलगीत गाती है।

पूर्व के रूचक कु ड पर रहने वाली आठ दिक्कुमारियाँ पूर्वोक्त विधि से आ, प्रणाम कर, परिचय दे, तीर्थंकर की माता के पास पूर्व दिशा मे दर्पण लेकर खडी-खडी सुमधुर गीत गाती है।

दक्षिण दिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ पूर्वोक्त विधि से आगमन का सारा कार्यक्रम करके हाथ मे जाली ले तीर्थ-कर की माता के दाहिनी तरफ खडी-खडी मनोनुकूल मगलगीत गाती हे।

पश्चिम के रूचक कु ड पर रहने वाली आठ दिक्कुमारियाँ पूर्वोक्त विधि से आ, प्रणाम कर, परिचय दे, तीर्थंकर की माता के पास पश्चिम दिशा मे हाथ मे पखा ले खडी-खडी कर्णप्रिय मगलगीत गाती हैं।

उत्तर दिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली आठ दि[illegible]ते हे। स्वर्ण-विधिवत् आकर तीर्थंकर की माता के वाई तरफ हाथ [illegible]
गीत गाती हैं।

[illegible]त ५ रूप धारण करते है

विदिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली [illegible]को लेकर अभिषेकशिला स्थित

सिहासन पर पूर्वाभिमुख बैठते है और शक्रेन्द्र उपर्युक्त विधि से जन्माभिषेक करते है। विशेषता यह है कि—

मूल—

तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसि चत्तारि धवल वसहे विउव्वइ[1] ॥३२॥

मूलार्थ—

तदनन्तर वे शक्रेन्द्र देवराज भगवान तीर्थंकर के चारो दिशाओ मे ४ (चार) उज्ज्वल वृषभ की रचना करते है।

मूल—

तए ण तेसि चउण्हं धवल वसहाणं अट्ठहि सिंगेहितो अट्ठ तोय धाराओ णिगच्छन्ति तए णं ताओ अट्ठ तोयधाराओ उड्ढ वेहासं उप्पयन्ति उप्पयन्तित्ता एगओ मिलायन्ति मिलायन्तित्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि णिवयंति ॥३२॥

मूलार्थ—

उन चारो ही श्वेत वृषभो के आठ शृ गो से पानी की धारा बहती है। आठो धाराए ऊपर से नीचे पडते समय एकत्र होकर तीर्थंकर के मस्तक पर गिरती है।

लघुकाय नवजात शिशु तीर्थंकर के शरीर पर इतना ओघरूप पानी गिरने पर शक्रेन्द्र को शका उत्पन्न हुई कि नवजात बालक इतने जल-प्रवाह को कैसे सहन करेगा ? अवधिज्ञान से इन्द्र की शका को जानकर तीर्थंकर भगवान महावीर ने बाये पाँव के अगूठे से मेरुपर्वत को दबाया जिससे सम्पूर्ण पर्वत कम्पायमान हो गया। इन्द्र को प्रथम तो क्रोध आया किंतु जब उसने इसे नवजात बालक रूप मे अनन्तशक्तिसपन्न भगवान का ही कृत्य

---

१ जम्बूद्वीपपण्णत्ति, पृ० ४८४, सूत्र ३२

२ जम्बूद्वीपपण्णत्ति पृ० ४८५, सूत्र ३२—अमोलक ऋषिजी म० सा० द्वारा सपादित।

समझा तो, उसे भगवान की अनन्तशक्ति का परिज्ञान हुआ। तदनन्तर क्षमा याचना की[1] और शक्रेन्द्र ने तीर्थंकर का नाम महावीर रखा।

इस प्रकार भगवान का जन्माभिषेक करने के बाद, सभी इन्द्र अपने परिवार सहित दोनो हाथ जोडकर यावत् मस्तक से अजलि लगा कर जय-जय शब्दो से वधाकर इष्टकारी, कातकारी, शब्द बोलते है। 'शल्य के विनाशक, निर्भय, राग-द्वेष विजेता, समाधिवत, मानमर्दक, गुणरत्नाकर, शील के समुद्र, अनन्तज्ञानमय, त्रिलोकीनाथ! आपको नमस्कार होवे।'

सौधर्मेन्द्र सपरिवार जिस विधि से रूपादि करके मेरु पर्वत पर नवजात तीर्थंकर को लाये थे उसी विधि से उत्कृष्ट दिव्य देवगति से चलकर जहाँ तीर्थंकर भगवान का जन्म भवन था वहाँ उनको लाये। वहाँ पर रक्खा हुआ प्रतिविम्व का और अवस्वापिनी निद्रा का साहरण किया। क्षेम युगल तथा कुण्डल युगल और भगवान को दिखाई दे ऐसे स्थान पर श्रीदाम काड नामक दडा रखकर भगवान को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए आनन्दित होकर जिस दिशा से आये थे उसी दिशा मे पुन चले गये। एव ६४ ही इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप मे अष्टाह्निक महोत्सव कर स्व-स्थान को गये।

इन्द्रो द्वारा जन्माभिषेक होने के पश्चात् सर्वप्रथम प्रियंवदा नाम की दासी ने राजा सिद्धार्थ के पास जाकर पुत्र-जन्म की शुभ सूचना दी। यह शुभ सूचना सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न ही हुआ। प्रसन्नता के उपलक्ष मे राजा ने मुकुट के सिवाय अपने समस्त आभूषण उतार कर दासी को पुरस्कारस्वरूप दिये और सदा के लिये उसे दासी-कर्म से मुक्त करके उचित सन्मानार्ह पद दिया।

उसके वाद राजा सिद्धार्थ ने नगर-रक्षको को बुलाकर कारागृह को खाली करने का आदेश दिया। तोल-माप मे वृद्धि करवाई।

कुण्डलपुर नगर मे सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण फैल गया था। वडे भाई नन्दीवर्धन छोटे भाई के जन्म को जानकर अत्यत आह्लादित हुए। उस खुशी मे जृम्भक देवो द्वारा लाये हुए धन को बाँटने लगे। इधर प्रभु की वडी वहिन सुदर्शना ने अपनी सहेलियो (सखियो) को शुभ समाचार देने के वाद राजभवन मे प्रवेश किया। भगवान के काका श्री

---

१ देवेन्द्र मुनिजी द्वारा सपादित 'कल्पसूत्र' पृ० १३३, परिशिष्ट २, पृ० २४, सख्या १७१।

सुपार्श्व (भतीजे के जन्म की खुशी मे) गरीबो को वस्त्र अन्नादि वितरण करने लगे।

जब यह शुभ सूचना विशाला नगरी मे पहुँची तो ननिहाल के सभी सदस्यगण आनन्द विभोर होकर बाँसो उछलने लगे।

राजा सिद्धार्थ कुल मर्यादा के अनुसार दस दिन तक उत्सव मनाते रहे। जब तक उत्सव चलता रहा तब तक राजा सिद्धार्थ हजारो-लाखो प्रकार के यागो (पूजा-सामग्रियाँ) को, दानो को, भोगो को देता और दिलवाता रहा तथा हजारो और लाखो प्रकार की भेट स्वीकार करता और करवाता रहा।

श्रमण भगवन्त महावीर के माता-पिता प्रथम दिन कुल परम्परा के अनुसार पुत्र-जन्म निमित्त करने योग्य अनुष्ठान करते है। तृतीय दिवस चन्द्र-सूर्य के सुदर्शन का उत्सव करते है। छठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव करते है। ग्यारहवाँ दिन व्यतीत होने के पश्चात् सर्व प्रकार की अशुचि निवारण होने पर जब बारहवाँ दिन आया तब विपुल प्रमाण मे भोजन-पानी, विविध खादिम-स्वादिम पदार्थ तैयार कराते है। अपने मित्रो ज्ञाति-जनो, स्वजनो तथा ज्ञातृवश के क्षत्रियो को आमन्त्रण देते है। वे सभी आमन्त्रण को पाकर उत्सव मे जाने योग्य मगलमय वस्त्राभरणो को धारण कर, भोजन का समय होने पर भोजन मण्डप मे आते है। भोजन मण्डप मे उत्तम सुखासन पर बैठते है और मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो व ज्ञातृवश के क्षत्रियो के साथ विविध प्रकार के भोजन-पान खादिम और स्वादिम का आस्वादन स्वय करते है और दूसरो को करवाते है।

इस प्रकार भोजन करने के बाद शुचिभूत होते है।

पुष्प, वस्त्र, माला, आभूषण आदि से स्वजन-परिजनो का सत्कार सम्मान करते हैं। सत्कार-सम्मान करने बाद भगवान के माता-पिता ज्ञातृवशीय क्षत्रियो के समक्ष इस प्रकार बोले—"जिस रात्रि मे श्रमण भगवत महावीर ज्ञातृकुल मे आये तब से स्वर्ण, रत्न, मुक्ता, प्रवाल, माणिक, हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य आदि सारभूत सम्पत्ति मे वृद्धि हुई, प्रीति व सत्कार की दृष्टि से हमारी अभिवृद्धि होने लगी, तब हमारे मानस मे इस प्रकार का चिन्तन उत्पन्न हुआ कि जब हमारा पुत्र जन्म लेगा तो हम उसके गुणो के अनुसार, गुणनिष्पन्न और यथार्थ नाम वर्धमान रखेंगे। अत सकल्पानुसार कुमार का नाम वर्धमान रखा जा रहा है।" सभी ने सहर्ष सम्मति प्रदान की।

भगवान महावीर का लालन-पालन उच्च एवं पवित्र सस्कारो के वातावरण मे हुआ। उनके सभी लक्षण होनहार थे। सुकुमार-सुमन की तरह उनका बचपन नई अगडाई ले रहा था। उनका इठलाता हुआ तन सुगठित था और मुखमण्डल सूर्य-सा तेजस्वितापूर्ण, हृदय मखमल-सा कोमल और भावनाएँ समुद्र-सी विराट थी। बालक होने पर भी वे वीर, साहसी और धैर्यशाली थे।

भगवान महावीर जन्म से ही अतुल बली थे। उनके बल के सबध मे उपमालकार से बताया गया है कि १२ सुभटो का बल एक वृषभ मे, दस वृषभो का बल एक अश्व मे, बारह अश्वो का बल एक महिष मे, १५ महिषो का बल एक हाथी मे, ५०० हाथियो का बल एक केशरी सिंह मे, २००० (दो हजार) केशरी सिंहो का बल एक अष्टापद मे, दस लाख अष्टापदो का बल एक बलदेव मे, दो बलदेवो का बल एक वासुदेव मे, दो वासुदेवो का बल एक चक्रवर्ती मे, एक लाख चक्रवर्तियो का बल एक नागेन्द्र मे, एक करोड नागेन्द्रो का बल एक इन्द्र मे, ऐसे अनन्त इन्द्रो का बल तीर्थकरो की एक कनिष्ठ अगुलि मे होता है। उनके बल की तुलना किसी के बल से नही की जा सकती।[1]

प्रकारान्तर से भाष्य मे कहा है—कुए के किनारे बैठे हुए वासुदेव को लोह की शृ खलाओ से बाँधकर यदि सोलह हजार राजा अपनी सेनाओ के साथ सपूर्ण शक्ति लगाकर खीचे, तथापि वासुदेव आनन्दपूर्वक बैठे हुए भोजन करते रहे, किञ्चित् मात्र भी उस स्थान से न हिले न डुले अर्थात् वहाँ से चलायमान नही होते हैं, ऐसे वासुदेव से दुगुना बल चक्रवर्ती मे होता है और चक्रवर्ती मे भी अपरिमित बल तीर्थंकरो मे होता है।

बाल्यकाल एव यौवन

बाल क्रीडा का वर्णन आगम साहित्य मे नही मिलता है किन्तु प्रथम आवश्यकनिर्युक्ति के भीषण पद की व्याख्या करते हुए विशेषावश्यकभाष्य मे सक्षेप मे कुछ सकेत किया गया है। उसके बाद के आचार्यो ने उस पर विस्तार से लिखा है।

भगवान् ८ (आठ) वर्ष की अवस्था के हो चुके थे। उस समय अपने राजमहल के बगीचो मे बालक्रीडा कर रहे थे। एक समय अपने साथियो के साथ वृक्ष को लक्ष्य कर दौडकर प्रथम चढकर नीचे उतर आने वाला

---

१ भगवान महावीर एक अनुशीलन, पृष्ठ २६८

विजयी वालक पराजित के कधो पर चढकर उस स्थान पर जाता जहाँ से होड शुरु की थी—ऐसा खेल खेलने लगे। उस समय भगवान के साहस की परीक्षा लेने के लिये एक देव सर्प का रूप रखकर उस वृक्ष से लिपट गया। साथी वच्चे भयभीत होकर भाग गये किन्तु वालक वर्धमान ने विना डरे उस सर्प को पकडकर एक तरफ रख दिया। इस क्रीडा का नाम "आमलकी क्रीडा" है।

दूसरे खेल का नाम "तिदुपक क्रीडा" है। इस खेल मे सभी वालक साथ मे दौडकर वृक्ष को जो छू लेता है वह विजयी वनकर दूसरे हारे हुए के कधे पर वैठता है। वह देवता भी वैसा ही रूप धारण कर साथियो मे जा मिला। वर्धमान विजयी वनकर उसी के कधे पर जा वैठे। तव देव ने अपना विकराल ताड जैसा रूप वनाकर भगवान को वहुत ऊँचा चढा दिया। भगवान अवधिज्ञान से जान गये और जोर से उसके मुक्का मारा। तव देवता वेदना से चीख उठा। देव ने अपना रूप वदल दिया। भगवान को नीचे उतार कर क्षमा माँगी।

देव नमस्कार कर वोला—'इन्द्र महाराज ने आपकी जैसी प्रशसा की थी वैसे ही आप वलशाली, धीर-वीर-महावीर है।' ऐसी स्तुति-प्रार्थना कर देवता चला गया।

आठ वर्ष पूर्ण होने पर माता-पिता ने वालक वर्धमान को कलाचार्य के पास विद्याध्ययन के लिये भेजा। परम्परानुसार पण्डित को उपहार मे नारियल, वहुमूल्य वस्त्राभूषण और विद्यार्थियो के लिए खाने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ और उपयोगी वस्तुएँ वितरित की।

जव वर्धमान छात्रालय मे जा रहे थे तव इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान मे देखा कि विशिष्टज्ञानी को सामान्यजन क्या पढायेगा। वर्धमान के वुद्धि-वैभव तथा सहज प्रतिभा का परिचय विद्यागुरु और जनता को कराने हेतु एक वृद्ध व्राह्मण का रूप वनाकर वहाँ आया। विद्यार्थियो और पण्डितो के सामने व्याकरण सवधी अनेक जटिल प्रश्न पूछे। वर्धमान ने अकाट्य उत्तर दिये। पण्डित विद्यार्थी सभी चकित रह गये। पण्डित ने अपने पुराने प्रश्न वर्द्धमान के सामने रखे। वर्धमान ने उत्तर दिये। पण्डित साश्चर्य वालक वर्धमान की तरफ देखने लगा तो वृद्ध व्राह्मण ने कहा "यह साधारण वालक नही अपितु विद्या का सागर, सम्पूर्ण शास्त्रो का पारगामी है।"

वृद्ध व्राह्मण ने वर्धमान के मुख से नि सृत उन उत्तरो को व्यवस्थित सकलित कर 'इन्द्र व्याकरण' की सज्ञा दी।

वर्धमान पुन माता-पिता के पास आये। पुत्र की असाधारण योग्यता को देखकर माता-पिता के आश्चर्य का पार न रहा। वे प्रसन्न हो उठे।

ये बाते मूल पाठ आगम मे नही मिलती है किन्तु आचार्यो ने प्रभु के गुणो का विकास बतलाते हुए ऐसा लिखा है।

जीवन मे सर्वप्रथम शिक्षा का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर मे भोजन का। भोजन के अभाव मे शरीर नही टिक सकता, ठीक वैसे ही ज्ञान के बिना जीवन भी व्यर्थ समझा जाता है। ज्ञान हृदय का आलोक और आत्मा की आँख है। जिस समाज और जाति मे ज्ञान की परख है, वही समाज और जाति सम्पन्न कहलाती है। ज्ञान की महिमा का वर्णन नीति मे इस प्रकार है—

"न ज्ञानतुल्य किल कल्पवृक्षो, न ज्ञानतुल्य किल कामधेनु ।
न ज्ञानतुल्य किल कामकुम्भो, ज्ञानेन चिंतामणिरप्यतुल्य ॥

अथवा

सबसे प्रथम कर्त्तव्य है, शिक्षा बढाना देश मे ।
शिक्षा बिना ही पड रहे हैं, आज सब जन क्लेश मे ॥
शिक्षा बिना कोई कभी बन सकता नहीं सत्पात्र है ।
शिक्षा बिना कल्याण की, आशा दुराशा मात्र है ॥

लक्ष्मी सत्यानुसारिणी, बुद्धि कर्मानुसारिणी, विद्याभ्यासानुसारिणी होती है। अभ्यास करने से अवश्य ही ज्ञान का विकास होता है। कहा भी है —

करत-करत अभ्यास के, जडमति होत सुजान ।
रसरी आवत जात ते, शिल पर पडत निशान ॥

इस प्रकार ज्ञान की प्राबल्यता भगवान महावीर के जीवन में थी। वे जन्म से ही विशुद्ध मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञानो के अधिपति थे।

विवाह

जब भगवान महावीर ने यौवन के मधुर उद्यान मे प्रवेश किया तब उनके माता-पिता ने उन्हे संसार की मोह-माया के बधन मे बाँधने का विचार किया। भगवान की अन्तरात्मा उसे स्वीकार करना नही चाहती थी, किन्तु माता के प्रेम भरे आग्रह तथा पिता की हठ को उनका भावुक हृदय टाल नही सका अर्थात् मोहकर्म की उदयमान दशा को वर्धमान भी नही टाल सके।

समाप्त होने पर मै दीक्षा ग्रहण करूँगा—ऐसा मल्लि प्रभु ने निश्चित विचार किया। तब शक्रेन्द्र ने भण्डार भरने का आदेश दिया और बाद मे लोकातिक देवो ने सबोधन किया। पहले दान का विषय हो या,सबोधन किन्तु इतना अवश्य है कि प्रत्येक तीर्थंकर के दोनो ही कार्यक्रम अवश्य होते है।

दीक्षा लेने का एक वर्ष अवशेष रहा तब वर्धमान के मन मे यह सकल्प हुआ कि "**सवच्छरावसाणे निक्खविस्सामि त्ति मण पहारेई**" मैं एक वर्ष के पश्चात निष्क्रमण करूँगा। तब सौधर्मेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से देखा कि वर्धमान वार्षिक दान देने का विचार कर रहे है अब मेरा कर्त्तव्य है कि मैं तीन अरब, अठासी करोड और अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ उनके भण्डार मे भर दूँ।

मूल—

तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीतिं ज होति कोडीओ।
असितिं च सयसहस्सा इन्दा दलयन्ति अरहाण ॥१॥

—ज्ञाताधर्म० अ० ८

ऐसा सोच शक्रेन्द्र ने वैश्रमण देव को बुला कर आदेश दिया कि "किसी के यहाँ डाका-धाडा डालना नही, छल-कपट कर कोई द्रव्य लाना नही, किसी को दहशत पहुँचे ऐसा काम करना नही किन्तु ग्राम-नगर-अगर-पुर-पाटण इत्यादि स्थानो मे जो धन होवे और जिसका कोई मालिक नही होवे, कोई वारिस खाने-खर्चने-वापरने वाला न होवे ऐसा धन लाकर श्री तीर्थंकर का भण्डार भरो।"

सौधर्मेन्द्र की आज्ञा को सविनय स्वीकार कर वैश्रमण देव स्वस्थान आये और १० जाति के जृम्भक देवो को बुलाकर शक्रेन्द्र महाराज के आदेशानुसार वैश्रमण देव ने उन देवा को आदेश दिया। जृम्भक देवो ने कथनानुसार सारा कार्य किया। यानि उस धन के सोनैये बनाकर प्रत्येक सिक्के पर तीर्थंकर व उनके माता-पिता नाम अकित कर भण्डार मे स्थापित किया।

वर्धमान प्रतिदिन एक करोड आठ लाख (१,०८,००,०००) सोनैये का दान देने लगे। दान लेने वालो मे सनाथ-अनाथ, रोगी, भिक्षुक, दरिद्र आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति थे। भारत के कोने-कोने मे अर्थात् दूर-दूर से

लोग दान के लिए आने लगे। एक वर्ष मे तीन अरब, अठासी करोड़ और अस्सी लाख (३,८८,८०,०००) की स्वर्ण मुद्राएँ दान मे दी।

राजा नन्दीवर्धन ने कुण्डग्राम नगर मे तथा उस प्रान्त मे यत्र-तत्र-सर्वत्र भोजनशालाएँ निर्माण कराई, जिसमे सभी जन आनन्द से भोजन कर सके, वस्त्र-पात्र आदि जो वस्तुएँ जिसे चाहिए वे वस्तुएँ भी देने लगे, जिससे लोगो मे यह बात फैल गई कि नन्दीवर्धन राजा के यहाँ पर जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे वह वस्तु मिलती है।

दान का बहुत बडा महत्व है। प्रभु ने दान को भी मोक्ष का द्वार बताया है। कथनी और करणी की एकरूपता प्रभु महावीर के जीवन मे ही नही, सभी तीर्थकरो के जीवन से सिद्ध होती है। सुकृतखाता—दानधर्म को सभी तीर्थकरो ने अपने जीवन काल मे पहले धारण किया फिर सयम पद को अगीकार किया।

अभिनिष्क्रमण

मूल—

समणे भगव महावीरे दक्खे, दक्खपत्तिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहसि कट्टु अम्मापिईहि देवत्तगएहि गुरुमहत्तरएहि अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंतिएहि जियकप्पिएहि देवेहि ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मणुन्नाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मंगल्लाहि मियमहुरसस्सिरीयाहि हिययगमणिज्जाहि हिययपल्हायणिज्जाहि गभीराहि अपुणरुत्ताहि वग्गूहि अणवरय अभिनंदाणा य अभिथुव्वमाणा य एव वयासी जय जय नन्दा! जय जय भद्दा! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा! बुज्झाहि भगव लोगनाहा! पवत्तेहि धम्मतित्थ हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंज्जति॥

—कल्पसूत्र, सूत्र ११०

मूलार्थ—

श्रमण भगवान महावीर दक्ष थे। उनकी प्रतिज्ञा भी दक्ष थी। अलीन थे। भद्र, विनीत और ज्ञात थे अथवा ज्ञातृ वश के थे। ज्ञातृ वश के पुत्र थे, ज्ञातृवश (सिद्धार्थ राजा) के कुल मे चन्द्र के समान थे, विदेह थे, विदेहदिन्न या विदेहदिन्ना-त्रिशला माता के पुत्र थे। विदेहजच्च अर्थात् त्रिशला माता के शरीर से जन्म ग्रहण किया हुआ था या विदेह वासियो मे श्रेष्ठ थे अत्यन्त सुकुमार थे। तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम मे रहकर अपने माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर अपने ज्येष्ठ पुरुषो की अनुज्ञा प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर तथा लोकातिक जीतकल्पी देवो ने उस प्रकार की इष्ट, मनोहर, प्रिय मनोज्ञ, मन को आल्हाद करने वाली, उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मगलरूप, परिमित, मधुर-शोभायुक्त, हृदय को रुचिकर लगने वाली, हृदय को प्रसन्न करने वाली गम्भीर, पुनरुक्ति आदि से रहित वाणी से भगवान को निरन्तर अभिनन्दन अर्पित करके भगवान की स्तुति करते हुए वे देव इस प्रकार बोले—"हे नन्द ! (आनन्दरूप) तुम्हारी जय हो विजय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, भद्र हो। हे उत्तमोत्तम क्षत्रिय ! हे क्षत्रियनरपु गव ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भगवान ! लोकनाथ ! बोध प्राप्त करो। सम्पूर्ण जगत मे सभी जीवो का हित, सुख और नि.श्रेयस करने वाला धर्मतीर्थ, धर्मचक्र प्रवर्तन करो। यह धर्म चक्र सम्पूर्ण जगत् मे सभी जीवो के लिए हितकर, सुखकर और नि श्रेयस को करने वाला होगा।" इस प्रकार कहकर वे देव 'जय-जय' नाद करने लगे।

भगवान महावीर ने काका सुपार्श्व बडे भाई नन्दीवर्धन आदि के समक्ष अपना दृढ दीक्षा का निश्चय निवेदन किया। उन सभी ने 'यथासुख' कहकर अनुमोदन किया और दीक्षा महोत्सव प्रारम्भ किया। ६४ ही इन्द्र दीक्षा महोत्सव हेतु आये। सुन्दर सिहासन पर बैठाकर सहस्रपाक तैल से वर्धमान के शरीर पर मालिश कर सुगन्धित जल मे स्नान कराते हैं। गवकाषाय वस्त्र मे शरीर को पोछ कर गोशीर्षादि चन्दन का लेप किया और अलकारो मे कल्पवृक्ष की तरह सुसज्जित किया।

नाना प्रकार के चित्रो मे चित्रित चन्द्रप्रभा नाम की पालकी पुष्पो से सजाई। पालकी के बीच मे एक सुन्दर रत्नजटित सिहासन पर वर्धमान आरूढ हुए। उस दिन वर्धमान को छट्ठम यानि बेले का तप था। मनुष्यों, इन्द्रो व देवो ने मिलकर शिविका को उठाया। राजा नन्दीवर्धन चतुरगिणी

सेना सहित भगवान महावीर के पीछे गजारूढ हो चल रहे थे। प्रभु की पालकी के आगे घोडे, दोनो तरफ हाथी और पीछे रथ चल रहे थे। अनेक प्रकार के वाद्यों से गगन गुंजित हो रहा था। दीक्षा जुलूस विशाल जन समूह के साथ क्षत्रियकुण्डग्राम के मध्य मे होते हुए ज्ञातृ-खण्ड उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे पहुँचा। मृगसिर वदी दशमी का दिन था, उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र मे दिन के चौथे प्रहर मे रथ से उतर कर समस्त वस्त्रा-भूषण अपने हाथो से उतारे और स्वयमेव पचमुष्टि लुचन किया। अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके वर्धमान ने सामायिक चारित्र स्वीकार किया। प्रभु ने जिस समय सामायिक चारित्र की प्रतिज्ञा धारण की उस समय देव और मानव सभी चित्रलिखित से रहे गये। सौधर्मेंद्र ने भगवान को देवदूष्य वस्त्र प्रदान किया। महावीर भगवान ने अपना जीताचार समझ कर उसे वामस्कध पर धारण किया। महावीर ने एकाकी ही दीक्षा धारण की। दीक्षा लेते ही प्रभु महावीर को मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो गया। मन पर्यव ज्ञान मे अढाई द्वीप मे रहने वाले सज्ञी जीवो के मन की वात को प्रभु महावीर प्रत्यक्ष जानने लग गये।

वैराग्य का निमित्त ऐसा भी सुना जाता है कि—

एक वक्त महावीर अपने महलो के पीछे घूम रहे थे। दिमाग मे धर्म के नाम पर होने वाली नृशस हिसा, नारी-अपमान और अछूतो के प्रति उच्च कुलाभिमानी लोगो की घृणा का चितन चल रहा था, कि ऐसा क्यो हो रहा है। जग को सुख मे जीओ, और सुख से जीने देने का पाठ कैसे पढाया जाय। वास्तव मे त्याग के विना आत्मा का उद्धार और जग का सुधार होना कैसे सभव हो सकता है। ऐसे समय मे यकायक वर्धमान राज-कुमार की निगाह एक व्यक्ति पर गिरी। वह व्यक्ति ववराता हुआ भाग रहा था, चक्कर आ जाने से फाटक के सामने गिर पडा। महावीर उसे देखकर फाटक पर आये। पडे हुए उस व्यक्ति को उठाने लगे तो वह अत्यन्त भयभीत होता हुआ बोला "मालिक! राजकुमार! आप मुझे मत छूइये।" राजकुमार वर्द्धमान आश्चर्यचकित हो कहने लगे कि 'ऐसा क्यो'?

वह पडा व्यक्ति शक्ति को वटोर कर दीन नयनो से राजकुमार की तरफ टकटकी निगाह कर बोला—मालिक मै अछूत हूँ। चाडाल हू।

राजकुमार—तेरी ऐसी दशा क्यो हुई? किसके द्वारा हुई?

चाण्डाल—आज गाँव के वाहर एक यज्ञ हो रहा है। जहाँ ब्राह्मण लोग मन्त्रोच्चारण कर रहे है। उस रास्ते से मै अनभिज्ञ गुजरा तो मन्त्रो-

च्चारण के स्वर मेरे कानो तक पहुँच गये। इसी अपराध के कारण याज्ञिक लोग मुझ पर भूखे शेर की तरह टूट पडे। खूब लाठी प्रहार किया, फिर भी भाग-दौडकर मैने अपनी जान बचाई। मालिक आपने भी उनका नियम सुना होगा—'वेद के मन्त्रो को अछूत नही सुन सकते। यदि सुन ले तो उनके कानो मे गर्म शीशा डाल दिया जाय।' मेरी भी यही स्थिति बनने वाली थी, लेकिन भाग्यबल से भागता हुआ अन्यत्र न गिर कर यही पर गिरा, आपकी छाया मे आ गया हूँ। आप निष्पक्षी मानव है।

राजकुमार ने राजवैद्य को बुलाया, और रोगी की चिकित्सा का आदेश दिया।

वैद्य—अहो राजकुमार! यह व्यक्ति अछूत है, मैं कैसे छू सकता हूँ?

राजकुमार वैद्य की बात सुनकर कुछ क्षण स्तब्ध हो गये। चिंतन चला कि मुझे इस अछूतवाद का प्रतिकार करना अति आवश्यक है।

वर्धमान ने सारी घटना नन्दीवर्धन नरेश को सुनाई। नरेश बोले—भैया! तुम्ही कहो। उस अछूत को वैद्य कैसे छू सकता है। छुये बिना मरहम-पट्टी हो नही सकती।

वर्धमान ने उस चाण्डाल की मरहम-पट्टी, सेवा तन-मन-धन से की। स्वस्थ बनाया।

इस घटना ने महावीर के दिल-दिमाग मे एक चिन्तन पैदा किया कि आज मानव ही मानव से घृणा कर रहा है। इस रूढि को मिटाने के लिये मुझे कठोरतम साधना की ओर कदम बढाना अतीव आवश्यक है।

वर्धमान ने दीक्षा ग्रहण करने का निर्णय किया, लोकातिक देवो ने उद्बोधन दिया, वर्षीदान देकर दुनिया को दया-दान पाठ पढाया और यह समझा दिया कि प्राणीमात्र करुणा के पात्र है।

साधक जीवन

अभिग्रह

आचारागसूत्र, द्वितीयश्रुतस्कध, २४वा अध्ययन, सूत्र न० ३१ के अनुसार प्रभु महावीर ने दीक्षा ग्रहण करके एक महान कठोर अभिग्रह धारण किया :—

"आज से साढे बारह वर्ष एक पक्ष तक यानि केवलज्ञान उत्पन्न न हो तब तक मैं देह की ममता को छोडकर रहूँगा । अर्थात् इस बीच मे देव, मानव या तिर्यच जीवो की ओर से जो भी उपसर्ग-कष्ट उत्पन्न होगे, उनको समभावपूर्वक, सम्यक्रूप से सहन करूँगा ।"

भगवान ऋषभदेव के साथ ४००० पुरुषो ने, वासुपूज्य स्वामी के साथ ६०० पुरुषो ने, मल्लिजिन के साथ ३०० पुरुष और ३०० स्त्रियो ने, पार्श्व प्रभु के साथ ३०० पुरुषो ने, महावीर प्रभु ने अकेले ही और अन्य १९ तीर्थंकरो के साथ एक-एक हजार पुरुषो ने दीक्षा ग्रहण की थी ।

भगवान दीक्षित हो ज्ञातृखण्ड वन से विहार कर गये । नन्दीवर्धन आदि नरगण टकटकी लगा कर देखते रहे । आँखो से ओझल होते ही सबके नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगी । नन्दीवर्धन का धैर्य छूट गया । भाई का वियोग हृदय को विदीर्ण करने लगा । चीख मारकर रोने लगे । उनके रुदन से अश्व-गज आदि भी अश्रु बहाने लगे । मानो एक महावीर के चले जाने पर ज्ञातृवनखण्ड शून्य सा लगने लगा । अक बिना शून्य, आँख बिना मुखमण्डल, नमक बिना भोजन के समान वायुमण्डल फीका सा दिखाई देने लगा । सभी कुछ क्षण रुककर स्वस्थान को चले गये ।

वस्त्रदान[1]

समभाव मे निमग्न महावीर भिक्षु बनकर वन-वन विहार कर रहे

---

१ जैन श्रमण परम्परा के नियमानुसार मुनि बनने पर अपनी नेश्रावित वस्तु सभोगी के अलावा किसी अन्य को देना उचित नही माना गया है । आचाराग,

थे। उन्हे मार्ग मे राजा सिद्धार्थ का बालमित्र सोम नाम का ब्राह्मण मिला। अपनी दरिद्रता का परिचय देते हुए करुण स्वर से बोला—"हे दीनानाथ! हे कृपालु! आपने सांवत्सरिक दान जनता को दिया। अनेक भिखारी लोग आपके हाथो से दान पा दरिद्रता के पाश से मुक्त हुए। किन्तु मेरे जैसा अभागा, भाग्यहीन दरिद्री ही रह गया। आपने दान दिया उस समय मैं भूख से बिलखते हुए परिवार को छोडकर धन की आशा से दूर दिशावर मॉगने गया हुआ था। आप धन की वर्षा कर रहे है, ऐसा मै नही जान पाया। मैं तो भ्रमण कर हताश ओर निराश होकर खाली हाथ घर लोटा। पत्नी ने भाग्य की भर्त्सना करते हुए कहा—'यहाँ सोने का मेह बरस रहा था, उस समय आप कहाँ भटक रहे थे? अब भी शीघ्र जाओ ओर महावीर से याचना करो। वे दीनबंधु है, निहाल कर देगे।' अहो दानगुरु! मुझे सुखी कीजिये। अहो भगवन्! क्या कल्पवृक्ष के पास आकर भी मेरी मनोकामना पूर्ण नही होगी।" कहते-कहते ब्राह्मण की आँखो से आँसू बहने लगे।

ब्राह्मण की दयनीय दशा को देखकर महावीर का दयालु हृदय द्रवित हो गया। उन्होने उसी क्षण इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य-चीवर का अर्धभाग उसे प्रदान कर दिया।[1] ब्राह्मण अपने भाग्य को सराहता हुआ चल दिया।

कल्पसूत्र आदि म वस्त्रदान का उल्लेख नही मिलता है किन्तु पश्चातवर्ती आचार्यों ने यह उल्लेख किया है अत यह विषय यहाँ उट्टंकित किया जा रहा है।

१ भगवान महावीर एक अनुशीलन, लेखक —देवेन्द्र मुनिजी।

विशेष —[ऐसी एक धारणा है कि प्रभु ऋषभदेव ने अपने १०० पुत्रो की व्यव...ी। अपना राज्य उन्हे दे दिया। प्रभु मुण्डित हो गये। पीछे से उनके पा... कर दो पुत्र नमि और विनमि अयोध्या आये। १०० भाइयो को तो रा... पिताश्री ने दिया, हमारो नही दिया। भरत बोले—मैं तुम्हे देता हूँ। हमे ... राज्य दे, हम नही लेंगे। ऐसा सोच वे दोनो प्रभु ऋषभदेव के पास आ... अनुनय-विनय किया कि आप हमे राज्य दें। शक्रेन्द्र ने भी समझाया पर वे ... माने। अन्त मे प्रभु ने पहले माफी मांग कर शक्रेन्द्र ने ऋषभदेव के शरीर ... प्रवेश कर कहा—"वैताढ्य पर्वत पर जो दो विद्याधर की श्रेणी है। वहां ... राज्य तुम्हे देता हूं।" कहने का प्रयोजन यहां तो देव ने प्रवेश होकर न... विनमि को राज्य दिया, किन्तु महावीर ने देवदूष्य स्वय ही दिया। कुछ मम... नहीं आता।]

ब्राह्मणी वस्त्र को देखकर सन्तुष्ट हुई। वस्त्र की एक किनारी जिस ओर से फटी हुई थी उसे ठीक कराने हेतु एक रफूगर को वस्त्र दिया। वस्त्र को देखकर रफूगर बहुत खुश हुआ। ब्राह्मण से पूछा—"यह तो देव प्रदत्त वस्त्र दिखता है और बहुत मूल्य वाला है। यदि पूरा वस्त्र मिल जाए तो लाख स्वर्णमुद्रा मिल सकती है।" रफूगर की प्रेरणा मिलने पर, अर्ध वस्त्र को प्राप्त करने हेतु ब्राह्मण पुन "महावीर मुनि" के पास पहुँचा। एक वर्ष और एक मास के पश्चात् वह चीवर महावीर स्कंध से नीचे गिर पडा।

ब्राह्मण उसे लेकर रफूगर के पास आया। रफूगर ने उसे सीकर ठीक कर दिया और ब्राह्मण ने वह वस्त्र एक लाख सोनैया मे राजा नन्दीवर्धन को बेच दिया। ब्राह्मण और ब्राह्मणी सदा के लिए सुखी बन गये।

इस प्रकार वस्त्रदान की घटना से जहाँ भगवान की परम कारुणिकता झलकती है, वहाँ स्वदेह के प्रति उत्कृष्ट अनासक्त वृत्ति भी।

क्षमामूर्ति महावीर

वर्धमान राजकुमार 'श्रमण वर्धमान' बन गये। श्रमणधर्म की आराधना करने वर्धमान राजकुमार दीक्षित हुए, उसी दिन एक मुहूर्त दिन रहते कूर्मारग्राम मे पधारे। कूर्मारग्राम को आजकल "कामन छापरा" नाम से पुकारा जाता है। संध्या का समय समीर आ रहा था, पक्षीगण अपने घोसलो मे पहुँच रहे थे। सूर्य पश्चिम क्षितिज पर से नीचे उतर रहा था, धूप पीली पड चुकी थी। महावीर के मन मे साधना करने का उत्साह बढ रहा था। गाँव के बाहर विशालकाय वटवृक्ष के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित कर ध्यान मे स्थिर हो गये।

"एग पोग्गल दिट्ठी अणिमिसनयणे" ध्यान करते समय भगवान किसी एक पदार्थ पर देखते हुए एक ही जगह दृष्टि रखकर द्रव्य-गुण-पर्याय का चिंतन करते है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान महावीर किसी भी मूर्ति को महत्व नही देते थे। केवल दृष्टि एक जगह स्थिर रखने के लिए ककर, पत्थर, फल, फूल किसी भी जगह मेषोन्मेष रहित हो चिन्तन करते थे। मूल हेतु मन-वचन-काय योग स्थिर बनाकर आत्म-चिंतन करना था। आत्मवाद, कर्मवाद, लोकवाद, क्रियावाद पर चिंतन करना ही महापुरुषो का लक्ष्य होता है।

प्रभु वर्धमान अपने आत्म-चिंतन मे लीन थे। गोदोहन का समय हो रहा था। गोधन गाँव की तरफ ले जाया जा रहा था। एक ग्वाले के बैल

खेत मे चर रहे थे। कुछ समय के लिए ग्वाले को अपने घर जाना बहुत जरूरी था, गो-दुहन करना था। सोचा बैल किसको सँभला कर गाँव जाऊँ। सोचते-सोचते इधर-उधर दृष्टि फैलाकर देखा वृक्ष की छाया मे एक श्रमण ध्यानस्थ खडा है। ग्वाले ने नजदीक आकर कहा—"महात्माजी! बैलो का ध्यान रखना जरा। मैं बहुत शीघ्र गाये दुहकर आता हूँ।" इतना कहकर ग्वाला गाँव मे चला गया। भगवान ध्यानस्थ थे, हाँ या ना उन्होने कुछ नही कहा। न उन्हे कहना ही था। वे श्रमण भला किसके बैलो की रखवाली करते?

दिन भर के श्रम से थके बैल क्षुधा और पिपासा से पीडित चलते हुए दूर चले गये। कुछ ही समय बाद गहरा अँधेरा भी छा गया।

ग्वाला अपने कार्य से निवृत्त होकर पुन वन मे आया। जहाँ छोड कर गया था, वहाँ बैल न मिले। तब उसने श्रमण से पूछा—"बतलाओ, मेरे बैल कहाँ है?" भगवान ध्यानस्थ थे। उत्तर न मिला। ग्वाला अपने बैलो को इधर-उधर ढूँढने लगा। रात भर मे उसने नदी के किनारे-किनारे गहन झाडियो मे, गहरे नालो मे, ऊँचे टीले ढूँढे। पर बैल कही नही पाये। ढूँढने मे ही रात व्यतीत हो गई। सूर्योदय होते ही पुन लौटा, बैलो को ढूँढते-ढूँढते। श्रमण के थोडी दूर पहाडी की तलहटी मे, वृक्षो के बीच मे बैठे बैल पाये। दिल मे सन्देह हुआ कि यह श्रमण वेश मे कोई दुष्ट चोर है। मेरे बैलो को चुराने के इरादे से एकात मे छिपा दिया। अगर अभी मैं यहाँ नही आता तो यह मेरे बैलो को लेकर नौ दो ग्यारह हो जाता।

मैं रात भर भटका बैल नही बताये—क्रोधित हो बैलो को बाँधने की जो रस्सी कधे पर पडी थी उसे हाथ मे ले श्रमण को मारने की तैयारी की।

इधर सौधर्मेन्द्र को सौधर्म सभा मे सिंहासन पर बैठे हुए स्मृति आई कि कल श्रमण बने ये वर्धमान, अभी क्या कर रहे है? अवधिज्ञान से ग्वाले को इस प्रकार तैयारी करते देखा तो तुरन्त वहाँ आये, उसे वही रोक दिया और कहा—"अरे दुष्ट! क्या कर रहा है? सावधान!" इस प्रकार जोशीला वचन सुन ग्वाला भयभीत हो गया, थर-थर कॉपने लगा। पुन इन्द्र ने कहा—"रे मूर्ख! जिसे तू चोर समझ रहा है, ये चोर नही हैं किन्तु हैं सिद्धार्थ राजा के तेजस्वी पुत्र वर्धमान। नन्दीवर्धन नरेश के लघु भाई। राज्य के ठाठ को लात मार कर आत्मसाधना के लिये निकले है। इनो को त्याग कर निकले है, ये क्या तेरे बैलो की चोरी करने निकले हैं। और दुरात्मा, खेद है कि तू प्रभु पर प्रहार करने चला।

"अरे तेरा तो यह कर्तव्य था कि महापुरुष की सेवा करता, अब भी तू प्रभु से माफी माँगकर पाप को धो ले।"

थर-थर काँपते ग्वाले ने प्रभु के चरण पकड लिये और माफी माँग कर चला गया।

सौधर्मेन्द्र खडे है, परन्तु दिमाग मे चितन चलने लगा कि आज की जनता मे अज्ञान अधिक फैला हुआ है। कहा जाता है कि बुद्धिमान मनुष्य मूर्खो से ज्ञान प्राप्त करते है परन्तु मूर्ख मनुष्य बुद्धिमान अथवा ज्ञानियो से भी ज्ञान प्राप्त नही कर सकते।

प्रभु ने किञ्चित्मात्र भी ग्वाले की तरफ ध्यान नही दिया। कारण कि जो आत्मज्ञानी होते है वे कदापि चलायमान नही होते।

भला आदमी भली विचारे, बुरी विचारे बादो।
एक खेत मे दोय निपजे, खरबूजो ने कादो॥

वर्धमान मुनि प्राणीमात्र का हित चितन करने वाले समभाव की साधना मे लीन थे। ससार मे चार प्रकार के मानव होते हे।

एके सत्पुरुषा. परार्थघटका, स्वार्थान्परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत, स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुष राक्षसा. परहित, स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थक परहित, के ते न जानीमहे॥

हाँ तो उत्तम पुरुप होते है वे परहित मे अपने हित यानि स्वार्थ का भी परित्याग कर देते है। जो सामान्य पुरुप होते है वे अपना और पर का हित साधते है। अधम पुरुप अपने हित की सिद्धि मे पर का अहित भी कर देते है और ऐसे भी मानव होते है जो निरर्थक ही पर का अहित कर देते है।

प्रभु वर्धमान तो पुरुपोत्तम हैं। मानवता के मार्ग से भटकने वाले प्राणियो को भी धर्म का मार्गदर्शन कराने वाले है। ये तो अपनी साधना मे आगे बढने वाले है। ऐसा सोचकर इन्द्र ने भगवान से प्रार्थना की "हे भगवन्! साधना का पथ बडा विकट है, जनता प्राय अज्ञानग्रस्त है, मूढ है। ग्वाले की तरह अज्ञानी लोग आपको जगह-जगह मिलते रहेगे, कष्ट देगे। साढे बारह वर्ष एक पक्ष तक आपको विविध कष्टो का सामना करना पडेगा। अत कष्ट निवारण के लिए मेरा रहना जरूरी है। आप जैसे उत्तम पुरुपो की सेवा-भक्ति करने से मेरा भी जीवन सफल बनेगा।" यह सुनकर भगवान महावीर बोले—"हे देवराज! आज पर्यन्त ऐसा कभी न हुआ था, न होगा,

न आज हो सकता है। कारण मोक्ष-मार्ग की साधना मे किसी का सहारा नही लिया जाता है। आत्मबल के आधार से ही आने वाले परीषह-उपसर्गो का सामना किया जाता है। अनन्त तीर्थकरो का आदेश है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे स्वय साधना करो। जिस प्रकार एक व्यक्ति उपवास-बेला-तेला का तप करे, उसमे भूख-प्यास सहन करने मे दूसरे का सहारा नही लिया जा सकता है, उसी प्रकार साधना मे आश्रय की अपेक्षा नही है।"

यह सुनकर इन्द्र नतमस्तक हो गया, सोचा कि आत्म-साधक संकटो का सामना सहर्ष करते है किन्तु किसी के आश्रय की अपेक्षा नही करते है। **"एगोचरे खग्गविसाणकप्पे"** साधक का आदर्श है कि वह अकेला अपने पुरुषार्थ से चलता रहे। **"करि सघट्टे सीहो, अहिलसइ किमन्न साहेज्ज"** विराटकाय हाथियो से घिर जाने पर भी क्या सिह कभी दूसरो के सहयोग की ओर मुँह ताकता है? अर्थात् नही। ऐसा सोच श्रद्धाभिभूत हो कोटि-कोटि वन्दन कर इन्द्र स्व-स्थान चले गये। श्रमण भगवान महावीर को उपवास का दूसरा दिवस पूर्ण हो रहा था।

दीक्षा के दूसरे दिवस प्रभु, कूर्मारगाँव से विहारकर कोल्लागसन्निवेश मे पहुँचे। भिक्षार्थ बहुल ब्राह्मण के घर पहुँचे। ब्राह्मण ने भक्तिभावपूर्वक खीर बहराई। भगवान वर्धमान ने षष्ठ भक्त का पारणा किया। उच्च भावना से उच्च पात्र तीर्थकर को दान देने से देवो ने ५ द्रव्य की वृष्टि की (१) सोनैया की वर्षा (२) पाँच वर्ण के पुष्पो की वर्षा (३) वस्त्रो की वर्षा (४) सुगधित जल की वर्षा, (५) अहोदान! अहोदान! ऐसा दुन्दुभिनाद हुआ यानि यश की वृष्टि हुई।

यहाँ एक बात विचारणीय है। भगवान वर्धमान के २७ भवो पर दृष्टिपात करते है तो प्रतीत होता है कि मनुष्य सबधी जितने भव उनमे अधिक से अधिक भव ब्राह्मण कुल के हुए है और अन्तिम भव देवानन्दा ब्राह्मणी के कुक्षि मे भगवान पधारे। आगे साधना के क्षेत्र मे किया तब भी प्रथम पारणा ब्राह्मण के द्वारा हुआ और प्रथम शिष्य ब्राह्मण हुए। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि किन्ही भवो मे वर्धमान ब्राह्मण वर्ग से विशेष सबध रहा होगा।

वर्धमान प्रभु का प्रथम चातुर्मास
कोल्लाग सन्निवेश और अस्थिग्राम

को्लागसन्निवेश से विहार कर वर्धमान प्रभु मोराकसन्नि[illegible] आए। वहाँ दुइज्जनन्त तापस का बहुत बडा आश्रम था। आश्रम का कु[illegible]

भगवान के पिता का मित्र था। अत वर्धमान को आते देख हर्षित हुआ कि 'ये मेरे मित्र के सुपुत्र हे'। श्रद्धा और स्नेह से उनका स्वागत किया। कुलपति के आग्रह से वहाँ एक दिन ठहर कर आगे विहार किया। कुलपति लम्बी दूर तक पहुँचाने गये। मगलमय दर्शन कर पुन लौटते समय निवेदन किया "हे कुमारवर! इस आश्रम को आप किसी अन्य का न समझे और अपना ही समझ कर जरूर पधारे। एकात-शात स्थान है, वर्षाकाल तो यही बिताकर हमे अवश्य कृतार्थ करे।"

कुलपति के स्नेह और आग्रह को देखकर भगवान ने अपना प्रथम वर्षावास वहाँ करने का विचार किया।

अपना राजमहल भी छोड आये, सुख-सुविधा का त्याग कर साधना के महा मार्ग पर निकल पडे थे। अब कहाँ स्थिर रहना? और कहाँ सुविधाओ का व्यामोह रखना था? किन्तु पूर्व निश्चय के अनुसार वर्षावास का समय सन्निकट आने पर महाश्रमण प्रभु वर्धमान कुलपति के आश्रम पर पधारे।

कुलपति ने वर्धमान श्रमण को चातुर्मास के लिए एक तरफ अच्छी छाई हुई कुटिया दे दी। कुटिया के आसपास का वातावरण एकात-शात था। धर्म-साधना के लिये जैसा एकात-शात स्थान चाहिये वैसा ही नीरव एकात-शात स्थान वह था। प्रभु कुटिया मे एक तरफ ध्यानमुद्रा मे खडे हो गये।

उस वर्ष मोराकसन्निवेश के आस-पास वर्षा का अभाव था। सूखा-सूखा-सा उष्ण मौसम था। गर्मी तेज थी।-आश्रमवासी उस गर्मी से छटपटाते थे। वर्षा न होने से त्राहि-त्राहि मच गई थी। हल्की-हल्की बूँदा-बूँदी से धरती की उष्णता अच्छी तरह शात नही हुई थी अधिक तो क्या दुष्काल इतने जोरो का पडा कि वहाँ नया घास तक नही उगने पाया था। इधर-उधर भटकने वाले पशु तापसो की झोपडियो पर रहा हुआ घास खाया करते थे। अपनी झोपडियो को बचाने मे तापस लोग भारी परेशान हो गये तथा पशुओ को डण्डा लेकर भगाते। महावीर जिन कुटिया मे ठहरे हुए थे उस कुटिया का सारा घास पशु खा चुके थे। मगर महावीर अपने ध्यान मे तल्लीन थे। प्रभु कुटिया तो क्या अपने शरीर की भी परवाह नही करते थे। कहा भी है—

को अभयदान दिया है। तुम अपनी प्रकृति के अनुसार क्रोध और घृणा के आवेश मे आकर मनुष्यो की हड्डियो का ढेर कर रहे हो। यह तुम्हारा क्रूर आचरण कभी भी आराम नही दे सकता। इस प्रकार औरो को दुख देने वाला कभी भी सुखी नही होता। क्षमा और प्रेम ही जीवन मे शान्ति देने वाला अनमोल मार्ग है। अभयदान देने से सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अमृतमय वाणी सुनकर यक्ष का मन वदल गया, अन्दर से क्रोध उपशात हुआ। यक्ष का जीवन सुधर गया। एक को प्रतिबोधित करने से हजारो-लाखो मानवो को शाति प्राप्त हुई।

यक्ष कुछ क्षण पूर्व जो निष्ठुर-दानव था वह भक्ति से विनम्र होकर प्रभु की स्तुति कर चरणो मे गिर पडा। बोला—भगवन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैने आपको नही पहचाना। इस प्रकार मनम्र स्तुति करने लगा। रेगिस्तान जैसे शुष्क हृदय मे करुणा का स्रोत वहने लगा।

पहले भयकर अट्टहास से दिशाएं कपायमान हो चुकी थी। अब सुमधुर स्वर लहरियो से दिशाएँ गूँजने लगी। रात्रि मे शूलपाणि का अट्टहास अस्थिग्रामवासियो ने सुना तो अनुमान लगा लिया कि वह मन्दिर मे स्थित श्रमण यक्ष का शिकार बन गया दिखता है और जब उषा के समय गीतो की मधुर ध्वनियाँ सुनी तो उन ग्रामवासियो के विचार अधिक दृढ हो गये कि उस साधु की मृत्यु हो गई अत उसी प्रसन्नता मे यह देव मधुर ध्वनियाँ अभिव्यक्त कर रहा है।

अस्थिग्राम मे उत्पल निमित्तज्ञ रहता था जो प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा मे श्रमण बना था। कुछ कारणो से श्रमणधर्म से पतित हो गया था उसे शूलपाणि यक्ष के यक्षायतन मे वर्धमान प्रभु के ठहरने के समाचार मिले तो कही भगवान का अनिष्ट न हो जाय इस कल्पना से उसका कलेजा धडक उठा। प्रात इन्द्रशर्मा पुजारी के साथ यक्षायतन में पहुँचा तो शूलपाणि यक्ष को प्रभु के चरणो में सेवा करता पाया। यह दृश्य देख पुजारी और निमित्तज्ञ के आश्चर्य का पार न रहा। दोनो चरणो मे झुक गये, बोले—प्रभो! आपका आत्मबल अपूर्व है। यक्ष प्रकोप को भी आपने शान्त कर दिया।

चातुर्मास के १५ दिन तो मोराकसन्निवेश के दुइज्जन्त तापस के आश्रम मे बिताये। शेष समय अस्थिग्राम मे बिताया। इस वर्षावास मे प्रभु ने पन्द्रह-पन्द्रह दिन के यानि आठ अर्धमासिक तप किये।

चातुर्मास के पश्चात् प्रभु विहार कर मोराकसन्निवेश मे पधारे, बाहर उद्यान मे विराजे।

प्रभु के आगमन के समाचार से जनता मे आनन्द की लहर फैल गई। तपश्चर्या से भरा जीवन और ज्ञान की तेजस्विता से आकर्षित होकर मोराकसन्निवेश की जनता मे महावीर के प्रति श्रद्धा जगी। चारो तरफ से आ-आकर जन महावीर के चरणो मे झुकने लगे।

ज्योतिपियो पर कृपा

वहाँ पर (मोराकसन्निवेश मे) अधिकतर अच्छदक जाति के ज्योतिषी रहते थे। ज्योतिष विद्या के बल से ही ये अपना जीवन निर्वाह चलाते थे। प्रभु वहाँ पहुँचे तब ज्योतिषी लोगो को न पूछ कर जनता भगवान की ओर बढने लगी। अपनी आजीविका मे ठेस लगती देखकर ज्योतिषियो ने भगवान से प्रार्थना की—

"हे देवार्य! आपके प्रभाव के सामने हमे कोई नही पूछता, जिससे हमारी आजीविका मे बाधा पड रही है। निवेदन है कि आप अन्यत्र पधार जाएँ तो अच्छा, क्योकि आप तो अपने तप तेज मे जहाँ भी जाएँगे आदर पाएँगे और हम अन्यत्र जाएँ तो बिना परिचय और प्रभाव के हमारा काम नही चल सकता।"

लोगो की आजीविका पर आघात पडता देख प्रभु को अपनी प्रथम प्रतिज्ञा का स्मरण आया। प्रभु ने मोराकसन्निवेश से वाचाला की तरफ विहार कर दिया। रास्ते मे सुवर्णवालुका नदी के पास ही एक झाडी मे देवदूष्य वस्त्र गिर गया। सोमविप्र जो वस्त्र के लिये पीछे फिर रहा था, उस वस्त्र को लेकर चला गया।

यहाँ पर दो बाते ध्यान रखने योग्य है—(१) प्रभु किसी का दिल नही दुखाते थे। दीनदयाल होने के कारण आगे प्रस्थान कर दिया। (२) दूसरी बात ज्योतिष विद्या भी काफी पुरानी है।

चण्डकौशिक सर्प का उद्धार

श्रमण वर्धमान दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला की तरफ पधार रहे थे। वहाँ जाने के दो मार्ग थे। एक कनकखल आश्रम से होकर जाता था और दूसरा बाहर से।

आश्रम का मार्ग सीधा परन्तु भयानक, विकट व सकट मय था। बाहर का पथ लम्बा था परन्तु सुगम और विपदा से रहित था।

महावीर सीधे मार्ग से ही मस्त गजराज की तरह जा रहे थे। वृक्ष की छाया मे विश्राम करते ग्वाल-बालो ने देखा। 'भविष्य मे क्या होगा ?'

को अभयदान दिया है। तुम अपनी प्रकृति के अनुसार क्रोध और घृणा के आवेश मे आकर मनुष्यो की हड्डियो का ढेर कर रहे हो। यह तुम्हारा क्रूर आचरण कभी भी आराम नही दे सकता। इस प्रकार औरो को दुख देने वाला कभी भी सुखी नही होता। क्षमा और प्रेम ही जीवन मे शान्ति देने वाला अनमोल मार्ग है। अभयदान देने से सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अमृतमय वाणी सुनकर यक्ष का मन बदल गया, अन्दर से क्रोध उपशात हुआ। यक्ष का जीवन सुधर गया। एक को प्रतिबोधित करने से हजारो-लाखो मानवो को शाति प्राप्त हुई।

यक्ष कुछ क्षण पूर्व जो निष्ठुर-दानव था वह भक्ति से विनम्र होकर प्रभु की स्तुति कर चरणो मे गिर पडा। बोला—भगवन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैंने आपको नही पहचाना। इस प्रकार सनम्र स्तुति करने लगा। रेगिस्तान जैसे शुष्क हृदय मे करुणा का स्रोत बहने लगा।

पहले भयकर अट्टहास से दिशाएँ कपायमान हो चुकी थी। अब सुमधुर स्वर लहरियो से दिशाएँ गूँजने लगी। रात्रि मे शूलपाणि का अट्टहास अस्थिग्रामवासियो ने सुना तो अनुमान लगा लिया कि वह मन्दिर मे स्थित श्रमण यक्ष का शिकार बन गया दिखता है और जब उषा के समय गीतो की मधुर ध्वनियाँ सुनी तो उन ग्रामवासियो के विचार अधिक दृढ हो गये कि उस साधु की मृत्यु हो गई अत उसी प्रसन्नता मे यह देव मधुर ध्वनियाँ अभिव्यक्त कर रहा है।

अस्थिग्राम मे उत्पल निमित्तज्ञ रहता था जो प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा मे श्रमण बना था। कुछ कारणो से श्रमणधर्म से पतित हो गया था। उसे शूलपाणि यक्ष के यक्षायतन मे वर्धमान प्रभु के ठहरने के समाचार मिले तो कही भगवान का अनिष्ट न हो जाय इस कल्पना से उसका कलेजा धडक उठा। प्रात इन्द्रशर्मा पुजारी के साथ यक्षायतन में पहुँचा तो शूलपाणि यक्ष को प्रभु के चरणो मे सेवा करता पाया। यह दृश्य देख पुजारी और निमित्तज्ञ के आश्चर्य का पार न रहा। दोनो चरणो मे झुक गये, बोले—प्रभो! आपका आत्मबल अपूर्व है। यक्ष प्रकोप को भी आपने शान्त कर दिया।

चातुर्मास के १५ दिन तो मोराकसन्निवेश के दुइज्जन्त तापस के आश्रम मे बिताये। शेष समय अस्थिग्राम मे बिताया। इस वर्षावास मे प्रभु ने पन्द्रह-पन्द्रह दिन के यानि आठ अर्धमासिक तप किये।

चातुर्मास के पश्चात् प्रभु विहार कर मोराकसन्निवेश मे पधारे। बाहर उद्यान मे विराजे।

प्रभु के आगमन के समाचार से जनता मे आनन्द की लहर फैल गई। तपश्चर्या से भरा जीवन और ज्ञान की तेजस्विता से आकर्षित होकर मोराकसन्निवेश की जनता मे महावीर के प्रति श्रद्धा जगी। चारो तरफ से आ-आकर जन महावीर के चरणो मे झुकने लगे।

ज्योतिषियो पर कृपा

वहाँ पर (मोराकसन्निवेश मे) अधिकतर अच्छदक जाति के ज्योतिषी रहते थे। ज्योतिष विद्या के बल से ही ये अपना जीवन निर्वाह चलाते थे। प्रभु वहाँ पहुँचे तब ज्योतिषी लोगो को न पूछ कर जनता भगवान की ओर बढने लगी। अपनी आजीविका मे ठेस लगती देखकर ज्योतिषियो ने भगवान मे प्रार्थना की—

"हे देवार्य ! आपके प्रभाव के सामने हमे कोई नही पूछता, जिससे हमारी आजीविका मे बाधा पड रही है। निवेदन है कि आप अन्यत्र पधार जाएँ तो अच्छा, क्योकि आप तो अपने तप तेज मे जहाँ भी जाएँगे आदर पाएँगे और हम अन्यत्र जाएँ तो बिना परिचय और प्रभाव के हमारा काम नही चल सकता।"

लोगो की आजीविका पर आघात पडता देख प्रभु को अपनी प्रथम प्रतिज्ञा का स्मरण आया। प्रभु ने मोराकसन्निवेश से वाचाला की तरफ विहार कर दिया। रास्ते मे सुवर्णवालुका नदी के पास ही एक झाडी मे देवदूष्य वस्त्र गिर गया। सोमविप्र जो वस्त्र के लिये पीछे फिर रहा था, उस वस्त्र को लेकर चला गया।

यहाँ पर दो बाते ध्यान रखने योग्य है—(१) प्रभु किसी का दिल नही दुखाते थे। दीनदयाल होने के कारण आगे प्रस्थान कर दिया। (२) दूसरी बात ज्योतिष विद्या भी काफी पुरानी है।

चण्डकौशिक सर्प का उद्धार

श्रमण वर्धमान दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला की तरफ पधार रहे थे। वहाँ जाने के दो मार्ग थे। एक कनकखल आश्रम से होकर जाता था और दूसरा बाहर से।

आश्रम का मार्ग सीधा परन्तु भयानक, विकट व सकट मय था। बाहर का पथ लम्बा था परन्तु सुगम और विपदा से रहित था।

महावीर सीधे मार्ग से ही मस्त गजराज की तरह जा रहे थे। वृक्ष की छाया मे विश्राम करते ग्वाल-बालो ने देखा। 'भविष्य मे क्या होगा ?'

यह सोचकर उनका हृदय काँप उठा। 'ये अनजान महात्मा है इनको रोक देना चाहिये।' ऐसा सोचकर सन्मुख आये। मार्ग रोककर प्रभु को प्रणाम कर बोले—धोक है बाबा! हे देव! हे आर्य! आप इधर मत पधारो। आगे दृष्टिविष सर्पराज रहता है। उसकी जहरीली फुकार से ही पशु-पक्षी भस्मसात् हो जाते हैं। उसके मुख से आग की लपटे निकला करती हैं। जिससे आसपास का पूरा वनखण्ड उजड गया है, अत आप बाहर के मार्ग से जाएँ।

गायन—(अनुनय-प्रार्थना-गुजराती)

विष भरी ने विषधर सूतो, चण्डकोशिया नामी।
महा भयकर ए मारग मा विचरे महावीर स्वामी॥
जाशो मा प्रभु पथ विकट छे।
झेर भर्यो एक नाग निकट छे॥
हाथ जोडी ने विनवे वीर ने लोक बधा भय पामी। महा…. ….

ग्वाल-बालो का अनुनय सुन महावीर मौन रहे। वे अमर पथ के पथिक थे। अपने पथ से विचलित होना उन्होने सीखा ही नही था। वे उसी मार्ग पर आगे बढ चले। ग्वाल-बाल मन ही मन दु ख करते हुए और ज्यादा घबराये। सोचने लगे—अरे रे! ये इस मार्ग से अपरिचित है, कही मारे जायेंगे। कुछ क्षण वहाँ रुककर ग्वाले लौट गए। वर्धमान सीधे सर्पराज की बाबी पर पहुँचे और वही ध्यानस्थ खडे हो गये। महावीर के चिंतन मे अमृत कण बरस रहा था।

वह भयावना चण्डकौशिक सर्प मानव की गध पाते ही विष उगलता हुआ बाबी से बाहर निकला। अपनी बाबी पर मानव को देखते ही सहसा सहम गया अर्थात् रुक गया। प्रत्येक हिंसक जानवर का स्वभाव होता है कि सामने आते हुए को देखकर वह एक बार रुक जाता है फिर दुगुने वेग से आगे बढता है। सर्प ने आक्रमण किया। जोर से फूत्कार की। जिससे आसपास के वातावरण मे विष की लहरे फैल गई। विष लहर के झपाटे मे अनेको जीव-जन्तु जहा थे वही झुलस गये। मगर महावीर ज्यो के त्यो अपनी ध्यान मुद्रा मे खडे थे। अपनी फूत्कार को सफलता नही मिलने पर चण्डकौशिक द्विगुणित गुस्से मे भरकर पूरी ताकत लगाकर महाश्रमण के चरणो मे दश प्रहार कर एक तरफ खिसक गया। कही ये मेरे पर न गिर पडे, गिर गये तो इस करारी चोट से मै जीवित नही रह सकूंगा, और मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि मेरा डक (दश) खाली जाने वाला नही है।

गायन

आवी गध ज्या मानव केरी।
डख दीधो त्या थई ने वेरी॥
हिंसा अने अहिंसा वच्चे, तराई भीषण जामी।
महा भयंकर ...... ॥

परन्तु एक बहुत बडा आश्चर्य ! सर्प देखकर दग रह गया। जहाँ डक मारा था वहाँ दो छिद्र हुए। एक छिद्र मे हरा विष निकल रहा है और दूसरे से लाल खून के बजाय श्वेत दुग्ध निकल रहा है। यहाँ पर हर मानव यह सोचता है कि मानव देह के नाते खून लाल ही होना चाहिये, फिर श्वेत क्यो ? इसका समाधान है कि तीर्थंकर प्रभु के ३४ अतिशय (चौंतीस विशेषताएँ) होते है, उनमे एक यह भी है कि खून लाल न होकर श्वेत और मधुर होता है। वैसे हम देखते हैं कि वात्सल्य प्रेम होने से माता के शरीर में से भी दुग्ध आता है। इसी प्रकार प्राणीमात्र के साथ (वात्सल्य भाव) होने से महापुरुषो का खून दूध रूप मे परिणत हो जाए तो क्या आश्चर्य है।

वर्धमान को शात-प्रशात देख कर नागराज स्तब्ध रह गया और एक निगाह से उनकी मुखमुद्रा को देखने लगा। पर पाया क्या ? उनकी दृष्टि मे क्रोध का विष नही, किन्तु करुणा का अमृत बरस रहा था। अमृत ने विष को शात कर दिया। नागराज को शात जिज्ञासु देख कर महावीर ध्यान से निवृत्त हो बोले—"उवसम भो चण्डकोसिया"—हे चण्डकौशिया ! शात हो जाओ। अज्ञान के अन्धकार मे क्यो भटक रहे हो। पूर्वजन्म के कृत-कर्मो से सर्प बनना पडा है अत अब भी सभल जाओ, शात-प्रशात हो जाओ। अपने जीवन मे करवट लो, अपने जीवन का पुनरुद्धार करो।

गायन

दूध वह्यु ज्या प्रभु ने चरणे।
चण्डकौशियो आव्यो शरणे॥
कईक समझ तु, कईक समझ तु, एम कहे करुणा आणी।
महा भयकर .. .. ॥
वैर थी वैर शमे नहीं जग मा।
प्रेम थी प्रेम वधे जीवन मा॥
प्रेम धर्म नो परिचय पामी, नाग रह्यो शिर नामी।
महा भयकर .. .. ॥

वर्धमान के वचन सुनते ही सर्प को जातिस्मरणज्ञान हो गया। उसने अपने पूर्व-भव को जान लिया। भगवान के दर्शन पाकर सर्प ने अपने विचार निश्चित किये कि 'मेरे जहरीले जीवन से तो मुझे व्रतो की आराधना करके मरना अच्छा है। कच्छ, मच्छ, गाय, घोडे, सर्प आदि भी देशव्रतो की आराधना कर सकते है तो अब मुझे ११ व्रतो को धारण कर लेना उचित है।' उसने भगवान के श्रीचरणो मे शाति धारण की। व्रतो को धारण कर अनशन करके बैठ गया। 'कही मेरी गर्म फूत्कार (श्वास) से किसी जीव को अब पीडा न पहुँचे' यह सोचकर सर्प ने अपना मुँह बाबी मे डाल दिया।

भगवान को खडे देखकर आसपास के ग्रामीण लोग धीरे-धीरे बढने लगे। सर्प को शात भाव से पडा हुआ देखकर आने वाले उसकी पूजा करने लगे। श्रद्धापूर्वक सर्प की बाबी पर दूध-शक्कर मिलाकर डालने लगे, कुकुम का तिलक लगाने लगे। फलस्वरूप मीठापन होने से सर्प के शरीर पर बहुत-सी चीटियाँ चढ आई। चीटियो के काटने से होने वाली पीडा वह सहन करता रहा। शुभ भावो से अपना आयु सपूर्ण कर आठवे सहस्रार स्वर्ग मे देव बना। यह है महापुरुषो की सगति का परिणाम।

चण्डकौशिक का पूर्वभव

तपस्वी तेजस्वी सुभद्र आचार्य का शिष्य बडा अविनीत था। प्रकृति से बडा चण्ड था। गुरु जितने कोमल परिणामी थे, शिष्य उतना ही कठोर हृदयी था। गुरु फूल से कोमल थे तो शिष्य शूल सी तीक्ष्ण प्रकृति का था। शिष्य हर समय गुरु महाराज के छिद्रो की अन्वेषणा करने मे ही तत्पर रहता था। सदा द्वेष भरी दृष्टि रखा करता था। एक बार गुरु और शिष्य भिक्षा के लिये गाँव मे जा रहे थे। आगे गुरु, पीछे शिष्य। गुरु के छिद्रान्वेषण की वृत्ति हर समय शिष्य की रहा करती थी। धूल मे पडे मेढक के शुष्क कलेवर पर गुरु का पाँव पड गया था। शिष्य ने पीछे से देखते ही ऊँचे स्वर से कहा —"गुरुजी! जरा देखिए, आपके पैर के नीचे दबकर मेढक मर गया।"

गुरु ने मुडकर देखा—कलेवर शुष्क था। शात स्वर से कहा—"वत्स! यह कलेवर तत्काल का हो ऐसा सभव नही है क्योकि यह शुष्क हो चुका है।"

गुरु-शिष्य गोचरी कर स्व-स्थान पर आये। मार्ग मे शिष्य बार-बार इसी बात को कहता रहा, पर गुरु प्रशात रहे। आहार करते पुन जिक्र किया—गुरुजी मेढक की हत्या का प्रायश्चित्त लीजिये। फिर भी गुरु मौन रहे।

शिष्य ने सोचा—मुझे बार-बार दोषो का प्रायश्चित्त देते है और कहते है 'प्रमाद मत करो, दोषो का सेवन मत करो, विवेक से चलो-फिरो-बैठो आदि'। आज अच्छा मौका है, थोडा-सा भी निमित्त तो है ही चाहे वह मेढक शुष्क मरा हुआ ही था परन्तु मुझे तो बोलने का मौका मिल गया।

सायकाल के प्रतिक्रमण करते समय श्रमणोपासक भी आवश्यक कर रहे थे। ऐसे समय मे पुन जोर-जोर मे चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा—"गुरुजी! आपके पैर से मेढक मरा, मैं सुबह मे कह रहा हूँ, आप प्रायश्चित्त लीजिये।"

गुरु बोले—"वत्स मेढक का कलेवर शुष्क था। तूने भी देखा ही है फिर प्रायश्चित्त किसका?"

शिष्य फिर भी न माना और कहता ही रहा। ज्ञानी कहते है कि चदन ठण्डा होता है लेकिन उसे भी बिना पानी से घिसे तो आग प्रकट हो जाती है। प्रशात आचार्य को अविनीत शिष्य बार-बार कहने लगा तो **"मिउपि चण्ड पकरति सीसा"** आचार्य को भी क्रोध आ गया। जोश खाकर उठे, उन्हे यह भी ध्यान न रहा कि मैं साधु हूँ, बोले—"अरे दुष्ट! सुबह से मेरे पीछे पड गया है, मुझे बार-बार उद्विग्न करता है। मै अभी मेढक और तेरी दोनो की हत्या का प्रायश्चित्त एक ही साथ कर लूंगा।" हाथ मे डण्डा लेकर शिष्य को मारने दौडे। शिष्य चपलता से शीघ्र ही एक ओर खिसक गया, स्थान मे अधेरा तो था ही फिर क्रोध का अधकार भी इतना गहन था कि खम्भे से आचार्य का सिर टकराया। मर्मस्थान पर चोट लगने से नस टूट गई, खून बह चला। वहाँ से मर कर पूर्वतप के कारण ज्योतिषी देव बने।

वहाँ से च्युत होकर कनकखल आश्रम के कुलपति का पुत्र हुआ, नाम 'कौशिक' रखा गया। युवावस्था प्राप्त होने पर अपने बुद्धिबल से ५०० (पाँच सौ) तापसो का स्वामी बना। आश्रम को वृक्षावली आदि से खूब सुन्दर आकर्षक बनाया। कौशिक बाल्यकाल से ही क्रोधी था। अति क्रोध के कारण लोग उसे "चण्डकौशिक" कहते थे।

एक दिन श्वेताम्बिका के राजकुमार खेलते-कूदते उस आश्रम मे आ पहुँचे। चण्डकौशिक कही बाहर गया हुआ था। बच्चे निडर हो आश्रम के बगीचे मे खूब घूमे, वृक्ष के पत्ते-फूल-फल तोडे। किलकारियाँ मारकर खेलने लगे।

त्तज्ञ के विचारो को जानकर हाथ पकड कर उसे रोक दिया और कहा— "हे पुष्य ! हे निमित्तज्ञ ! ये भिक्षु नही, भगवान है। तुमने शास्त्रो मे जो पढा है, वह ठीक है। तुम्हारे शास्त्र झूठे नही है। तुमने जिनको चक्रवर्ती समझा वे चक्रवर्ती से भी उच्च है, चक्रवर्ती भी जिनके चरणो मे झुकते है ऐसे ये धर्म चक्रवर्ती है। चक्रवर्ती से भी बढकर इनकी पुण्यवानी है। चक्रवर्ती के शरीर पर १०८ उत्तम लक्षण होते है और इन महापुरुष के शरीर पर तो १००८ उत्तम लक्षण है। बल की अपेक्षा भी चक्रवर्ती मे धर्म चक्रवर्ती का बल अनन्त गुणा होता है।

"अनन्त बली अरिहत जी ए"

"बारह नर बल वृषभ, वृषभ दस एक जिमि हयवर।
बारह हयवर महिष, महिष पाँचसौ एक गयवर॥
पाचसौ गज हरी एक, सहस्र दोय हरी अष्टापद।
दस लाख बलदेव दोय वासुदेव दोय एक चक्री॥
क्रोड चक्री एक सुर कह्यो ए, क्रोड सुरा एक इन्द्र।
इन्द्र अनन्ता सूं नहीं नमे, चट्टिट अंगुली अग्र जिनन्द॥

ये ऐसे अनन्त बली चरम तीर्थकर प्रभु महावीर है। इनको तुम सामान्य भिक्षु मत समझो।

इन्द्र की बाते सुनकर पुष्प निमित्तज्ञ का सिर झुक गया। भगवान की सेवा-भक्ति एव वन्दना करके चला गया।

दूसरा वर्षावास : नालंदा

थूणाकसन्निवेश से विहार कर प्रभु राजगृह नगर की तरफ पधारे। राजगृह के उपनगर नालदापाडा की तन्तुवायशाला मे दूसरा चातुर्मास किया। प्रभु कठोर साधना की ओर बढ रहे थे। प्रथम चातुर्मास मे १५-१५ दिन से पारणा किया था, इस चातुर्मास मे मास-मास का तप प्रारम्भ कर दिया। प्रभु का प्रथम मास तप का पारणा विजय गाथापति के यहां हुआ। पारणा होने पर देवो ने ५ दिव्य वृष्टि की। आकाश मे दुदुभिनाद हुआ, सोनैया की वृष्टि हुई। घर-घर मे चर्चा हो पडी। प्रभु के चामत्कारिक तप से आकृष्ट होकर उसी नगर मे चातुर्मास के लिये आया हुआ गोशालक मखलि-पुत्र उनका शिष्य बनने हेतु उत्सुक हो गया। मख यानि चित्र बनाकर बेचना और आजीविका चलाना। किसी अच्छे गाथापति की गोशाला मे इसका जन्म हुआ था अत माता-पिता ने इसका नाम गोशालक मखलीपुत्र रख दिया था।

गोशालक मखलीपुत्र वर्धमान के श्रीचरणो मे आ पहुँचा। वन्दना नमस्कार करके बोला "हे भगवन्! मै आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। मैंने आज दिन तक ऐसे तपोधनी चामत्कारिक महात्मा नही देखे। आप जहाँ पारणा करते है वहाँ का दरिद्र तो दूर ही भग जाता है।" पर प्रभु तो मौन रहे।

दूसरा मास-तप पूर्ण होने पर प्रभु राजगृह नगर मे पधारे। आनन्द गाथापति के घर पारणा हुआ। देवो ने पाँच प्रकार की दिव्य वृष्टि की।

तीसरा मासखमण पूरा आत्मचितन मे पूर्ण हुआ। प्रभु राजगृह के सुदर्शन गाथापति के घर पधारे। सेठ अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सुपात्र, वह भी उत्कृष्ट सुपात्र को पाकर अतीव प्रसन्न हो प्रतिलाभ दिया। प्रभु ने पारणा किया। पाँच दिव्य प्रकट हुए।

प्रभु चतुर्थ मासखमण पारणे के लिये ध्यान से निवृत्त हुए, पारणार्थं पधार रहे थे कि गोशालक भी भिक्षार्थ जाने लगा। प्रभु से उसने पूछा कि "हे तपस्वीराज! आज मुझे भिक्षा मे क्या मिलेगा?" उत्तर मे प्रभु ने फरमाया "तुझे आज कोदो का बासी तदुल, खट्टी छाछ और खोटा रुपैया दक्षिणा मे मिलेगा।"

प्रभु की भविष्यवाणी सुन गोशालक महत् आश्चर्य मे पड गया। प्रारम्भ से ही प्रकृति से वह ईर्ष्यालु तो था ही, यह भविष्यवाणी सुनकर विचार किया कि आज मुझे इनकी वाणी को मिथ्या सिद्ध करना है। ऐसा मन मे दृढ सकल्प कर मार्ग मे सोचा कि आज तो मै श्रीमंतो की अट्टालिकाओ मे ही भिक्षार्थ जाऊँगा, मिष्ठान्न लाऊँगा ताकि इनकी वाणी झूठ हो जाए। ऐसा विचार कर वह श्रीमतो की हवेलियो मे पहुँचा किन्तु कहा है कि—

भाग्यहीन को ना मिले, भली वस्तु सयोग।
जब दाखे पाकन लगे, हो काग कण्ठ मे रोग॥
भाग्यहीन खेती करे, हल भागे के बलद मरे।
भाग्यहीन जीमण ने जावे, थाली गमावे या मक्खी खावे॥

गोशालक उन ऊँची हवेलियो मे खूब फिरा। किन्तु कही दरवाजे बन्द मिले, कही रसोईघर खाली पड़े थे और कही लोगो ने मना कर दिया। अन्त मे हैरान-परेशान होकर पुन लौट रहा था कि एक लोहार ने बुलाया। खट्टी छाछ, बासी कोदो की घाट और दक्षिणा मे खोटा रुपैया प्राप्त हुआ। प्रभु के कहे अनुसार सारी बातें मिली। फिर भी प्रभु के वचनो पर

श्रद्धा न करके नियतिवाद को पकड लिया और कहने लगा 'प्रयत्न करने पर भी इच्छा के अनुसार कुछ प्राप्त नही होता है, जो होनहार होता है वह होकर ही रहता है।' इस घटना से गोशालक ने नियतिवाद को महत्व दिया और नियतिवादी वन गया।

प्रभु नालदापाडा तन्तुवाय की उद्योगशाला से प्रस्थान कर कोल्लाग सन्निवेश पधारे। वहुल ब्राह्मण ने भावपूर्वक प्रभु को वहराया। यह चातुर्मास का चतुर्थ पारणा था। देवो ने ५ प्रकार की दिव्य वृष्टि की। प्रभु पारणा कर कोल्लागसन्निवेश मे ही विराजे।

गोशालक प्रभु का शिष्य

गोशालक को भिक्षा और दक्षिणा मे जैसा मिला वैसा ही लेकर ततुवायशाला मे पहुँचा, वहाँ प्रभु नही मिले तो आरापास पूछताछ की। मालूम हुआ कि तपस्वीराज का पारणा वहुल ब्राह्मण के घर हुआ। प्रभु यहाँ से प्रस्थान कर गये। तव वह अपना सामान, वस्त्र, कुण्डी, उपानत, चित्रित पाटिया आदि ब्राह्मणो को देकर प्रभु की तलाश करता हुआ कोल्लागसन्निवेश के वाहर जहाँ प्रभु ध्यानस्थ थे, वहाँ पहुँच गया। हर्पोल्लास के साथ प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया और वोला "भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य है, मै आपका शिष्य हूँ।"

प्रभु महावीर को देख गोशालक ने वन्दन नमस्कार कर प्रार्थना की। भगवान गौतम स्वामी से फरमाते है कि उस समय मैने गोशालक को शिष्य होने की स्वीकृति दी। छह वर्प पर्यन्त गोशालक भगवान के पास रहा था। लाभ-अलाभ, सुख-दुख, सन्मान-अपमान का अनुभव करते हुए अनित्य जागरणा करते हुए भगवान अपने साधना क्षेत्र मे विचरते रहे।[1]

गोशालक चचल, उद्धत व लोलुप प्रकृति का था। एक समय भगवान

---

१ तएण से गोसाले मखलिपुत्ते हट्ठ तुट्ठे मम तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण जाव णमसित्ता एव वयासी तुब्भे ण भते! मम धम्मायरिया अह ण तुब्भ अतेवासी ॥८०॥ तएण अह गोयमा! गोसालस्स मखलिपुत्तस्स एयमट्ठ पडिसुणेमि ॥८१॥ तएण अह गोयमा! गोसालेण मखलिपुत्तेण सद्धि पणिय भूमीए छव्वासाइ लाभ अलाभ सुह दुक्ख सक्कारमसक्कार पच्चणुब्भवमाणे अणिच्च जागरिय विहरित्था ॥८२॥ भगवतीसूत्र, शतक १५, पृ० २००३, अमोलक ऋषिजी म० सा० द्वारा सपादित।

कोल्लागसन्निवेश से सुवर्णखल पधार रहे थे। गोशालक भी साथ ही मे था।

मार्ग के किनारे गाय चराने वाले ग्वाल-बाल वृक्ष की छाया मे बैठे हुए थे। पास ही मे पत्थरो के बनाये चूल्हे पर खीर पक रही थी। ग्वालो को खीर पकाते देख गोशालक का मन उसे खाने के लिए चलायमान हो गया। कहा भी है—

ज्ञान मे आलसी घणो, ध्यान मे आलसी,
तप मे आलसी घणो, खावण मे सूरमो।
लाडू खाऊँ पेड़ा खाऊँ, घेवर जलेबी खाऊँ,
माल पुआ मगद खाऊँ, खाऊँ बाटी चूरमो॥
घृत खाऊँ गुड खाऊँ, मक्खन मिठाई खाऊँ,
खाऊँ खाऊँ लागी धीक, पेट भरे पूरमो।
कहत हजारीमल, ज्ञानी वचनो के बल,
आत्म कल्याण सेती, रह्यो घणो दूरमो॥

गोशालक ने खीर खाने की और वहाँ रुकने की भावना व्यक्त की। प्रभु ने फरमाया "हे गोशालक! यहाँ पर ठहरने की जरूरत नही क्योकि इस खीर का ऐसा योग है कि पकने मे पहले ही यह हण्डी फूटने वाली है। सारी खीर राख मे मिल जाएगी।" यह सुनकर गोशालक सावधान हो गया। सभवत उसको खट्टी छाछ, कोदो की घाट और खोटा रुपैया याद आ गया होगा। अत भगवान की बात का खण्डन करने के लिये ग्वालो के पास जाकर सबको सावधान कर दिया। स्वय खीर खाने की अभिलाषा से वही रुक गया। प्रभु आगे पधारे। प्रभु जानते ही थे कि "खोटा रुपैया और कपूत बेटा" कही जाने वाला नही। बात भी वही हुई। सावधानी रखते हुए भी हण्डी फूट गई और सारी खीर राख मे मिल गई।

गोशालक मुँह बिगाडकर पुन वर्धमान के पास पहुँचा। वह मन मे सोचने लगा कि वर्धमान तपस्वी क्या करे? यह तो होनहार की बात थी। खीर बिखरने वाली थी, सो बिखर गई। अब वह पक्का नियतिवादी बन गया।

खट्टी छाछ आदि मिलेगी, खीर बिखरेगी इन दोनो घटनाओ से उसकी (गोशालक की) यह धारणा दृढ हो गई कि होनहार कभी टल नही सकती। वह नियतिवाद का पक्का समर्थक बन गया।

प्रभु सुवर्णखल से विहार कर ब्राह्मणगाँव मे पधारे। ब्राह्मणगाँव के दो विभाग थे—नन्दपाटक और उपनन्दपाटक। नन्दपाटक मे नन्द के घर प्रभु भिक्षार्थ पधारे। वासी योजन प्राप्त हुआ, प्रभु ने शात भाव से उसे स्वीकार किया।

गोशालक उपनन्दपाटक मे उपनन्द के घर भिक्षार्थ गया। भाग्य योग से उसको भी वासी तन्दुल दातार देने लगा। उसके ललाट मे सल चढ गये, उसने मना कर दिया। क्रोधी साधु को देखकर दातार को भी क्रोध आ गया। उसने अपनी दासी से कहा—"भिक्षु वड़ा मूर्ख है, समता की जगह तामस ला रहा है। अगर वह नही लेता है तो उसके ही सिर पर डाल दो।" दासी ने वैसा ही किया। अव तो क्रोध के मारे गोशालक ने अपना आपा ही खो दिया। दातार को शाप देकर गोशालक चला गया। कहाँ भगवान की क्षमा निर्लोभता और कहाँ गोशालक की तामस प्रकृति। प्रभु के साथ रह करके भी भगवान जैसी प्रकृति नही वना पाया।

दोष ही को अमेह गहे, गुण न ग्रहे खल लोक।
रुधिर पिये पय ना पिये, लगी पयोधर जोक॥

वैताल कवि ने भी कहा है कि —

लगे ताल झकार, लगे देवल के टाची।
लगे सिंह को वोल, लगे सूगे को साची॥
लगे सूरज की घाम, लगे चन्दा की ठारी।
लगे वृक्ष को फूल, लगे प्रीतम को प्यारी॥
लगत लगत फल वह लगे, जिस फल को पक्षी चुगे।
वैताल कहे विक्रम सुनो, मूरख नर को क्या लगे॥

तीसरा वर्षावास चपानगरी

नन्दपाटक मे विहार करके प्रभु अगदेश चपानगरी मे पधारे। यह तीसरा चातुर्मास प्रभु ने चपानगरी मे किया। धन्य है प्रभु की साधना को, जो उग्र तपश्चर्या धारण करते थे। प्रथम चातुर्मास मे १५-१५ दिन का तप किया, द्वितीय चातुर्मास मे मास-मास का तप किया और तृतीय वर्षावास मे दो-दो मास का तप प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रकार की साधना, योग और ध्यान व आसन प्रारम्भ कर दिये। पहला पारणा चम्पापुरी मे हुआ और दूसरा दोमासिक तप का पारणा चम्पापुरी के वाहर हुआ।

चातुर्मास के पश्चात् वहाँ से प्रभु कालायसन्निवेश हो, पत्तकालाय पधारे। इन दोनो ही स्थानो पर प्रभु खण्डहरो मे ध्यानस्थ खडे रहे थे। दोनो ही स्थानो पर गोशालक अपनी विकारयुक्त एव अविवेकी प्रवृत्ति के कारण लोगो के द्वारा पीटा गया।

वहाँ से प्रभु कुमारकसन्निवेश पधारे, चम्पक रमणीय उद्यान मे कायोत्सर्ग प्रतिमा धारण करके रहे। भिक्षा का समय होने पर गोशालक ने भिक्षा के लिये चलने हेतु प्रभु महावीर से प्रार्थना की। प्रभु अपने विचारो मे सरल एव पवित्र थे। उनकी कथनी और करणी मन, वचन और काया से समान रूप बनी रहती थी। प्रभु ने फरमाया 'आज मेरे उपवास है'।

विभिन्न वर्णो के वस्त्र क्यो ?

गोशालक भिक्षार्थ गाँव मे गया। उस समय कुमारकसन्निवेश मे प्रभु पार्श्वनाथ के अनुयायी चन्द्रस्थविर कुम्हार कूवणय की शाला मे ठहरे हुए थे। गोशालक सीधा उधर ही जा निकला। मुनियो के रग-बिरगे वस्त्रो को देखकर सोचने लगा—'ये हैं तो जैन साधु, किन्तु वस्त्र श्वेत न होकर रग-बिरगे क्यो हैं ?' प्रश्न का समाधान करने हेतु चचलमना ने पूछा—"आप कौन है ?" प्रत्युत्तर मे मुनिचन्द्र बोले—"हम जैन साधु है। हमारे भगवान पार्श्वनाथ थे। हम उनकी परम्परा का पालन करते है।"

गोशालक ने कहा—"मैं समझ गया कि आप साधु हो मगर इतने वस्त्रो का आडम्बर क्यो ? इतने सारे वस्त्र तथा पात्रो का ढेर रखना निर्ग्रन्थ को शोभा देता है क्या ? मुझे लगता है आप लोगो ने जीवन निर्वाह के लिए यह सब ढोग-बाजी लगा रखी है। अपनी आजीविका चलाने के लिए ही यह प्रपच कर रखा है।"

आगे चलकर गोशालक अपनी प्रकृति के अनुसार उग्र रूप मे आ गया और बोला "चलो तुम देखो। सच्चे निर्ग्रन्थ मुनि तो मेरे धर्माचार्य है। जो वस्त्र-पात्र रखते ही नही। सच्चे तपस्वी तथा तप-सयम की साक्षात् मूर्ति ध्यान रूप मे विराजे हुए है।"

इतना सुनकर मुनिचन्द्र महाराज अपने विचारो मे डुबकी लगाते हुए सोचने लगे कि यह कहता तो ठीक है मगर साधु की तरह मधुर नही बोल रहा है। वाणी की वक्रता पर सोचते हुए जैसे को तैसा उत्तर देने के लिए बोले "जैसा तू है, वैसे ही तेरे धर्माचार्य भी स्वय दीक्षित (स्वय-गृहीतलिंग) होगे।"

सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइं, अचले भगवंरियत्था ॥१३॥

मूलार्थ—

वहाँ के क्रूर मनुष्यो ने भगवान के सुन्दर शरीर को नोच डाला, उन पर विविध प्रकार के प्रहार किये। भयकर परीपह उनके लिए उपस्थित किये। उन पर धूल फेंकी। वे भगवान को ऊपर उछाल कर गेंद की तरह पटकते। आसन पर से धकेल देते, तथापि भगवान शरीर के ममत्व से रहित होकर विना किसी प्रकार की इच्छा व आकाक्षा के सयम भावना में स्थिर रहकर कष्टो को शाति से सहन करते।

जैसे कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध मे अक्षत रहता है वैसे ही अचेल भगवान महावीर ने अत्यन्त कठोर कष्टो को सहते हुए भी अपने सयम को अक्षत रखा।

मूल—

एताणि तिन्नि पडिसेवे, अट्ठमासे य जावए भगव।
अवि इत्थ एगया भगवं, अद्धमास अदुवा मासं पि ॥५॥
अवि साहिए दुवेमासे, छप्पि मासे अदुवा विहरित्था।
रायोवराय अपडिन्ने, अन्नगिलायमेगया भुंजे ॥६॥
छट्ठेण एगया भुंजे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेणं एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने ॥७॥
णच्चाण से महावीरे, णो विय पावग सयमकासी।
अन्नेहिं वाण कारित्था, कीरंत पि णाणुजाणित्था ॥८॥

—आचाराग, प्र० श्रु०, अ० ६, उ० ४

मूलार्थ—

आठ मास पर्यंत चावल, बोर चूर्ण, उडद के बाकुलो मे देह निर्वाह किया। पन्द्रह-पन्द्रह दिन, मास-मास पर्यन्त, अन्न-जल नही लेते थे। कभी-कभी दो मास से अधिक समय निकल जाता। कभी ६ मास के पारणे मे भी नीरस आहार करते थे। वे कभी दो-दो दिन मे, कभी तीन-तीन दिन मे, कभी

४-४, कभी ५-५ कभी ६-६, दिन से आहार पानी करते थे। पारणे मे सदा ही अनासक्त भाव से आहार करते थे। हेय-उपादेय पदार्थ जानकर स्वय पाप नही करते, न कराते, न करते हुए को भला मानते।

इस प्रकार समभावपूर्वक घोर उपसर्गो को सहन कर भगवान ने वहुत कर्मो की निर्जरा की। वे पुन. आर्य प्रदेश की ओर पधारे। पूर्णकलश सीमा प्रात पर दो चोर मिले जो अनार्य प्रदेश मे चोरी करने जा रहे थे। वर्धमान को सामने से आते देख अपशकुन समझा। तीक्ष्ण शस्त्रो से प्रहार करने लगे कि इन्द्र महाराज ने प्रकट होकर उन्हे रोक दिया।

पाँचवाँ चातुर्मास : भद्दिला नगरी

प्रभु आर्य प्रदेश के मलयदेश मे विचरण करने लगे। मलय की राजधानी भद्दिलानगरी मे प्रभु ने अपना पाँनवाँ चातुर्मास किया। इस चौमासे मे प्रभु ने चारो मास का तप किया। चातुर्मास मे नानाप्रकार के आसन तथा ध्यान किये।

वर्षावास के बाद नगर के बाहर जाकर पारणा किया। पारणा कर प्रभु कदली, समागम और जम्बुसण्ड होते हुए तम्वायसन्निवेश मे पधारे। वहाँ पर भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी नन्दिषेण मुनिराज विराजमान थे। आचार्य नन्दिषेण जिनकल्प प्रतिमा मे अवस्थित थे। गोशालक ने उनको देखा और तिरस्कार किया। नन्दिषेण उस रात्रि को चौराहे पर खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। आरक्षक पुत्र ने उनको चोर समझ कर भालो से आहत किया। असह्य वेदना को समभाव से सहन करने से उन्हे केवलज्ञान हुआ और वे सिद्ध, वुद्ध और मुक्त हुए। गोशालक ने उनसे भी वाद-विवाद किया।

वहाँ से प्रभु कूपियसन्निवेश मे पधारे। वहाँ भगवान को लोगो ने गुप्तचर समझ कर पकड लिया। प्रभु को चोर समझकर अनेक यातनाएँ दी और जेल मे वन्द कर दिया। विजया और प्रगल्भा नाम की परिव्राजिकाओ (साध्वियो) को मालूम हुआ तो वे तुरत वहाँ पहुँची और उन लोगो को भगवान का परिचय दिया। परिचय पाकर आरक्षी लोगो ने तत्काल भगवान को बन्धन से मुक्त कर दिया और अपनी भूल का पश्चात्ताप कर क्षमायाचना की।

भगवान तम्वायसन्निवेश से विहार कर वैशाली मे पधारे। वहाँ जाने पर गोशालक वोला—"गुरु महाराज! अव मै आपके साथ नही

चल सकता। आपके साथ चलते हुए बहुत दु ख पाया। अनेको दु सह यातनाएँ सहनी पडी। अधिक तो क्या कहूँ पेट की समस्या भी समय पर हल नही हो पाती है। आप इन बातो की परवाह नही करते। माफ करना गुरु महाराज ! मै अब अलग विहार करूँगा।" यह सुनकर भी भगवान मौन रहे। गोशालक ने वहाँ से राजगृह की ओर विहार कर दिया।

प्रभु ने वैशाली मे ही एक लुहार की यन्त्रशाला मे ध्यान किया। वह लुहार छ महीने से बीमार पडा था। भगवान के पधारने पर उसकी तबियत सुधार पर आ गई। वह स्वस्थ हो गया। अपने यन्त्र, ऐरन, हथौडा, सन्डासी आदि लेकर यन्त्रशाला मे गया। अचानक प्रभु को देखकर चौक गया। अमगल समझकर प्रभु को ज्योही हथौडे से पीटने को लपका त्योही देव-शक्ति से वही स्तब्ध हो गया। लुहार को अफसोस हुआ। चमत्कार से प्रभावित होकर चरणो मे गिर पडा।

प्रभु वहाँ से विहार कर ग्रामक सन्निवेश मे पधारे। वहाँ पर बिभेलक यक्ष के यक्षालय मे ध्यान किया। भगवान के तपोबल से प्रभावित होकर वह यक्ष उनका गुणकीर्तन करने लगा।

कूटपूतना द्वारा उपसर्ग

भगवान ग्रामकसन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के उद्यान मे पधारे। उस समय शीत अपनी चरम सीमा पर था। पशु-पक्षियो की तो बात ही क्या, अनेक साधन होते हुए भी मानव थर-थर काँप रहे थे। किन्तु आत्मबली भगवान एक वृक्ष के नीचे खुली हवा मे ध्यानस्थ खडे हो गये। यह कहावत जगत प्रसिद्ध है कि "आत्मविजेता—विश्वविजेता।" किसी कवि ने भी कहा है —

आतम बल सब बल का सरदार।
आतम बल वाला अलबेला, निर्भय होकर देता हेला।
लेता बाजी मार ॥ आतम . ॥

उस समय कूटपूतना (कटपूतना) व्यन्तरी देवी वहाँ आई। ध्यानस्थ भगवान को देखकर उसको पूर्व-वैर की स्मृति हो आयी। वह देवी परिव्राजिका का रूप बनाकर आई, अपने लम्बे बालो को बिखेरकर महावीर के ऊपर भीषण शीतल जल की धारा वर्षा रूप से बरसाने लगी और भगवान के कोमल कधो पर खडी होकर तेज हवा करने लगी। बर्फ जैसा ठण्डा पानी तथा हवा मे भगवान का शीत परीषह और भी अधिक बढ गया।

वहाँ प्रभु के कर्मो की बहुत निर्जरा हुई। प्रभु मे परीषहो को सहने की अपूर्व क्षमता को देखकर कूटपूतना विस्मित हो गई। प्रभु के धैर्य के सामने वह पराजित होकर अपराधों की क्षमा माँगती हुई चरणो मे झुक गई।

गोशालक छ मास तक अलग विचरण कर अनेक कष्टो को सहकर घबरा गया। पुन लौटकर महावीर के पास आ गया। प्रभु वहाँ से भद्दिया नगरी पधारे।

छठा वर्षावास भद्दियानगरी

भगवान ने यह वर्षावास भद्दिया नगरी मे किया। चार मास की तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। आसन एव ध्यान की साधना मे प्रभु निमग्न रहे। चौमासी तप का पारणा नगरी के बाहर कर प्रभु ने मगध की तरफ विहार कर दिया। गोशालक भी प्रभु के साथ ही था। मगध देश के अनेक गाँवो मे विचरण करते हुए नाना प्रकार की तप-ध्यान की साधना करने लगे।

सातवाँ चातुर्मास आलभिया

सातवाँ चातुर्मास प्रभु ने ध्यान एव तपश्चर्या मे रहकर आलभिया नगरी मे किया। चौमासी तप का पारणा नगरी के बाहर कर प्रभु कुण्डाग सन्निवेश मे पधारे। वहाँ से फिर मद्दनसन्निवेश मे पधारे। दोनो ही स्थानो पर वासुदेव तथा बलदेव के मन्दिर मे क्रमश ध्यान एव साधना की।

वहाँ से प्रभु लोहार्गला पधारे। लोहार्गला का पडौसी राज्यो से सघर्ष था। आपस मे भारी तनाव चलता था। इधर से उधर जाने वाले यात्रियो की तलाशी ली जाती थी। प्रभु जब पधारे तब उनसे भी परिचय पूछा गया। प्रभु मौन रहे। तब अधिकारी लोग उन्हे राज्य सभा मे ले गये। वहाँ अस्थिकग्राम वाला उत्पल नैमित्तिक बैठा हुआ था। महावीर को देखते ही उसने उठकर प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया। प्रभु का परिचय देते हुए कहा कि "ये गुप्तचर नही हे किन्तु सिद्धार्थ राजा के सुपुत्र वर्धमान धर्मचक्रवर्ती है।" प्रभु का परिचय पाते ही बधन तोड दिये गये और राजा ने अपनी गलती की क्षमायाचना की।

वर्धमान लोहार्गला से प्रस्थान कर पुरिमताल पधारे। नगर के बाहर शकटमुख उद्यान मे ध्यान किया। वहाँ के निवासी वग्गुर श्रावक ने प्रभु का सत्कार किया।

वहाँ से प्रभु उन्नाग गोभूमि को पावन करते हुए राजगृह पधारे।

आठवाँ वर्षावास . राजगृह

वर्धमान प्रभु ने आठवाँ वर्षावास राजगृह मे किया। इस चातुर्मास काल मे चौमासिक तप के साथ अनेक कठिन आसनो से ध्यानरत रहे। कहा जाता है कि ऊँची, नीची, तिरछी दिशाओ मे रहे हुए पदार्थो पर ध्यान केन्द्रित करके साधना की।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि प्रभु ने बलदेव वासुदेव के मन्दिर मे, या शूलपाणि यक्ष आदि के यक्षायतन मे या बाग मे अथवा वृक्ष के नीचे किसी भी स्थान पर ध्यान किया हो किन्तु **"एग पोग्गल दिट्ठि अणिमिस नयने"** (भगवती सूत्र) ऐसा उल्लेख आगम मे आता है लेकिन किसी भी स्थान पर रही हुई यक्षप्रतिमा, मूर्ति पर दृष्टि जमाकर ध्यान किया हो ऐसा उल्लेख नही मिलता।

दूसरा विचार यह पैदा होता है कि प्रभु के पूर्व २३ तीर्थंकर हो चुके थे, उनका किसी स्थान पर जिनालय होता तो वे उसमे अवश्य ठहरते, ध्यान करते, किन्तु किसी भी स्थान पर तीर्थंकरो के मन्दिर मे ध्यान करने का उल्लेख नही मिलता है।

इससे यह फलित होता है कि भगवान ने किसी मूर्ति विशेष को लक्षित करके चिंतन नही किया। आज भी स्थानकवासी समाज मे, जो भगवान महावीर के अनुयायी है, यही परम्परा चल रही है। इस समाज के श्रमण भी पुद्गलो पर निर्निमेष दृष्टि रखकर द्रव्य-गुण-पर्याय का चिन्तन करते है।

चातुर्मासिक तप पूर्ण होने पर प्रभु ने राजगृह के बाहर पारणा किया।

यहाँ पर भी सहज एक प्रश्न होता है कि आगमो मे जहाँ भी प्रभु के पधारने का उल्लेख मिलता है कि वे बाग-बगीचे मे विराजते हैं और आहार-पानी के लिए नगर मे पधारते है जैसे चम्पा, राजगृह प्रभृति मे। ऐसा ही वर्णन शास्त्रो मे मिलता है किन्तु कल्पसूत्र मे चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान नगर के बाहर पधार कर पारणा करते है। क्या छद्मस्थ अवस्था मे बगीचो मे विराजने की परम्परा नही थी ? समाधान—भगवान अपने साधना काल मे एकाकी होने से जहाँ पर भी एकात-शान्त स्थान की स्पर्शना होती वहीं पर विराजते और केवलज्ञान की प्राप्ति के

बाद अनेको मुनिराजो की अनुकूलता देखकर बगीचे मे या समवसरण मे विराजते थे ।

नववाँ वर्षावास : अनार्य देश

पारणा कर पुन प्रभु ने अनार्य भूमि की तरफ गमन किया, कर्मो की विशेष निर्जरा करने के लिये। पहले की तरह ही अनेक कष्टो का सामना करना पडा। यह नववाँ वर्षावास प्रभु ने अनार्य देश मे घूमते-घामते पूर्ण किया। कहा जाता है कि योग्य आवास न मिलने के कारण वृक्षो के नीचे, खण्डहरो (यानि जिस समय जिस क्षेत्र की स्पर्शना की वहाँ) आदि मे पूर्ण किया। इस वर्षावास मे कही एक जगह विराज कर ध्यान-साधना नही की। यह प्रभु का चलते-फिरते का वर्षावास था।

छ मास पूर्ण होने पर भगवान पुन आर्य देश मे पधारे।

तिल का पौधा तथा वैश्यायन तापस

आर्य भूमि मे प्रवेश कर सिद्धार्थपुर से प्रभु कूर्मग्राम की तरफ पधार रहे थे। गोशालक ने मार्ग मे चलते हुए सप्तफूल वाले तिल के पौधे को देखकर भगवान से पूछा—"प्रभु ! बताइये, इस पौधे पर जो सप्त फूल है तो इसके फल लगेंगे या नही ?" प्रत्युत्तर मे भगवान ने फरमाया—"फल लगेगे। सातो ही फूलो के जीव एक फली मे उत्पन्न होगे।"

कुबुद्धि तो था ही गोशालक ! प्रभु की वाणी को मिथ्या करने हेतु पीछे रह गया और धीरे से तिल के पौधे को उखाड कर दूर फेक दिया। जमीन उर्वरा थी और थोडी ही बरसात होने से जहाँ फेका वही पौधे की जडे जम गई। पौधा फिर से हरा-भरा हो गया। उखाड फेकने से शेष फूल गिर गये। एक फूल रह गया। उसी फूल मे फल लगने पर शेष फूलो के जीव उत्पन्न हो गये।

श्रमण वर्धमान वहाँ से कूर्मग्राम पधारे। गोशालक साथ ही मे था। कूर्मग्राम के बाहर "वैश्यायन तापस' प्राणायाम प्रव्रज्या नाम की साधना कर रहा था। दोनो भुजा ऊपर उठाकर सूर्य के सम्मुख खडा होकर आतापना ले रहा था। निरन्तर साधना मे सलग्न रहने से, देह स्थित कांडो मे, सिर की जटाओ मे बहुत-सी यूकाएँ पैदा हो गई थी। सिर पर सूर्य के ताप से यूकाएँ सतप्त बनी हुई चारो तरफ से नीचे गिर रही थी। वह उन्हे उठा-उठा कर अपने मस्तक पर रखता था। वैश्यायन की ऐसी साधना देखते

हुए भगवान तो निस्पृह बन आगे निकल गये किन्तु गोशालक पुन लौटकर तापस के पास जाकर बोला—"भाई तू तपस्वी है या यूकाओं का घर।" तपस्वी मौन रहा। गोशालक पुन-पुन उसी बात को दुहराने लगा। तीन बार कहने पर वैश्यायन बालतपस्वी क्रोधित होकर अपनी उस आतापना भूमि से सात-आठ कदम दूर हट गया और अपने तपोबल से गोशालक को मारने के लिए तेजोलेश्या फेंकी। तापस के चढते क्रोध को देखकर गोशालक वहाँ से भागकर भगवान के श्रीचरणों मे पहुँचा। उधर से तेजोलेश्या की आग-सी लपटे आने लगी। परम दयालु महावीर ने अपनी शीतलेश्या प्रसारित कर दी। जैसे आग की ज्वाला को पानी शान्त कर देता है वैसे ही तापस की तेजोलेश्या को शीतलेश्या ने शान्त कर दिया।

यह दृश्य देखकर वैश्यायन बालतपस्वी ने अपनी तेजोलेश्या का प्रत्यावर्तन किया और प्रभु से विनयपूर्ण स्वर मे बोला—"अहो भगवन्! मैंने आपको जाना और विशेष जाना।" तापस भगवान का दर्शन कर प्रशान्त हो अपनी साधना मे लग गया। प्रभु विहार करते हुए आगे पधारे। गोशालक ने तेजोलेश्या की चमत्कारिक शक्ति देखी तो बहुत ललचाया और उसे प्राप्त करने की विधि भगवान से पूछी। प्रभु ने फरमाया "निरन्तर बेले-बेले का तप कर, सूर्य की आतापना ले और पारणा मे नाखून सहित बंध मुट्ठी भर उडद के बाकुले और चुल्लू भर पानी ले, छ मास तक ऐसी साधना करने पर तेजोलेश्या प्राप्त होती है।"

भगवान ने कुछ समय पश्चात् पुन सिद्धार्थपुर की तरफ विहार कर दिया।

गोशालक प्रभु के साथ चल रहा था। मार्ग मे वही तिल के पौधे के समीप आते ही गोशालक ने अपनी पहले वाली बात पुन दोहराई। वह जानता था कि पौधा मैंने उखाड कर फेंक दिया, अत भगवान की वाणी निष्फल हो गई। फिर भी बोला -"प्रभु! आपकी वाणी मिथ्या हो गई।"

तब प्रभु महावीर ने फरमाया "हे गोशालक! यह बात ऐसी नहीं है। वह अन्य स्थान पर लगा हुआ जो तिल का पौधा है, वही है, जिसे तूने उखाड कर फेंका था।" गोशालक श्रद्धाहीन तो था ही, तिल के पौधे के पास गया। फली को तोडकर देखा तो उसमे सात ही दाने निकले। भगवान की सत्य वाणी जानकर मन ही मन अपनी बात पर बल देने लगा कि ससार मे होनहार होकर रहता है तथा जो जीव जिस योनि का होता है

उस योनि मे पैदा होकर रहता है। इस प्रकार गोशालक ने प्रभु की दी हुई शिक्षाओ का दुरुपयोग किया और घोर नियतिवादी वन गया। उसका विश्वास सुदृढ वन गया कि सभी जीव मर कर अपनी ही योनि मे उत्पन्न होते हैं।

सिद्धार्थपुर से प्रभु श्रावस्ती नगरी मे पधारे। गोलाशक प्रभु का साथ छोड़कर हालाहला नाम की कुम्भारिन के घर गया। भाण्डशाला मे जाकर ठहरा। भगवान द्वारा वताई हुई विधि के अनुसार तेजोलेश्या की साधना करने लगा। यह साधना उसके लिये आत्म-हितकारिणी नही थी। कारण भगवान से जो सीखा वह विनय-विवेक से रहित होकर सीखा था। कहा भी है कि—

न हम कुछ हँस के सीखे हैं, न हम कुछ रो के सीखे हैं।
जो कुछ भी सीखे हैं, किसी के होके सीखे हैं॥

गोशालक को ठीक समय तेजोलेश्या की सिद्धि हो गई। अव गोशालक अपनी तेजोलेश्या का चमत्कार दिखाने चला। एक कुएँ पर पहुँचा। वहाँ एक पनिहारी के घट पर एक ककर फेका तो घडा फूट गया। इस शैतानी के कारण महिला ने क्रोध मे आकर उसको डाटा-फटकारा। फल स्वरूप गोशालक को भी क्रोध आ गया। महिला पर अपनी तेजोलेश्या का प्रयोग कर दिया। महिला वही पर तुरन्त भस्म हो गई। गोशालक अपनी सफलता के अभिमान मे फूल गया, भुजाएँ फटकारने लगा।

गोशालक वहाँ से आगे वढा। उसको अष्टाग निमित्त के ज्ञाता मिले। उनके नाम इस प्रकार है—शोण, कलिद, कर्णिकार, अछिद्र, अग्निवेशायन और अर्जुन। इन निमित्तज्ञो से उसने निमित्तशास्त्रो का अध्ययन किया। शास्त्र के वल मे सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन और मरण के प्रश्न वताने लगा। लोगो मे वह वचनसिद्ध नैमित्तिक गोशालक के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसी आधार से गोशालक ने नाम कमाया। थोडे दिनो के वाद उसने अपने आपको आजीवक सम्प्रदाय के तीर्थंकर के रूप मे प्रसिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान की अपेक्षा गोशालक का नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया। उसके श्रद्धालुओ की सख्या भी वहुत वढ गई।

इस वर्ष के पश्चात गोशालक भगवान से दूर जाकर, फिर उनके तीर्थंकर काल के १६वे वर्ष मे पुन उनके सपर्क मे आया।

सिद्धार्थपुर से भगवान वैशाली पधारे। नगर के वाहर ध्यान किया। अवोध वालको ने उन्हे पिशाच समझा और यातनाएँ देने लगे। उसी समय

यकायक राजा सिद्धार्थ के मित्र शख राजा उधर आ निकले। बालको को दूर भगाया। भगवान को वदन-नमस्कार कर राजा चला गया।

भगवान वहाँ से विहार करके वाणिज्यग्राम की तरफ जा रहे थे कि बीच मे गण्डकी नदी आई। नाव मे बैठकर नदी पार की। नाविक ने किराया माँगा, परन्तु प्रभु मौन रहे। किराया न देने के कारण नाविक ने क्रोधित हो उन्हे तप्त तवे सी गर्म रेती पर खडा कर दिया। सयोगवश उस समय शख राजा का भगिनीपुत्र चित्र वहाँ आ पहुँचा और उसने नाविक से भगवान को मुक्त करवा दिया।

प्रभु वाणिज्यग्राम मे पधारे। आनन्द श्रमणोपासक[1] ने वर्धमान प्रभु के दर्शन किये। उस श्रमणोपासक को अवधिज्ञान था। अत वह यह जान गया कि प्रभु को केवलज्ञान होने वाला है। श्रीचरणो मे वन्दन-नमस्कार करके बोला "हे भगवन्! थोडे समय के बाद ही आपको केवल-ज्ञान उत्पन्न होगा।"

दसवाँ वर्षावास सावत्थी नगरी

नाना प्रकार के ध्यान-तपयोग की साधना करते हुए प्रभु वाणिज्य ग्राम से सावत्थी पधारे। यहाँ १०वाँ वर्षावास प्रभु ने पूर्ण किया। चातुर्मास पूर्ण होने पर सानुलट्ठियसन्निवेश मे पधारे। वहाँ पर प्रभु ने सोलह उपवास किये। विविध प्रकार की ध्यान साधना मे वर्धमान रत रहते थे। इसके अलावा भी उन्होने भद्र, महाभद्र और सर्वतोभद्र प्रतिमाओ की आराधना की। तपश्चर्या की साधना पूर्ण होने पर प्रभु पारणार्थ आनन्द श्रमणोपासक के घर पधारे। उसकी बहुला दासी रसोडे मे से बचे हुए भात को बाहर फेंकने के लिये दरवाजे पर पहुची। द्वार पर महावीर प्रभु भिक्षार्थ खडे थे। दासी को आती देखकर भगवान ने भिक्षार्थ हाथ पसारे। श्रमणोपासक आनन्द की दासी भगवान के दर्शन पाकर आनन्द विभोर हो गई। उसने वह अन्न प्रभु को भिक्षा मे प्रदान किया।

सगम देवता के २० उपसर्ग

वाणिज्यग्राम से विहार कर प्रभु दृढभूमि के पेढाल गाँव मे पहुँचे। गाव के निकट पेढाल उद्यान मे अष्टमभक्त तप कर ध्यानमग्न खडे थे।

---

[1] उपासकदशागसूत्र मे जो आनन्द श्रावक का उल्लेख है वह भगवान महावीर का श्रमणोपासक है और यहाँ पर जो आनन्द श्रमणोपासक का उल्लेख है वह प्रभु पार्श्व का श्रमणोपासक होना चाहिये।

कायोत्सर्ग मे खडे, कुछ आगे की ओर झुके हुए, एक अचित्त पुद्गल पर दृष्टि स्थिर "अणिमिष नयने" थी। आँखो की पलके निश्चल थी। शरीर स्थिर,' इन्द्रियाँ गुप्त, दोनो पाँव सटे हुए, दोनो हाथ नीचे की ओर झुके हुए थे। यह एक रात्रि की महाप्रतिमा नाम की साधना थी। उग्र साधना को देखकर शक्रेन्द्र ने अपनी सभा मे गद्‌गद स्वर से प्रभु को वदन करते हुए अपने विचार व्यक्त किये—'प्रभो! आपका धैर्य, आपका साहस, आपका ध्यान अनूठा है? मानव तो क्या शक्तिशाली देव और दानव भी आपको ध्यान से विचलित नही कर सकते।"

प्रभु वर्धमान की महिमा इन्द्र के मुख से सुनकर सभी देवो ने जयनाद के साथ अनुमोदन किया। तव सगम देवता के दिल मे भगवान के प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई।

सगम देवता अपने आपको वहुत वलवान समझता था। भगवान को अपनी साधना से चलायमान करने के लिये इन्द्र से वचन लिया कि "मैं प्रभु की परीक्षा करने जाता हूँ।" सगम ने प्रभु के पास आते ही अनेकानेक उपसर्गों का जाल फैला दिया। सर्वप्रथम शरीर के अन्दर रग-रग मे दर्द पैदा कर दिया। मगर प्रभु ध्यान से चलायमान नही हुए तव उसने अनुकूल उपसर्ग चालू कर दिये। आकाशमार्ग से अनेक सुन्दर स्त्रियाँ महावीर प्रभु के पास आने लगी। वे स्त्रियाँ उत्तेजक हाव-भाव के साथ कामयाचना करने लगी। शरीर से लिपटने लगी। महावीर प्रभु अपनी ध्यानमुद्रा मे ज्यो के त्यो खडे रहे। उन रमणियो के विलासभाव का उन पर कोई प्रभाव नही पडा, प्रभु मदराचल के शिखर के समान अविचलित ही रहे।

चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि—
र्नीत मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखर चलित कदाचित्॥

एक ही रात्रि मे सगम देव ने निम्न २० उपसर्ग किये—

(१) भयकर हवा का तूफान चलाया, जिससे कान, आँख, नाक और सारा शरीर धूल से भर गया।

(२) वज्रमुखी चीटियो ने सारे शरीर मे काटना शुरू किया, प्रभु के शरीर को खोखला कर दिया।

यह सुनकर उसके दिल मे और भी अधिक दु ख हुआ। दु खि हृदय से अपने पति से निवेदन किया कि "आप जैसे कौशाम्बी के महामन्त्री होने पर भी प्रभु का पारणा चार मास से नही हो पाया है। स्वामी! आपको प्रभु की सेवा मे जाकर अभिग्रह का पता लगाना चाहिये।" मन्त्री ने बात मजूर करते हुए अपनी भूल महसूस कर कहा—"देवी! अब मैं अभिग्रह का पता लगाने का प्रयत्न करूँगा।"

पति-पत्नी का सलाप विजया नाम की राजदासी ने भी सुना और उसने जाकर मृगावती महारानी से निवेदन किया। महारानी ने सम्राट शतानीक को निवेदन किया। सम्राट् और सुगुप्त अमात्य ने अत्यधिक प्रयत्न किया प्रभु के अभिग्रह का पता लगाने का। राजा ने प्रजा को भी गोचरी के नियम-उपनियम का परिचय देकर प्रभु का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी, परन्तु प्रयत्न करने पर भी अभी तक अभिग्रह पूर्ण नही हुआ। पाच मास पच्चीस दिन व्यतीत हो गये फिर भी प्रभु की प्रसन्न मुखमुद्रा मे कोई अन्तर न आया।

भगवान एक दिन परिभ्रमण करते हुए कौशाम्बी मे धन्ना सेठ के घर की तरफ पधार रहे थे। उस समय राजकुमारी चन्दनबाला जिसके हाथो मे हथकडियाँ, पाँवो मे बेडियाँ, सिर के बाल कटे हुए थे, सूप के कोने मे उडद के बाकुले थे, तीन दिन की भूखी-प्यासी द्वार पर बैठी हुई अपने धर्मपिता की प्रतीक्षा कर रही थी।

चन्द्रमुखी चन्दनबाला ने प्रभु को आते हुए देखा। उसका नेहरा कुमुदनी की भाँति खिल गया। मन ही मन सोचने लगी 'मेरे धन्य भाग है कि प्रभु मेरे यहाँ पधार रहे है। मेरे पास तो उडद जैसी तुच्छ वस्तु है किस प्रकार प्रभु को दूँ? ऐसा सोचते ही नयनो मे आँसू छलक पडे प्रभु का अभिग्रह पूर्ण हो गया। अश्रु से भीगी आँखे और मुख पर हा की रेखा सहित चन्दनबाला ने महावीर को उडद के सूखे बाकुले बहराये महावीर ने वहाँ पारणा किया। देवदु दुभि बजी। पाँच दिव्य प्रकट हु साढे बारह करोड सोनैया की वृष्टि हुई। चन्दनबाला का सौदर्य अति खिल उठा। उसकी बेडियाँ-हथकडियाँ सोने के भूषणो मे परिवर्तित हो गई

आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र आदि किसी भी ग्र मे आसू न देखकर प्रभु का लौट जाना और प्रभु के लौटने पर चन्दनबा के आंसू आना, और पुन प्रभु का पधारना आदि वर्णन नही है। तीर्थं महावीर, आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन आदि अनेक आधुनिक ग्र

में आँसू न देखकर प्रभु का लौटना और पुन आने का वर्णन किया गया है।[1]

अभिग्रहपूरक चन्दनवाला   एक परिचय

कौशाम्बी नरेश शतानीक को विचार पैदा हुआ कि हम क्षत्रिय हैं। **'सव्वट्ठेसु व खत्तिया'** सर्व अर्थ की प्राप्ति होने पर भी क्षत्रिय की तृष्णा शात नही होती। सुभूम छह खण्ड का अधिपति होते हुए भी वह चुप (शान्त) नही बैठा और सातवे खण्ड को साधने हेतु तैयारी की। मेरी भी भुजाओ मे वल है। मुझे किसी देश पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। "जर-जोरु-जमीन जोर की, नही तो किसी और की।" ऐसे तुच्छ विचार उनके हृदय मे उठे, भुजवल पर गर्व जगा और विना हक के अधिकार प्राप्त करने की इच्छा वलवती हुई। चिंतन चला।

निरीक्षण मे गुलजार नगरी चपा दिखाई दी। ऋद्धि-समृद्धि मे चम्पा स्वर्ग से भी वढकर है, मुझे उस पर अपना अधिकार जमाना है। वात ही वात मे सेनापति से परामर्श लिया। तो सेनापति ने भी पूछ लिया—चपा विजय के उपलक्ष मे हमे क्या पुरस्कार मिलेगा ?

प्रत्युत्तर मे शतानीक नरेश ने कहा—"जो तुम्हारी इच्छा हो।"

सेनापति ने शर्त रखी कि 'चम्पानगरी की लूट मे जो भी माल लिया जाय, उस पर लेने वाले का अधिकार होगा।'

राजा वचनवद्ध हो गया।

सशस्त्र सेना से सज्जित हो अगदेश की राजधानी चम्पानगरी को घेर लिया गया। सात्त्विक विचारो वाले, अपने सारे वल को नीति की सीमा मे वाँधने वाले चपाधीश के पास सदेश पहुँचा।

सदेश पाकर चपाधीश ने सोचा—समस्या हम दोनो को मिल कर ही सुलझानी है। वातो का वतगड, तिल का ताड, राई का पहाड नही वनाना है। मुझे स्वय ही जाकर निर्णय प्राप्त कर लेना चाहिये। ऐसा सोच अपने अश्व पर सवार हो स्वय शतानीक के सेना दल मे होकर चम्पाधिपति कौशाम्वी नरेश के पास पहुँचे।

वातो के दौरान मे पूछा गया "आप क्या चाहते हो ?" "मैं ! हुँई किंतु

---

१ भगवान महावीर   एक अनुशीलन—लेखक देवेन्द्र मुनिजी।

चाहता हूँ चम्पा का राज्य। जिसकी भुजाओ मे बल होगा वही चम्पा का अधिकार पाएगा। इसका परिणाम रण मैदान मे मिल जाएगा।"

चपानरेश दधिवाहन ने कुछ क्षण रुककर चितन करके कहा "इस छोटी सी बात के पीछे हम क्षत्रियो को खून की नदी नही बहानी है। हाँ, जहाँ पर चोरी, अन्याय, अनीति का प्रसग होता है उस समय सच्चे क्षत्रियो की तलवारे म्यान मे नही रह सकती हैं परन्तु यहाँ तो प्रजा की सेवा का प्रश्न है। चाहे जनता की सेवा मैं करूँ या आप! मुझे इसमे आपत्ति नही। अच्छा नरेश! प्रजा मे शाति बनाए रखियेगा, क्योकि हम लोग प्रजा-पालक है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवश्य नरक अधिकारी॥

मैं यही चाहता हूँ कि आपके लिये भी स्वर्ग-अपवर्ग का द्वार खुला रहे।"

जयजिनेन्द्र करते हुए नरेश दधिवाहन ने ममत्व से मुँह मोडकर अपनी निगाह चम्पा पर न डाल कर वनविहार कर दिया।

छह खण्ड पर विजय पाना आसान है किन्तु मन पर विजय पाना बडा कठिन है।

जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ॥

दस लाख सुभटो को जीतने वाले वीर से भी आत्मविजयी महान वीर कहलाते है।

शतानीक के हर्ष का पार न रहा—'बिना ही औषध के रोग मिट गया।' राजा ने अपना सत्य निभाने के लिये सेनापति को आदेश दिया 'आज के दिन चम्पा जो स्वर्गीय-वैभव से सम्पन्न है—तुम चाहो वह माल ले सकते हो।' आदेश पाते ही बिल्ली को दूध, बन्दर को बगीचा मिलने पर किसके रोके रुक सकते है। अच्छी तरह से सेना ने मनचाही लूट-खसोट मचाई।

रथ का अधिपति रथी सीधा राजभवन मे पहुचा। सोचा क्या ग्रहण करूँ, इतने मे दिल बोला धन-वैभव पाना तो आसान है परन्तु स्त्री-रत्न प्राप्त करना कठिन है। जहाँ रूप राशि राजरानी धारिणी अपनी प्यारी [illegible] वसुमती को सद्शिक्षा दे रही थी। 'बेटी! ..

शाति समर मे कभी भूलकर, धैर्य नही खोना होगा।
वज्र प्रहार भले शिर पर हो, नहीं किन्तु रोना होगा॥

शिक्षा का अमृतपान वीर बालिका वसुमती सस्नेह कर ही रही थी। चम्पा की स्थिति का गहरा चिंतन भी चल ही रहा था। माता ने कहा "प्यारी पुत्री! तेरा स्वप्न साकार हो चुका है, चम्पा दुःख के सागर मे गर्त हो चुकी है, अब तेरे ही हाथो चम्पा का उद्धार होने का जो स्वप्न अवशेष रहा है उसको भी साकार करना है और इसमे तुझे आत्मबल से विजय पानी होगी। अतः आत्मबल को बढाओ बेटी!" इतने मे ही पैरो की आहट कानो मे आई। दोनो सावधान हो देखने लगी। रूपमुग्ध भ्रमर बनकर एक वीर सेनानी सम्मुख आकर खडा हो गया। सोच रहा था कि इन दोनो अप्सराओ को अपने अधीन बनाना है। कैसे बनाना? दिल-दिमाग की सूझ-बूझ से म्यान तलवार से खीचकर सजोश बोला "जिन्दगी चाहती हो तो इस रथ मे बैठो?"

समय की पुकार समझ धारिणी ने वसुमती की तरफ निगाह डाली। सकेत समझ कर वसुमती भी माता के साथ रथारूढ हो गई।

पवनवेग अश्व वाले रथ पर पर्दा डाल रथी रथ ले चला। चम्पा से कौशाम्बी जाते मार्ग मे भयकर वन मे रथ को रोका। दोनो को अलग-अलग वृक्ष के नीचे खडा कर दिया। अपनी कुत्सित भावनाओ का प्रस्ताव धारिणी के सामने रखा। प्रस्ताव को सुन कुपित शेरनी के समान धारिणी ललकार करती हुई बोली—"अरे दुष्ट! क्या कभी शेरनी सियालो के सग डोलेगी? अरे अधम! क्या हसिनी कौओ के सग खेलेगी? अरे नीच! क्या इन्द्राणी दानव से हँस कर बोलेगी? अरे मूर्ख! क्या कुमुदिनी तारो से ततु खोलेगी? ऐसा कभी हुआ नही और होगा नही। अरे नालायक! दूर रहना, मै वीर की पत्नी, वीर की भगिनी और वीर की राजदुलारी हूँ। मेरे पवित्र शरीर पर पापी अपना हाथ मत लगाना।" इतना समझाने पर भी कौए की पॉखवत् उसके मन की कालिमा दूर न हटी। उसने ज्योही आगे कदम बढाया, धारिणी बोली—"ठहर! कुछ समय मुझे दे।" रथी सोचता है गर्मी से बर्फ भी पिघल जाता है, अब इसका मन पिघलने ही वाला है, तभी तो समय माँगा है। ऐसा सोच रथी ने समय दिया।

वीरमाता मे वीरत्व जगा। महासती धारिणी ने आलोचनापूर्वक सथारा कर सभी प्राणियो को क्षमा दी और क्षमा की याचना करती हुई बोली—"प्रभु! आपत्ति से घबरा कर आत्मघात करना कायरता है किंतु अपने धर्म की रक्षा के लिये **'सेयं ते मरणं भवे'** इन आप्त वचनो को

हृदयगम कर मै समय के साथ चल रही हूँ।" ऐसा कहते ही अपनी जिह्वा वीरागना ने खीच ली।

यह बलिदान का दृश्य देखते ही रथी का पत्थर दिल बर्फवत् पिघल कर पानी हो गया। मन ही मन सोचा—'हाय रे! मै बडा पापी हो गया, निष्कारण मैंने कुत्सित प्रस्ताव रखा, नारी हत्या के पाप का भागी बन गया। अब कही बालिका की हत्या न हो जाय। मैं समीप जाकर अपने पापो का पश्चात्ताप कर लूँ।'

वसुमती की तरफ कदम बढाया और दूर ही मे बोला "बेटी! अब मुझे घोर नरक से बचाने वाली तू ही है। तेरी माता के बलिदान के साथ मैंने अपने कुत्सित विचारो का भी बलिदान कर दिया है। अब तू मुझ पापी को घोर नरक से बचा ले।

गम्भीर चन्दना ने वीतराग के सिद्धान्त को भली प्रकार से समझ रखा था, बोली—"मुझे पाप से घृणा है पापी से नही।"

चन्दना—"आप मेरे पूज्य पिता है, क्योकि आपका मन पवित्र हो चुका है। धर्म के नाम पर अपना बलिदान करने वाली माता की मृत्यु पर मुझे गौरव है।"

धारिणी के देह का अग्नि-सस्कार कर धर्मपिता पुत्री को कौशाम्बी मे अपने घर ले आया।

रथी को पत्नी का निमित्त पाकर वसुमती को अनिच्छा से भी कौशाम्बी के बाजार मे बेचना पडा। पहले वेश्या ने खरीदी, बाद मे धन्ना सेठ ने। बालो का निमित्त पाकर मूला सेठानी के मन मे मलिन विचार पैदा हुए और प्रभु का अभिग्रह पूर्ण होने का निमित्त बना। धन्ना सेठ अन्य गाँव गया। इस अवसर को पाकर चन्दनबाला के साथ मूला ने क्रूर व्यवहार करते हुए शिर के बाल काटे, काछ पहनाया, हथकडियाँ, बेडियाँ पहनाकर धकेल कर भूतल मे डाल दी और आप स्वय पीहर चली गई। तीन दिन के बाद धन्ना सेठ गाँव से घर आया, चन्दना को पुकारा। भूतल मे चन्दना बोली "पिताजी! आनन्द मे अमुक तलघर मे शान्ति के साथ बैठी हूँ।" पिता ने उसे बाहर निकाला, उसकी स्थिति देख दिल द्रवित हो गया। पूछा "बेटी! तेरी यह स्थिति किसने की?" "पिताश्री! मेरे कर्मों ने ही की है, इसमे किसी का दोष नही है।" पिता के दुःख को मिटाने हेतु चन्दना ने कहा—'पिताजी! भूख जोरो से लगी है, कुछ खाने को दीजिये।' इधर-उधर हो सेठ ने चारो तरफ निगाह डाली—"बेटी! क्या दूँ?" उडद के बाकले भरे रखे थे, बर्तन के अभाव मे सूप के कोने मे डाल कर सेठ

चन्दना के हाथ मे दे दिए और वोला—"वेटी! अभी लुहार को लाता हूँ। हथकडियाँ-वेडियाँ तुडवाता हूँ।" सेठ वाहर चला गया। चन्दना धीरे-धीरे खिसक कर हथकडी वाले दोनो हाथो मे सूप ले द्वार पर आकर वैठी। निगाह फैला रही थी कि अतिथि को दिये विना खाना, पापी पेट को भरना है। प्रतीक्षा कर ही रही थी कि प्रभु वर्धमान भिक्षार्थ सेठ की हवेली की तरफ पधारे। चन्दना ने उडद के वाकुले दान मे दिये, अभिग्रह पूर्ण हुआ।

जरा स्मरण रखना चाहिये कि न तो महावीर के अभिग्रह के लिये चन्दना की ऐसी स्थिति हुई और न चन्दना के लिये महावीर ने ऐसा अभिग्रह किया।

चम्पा नहीं लुटी जाती तो इतनी क्रन्दना न होती।
धारणी शील लुटा देती तो इतनी वन्दना न होती॥
महलो मे तालियाँ और मूला को गालियाँ देती।
तो सत्य वात है कि चन्दना, चन्दना न होती॥

—गणेश मुनि शास्त्री

पाँच दिन कम छह मास का पारणा चन्दना के हाथो से कौशाम्वी मे करके प्रभु ने विहार कर दिया। सुमगल, सुच्छेत्ता, पालक आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए चम्पानगरी मे पधारे।

वारहवाँ चातुर्मास चम्पानगरी

भगवान ने चम्पानगरी के 'स्वातिदत्त' ब्राह्मण की यज्ञशाला मे चार मास का तप तथा सयम से आत्मा को भावित करते हुए वारहवाँ चातुर्मास किया। इस चौमासे मे दो यक्ष पूर्णभद्र और मणिभद्र प्रभु की सेवा मे आते थे। यज्ञशाला के मालिक को मालूम हुआ कि दो यक्ष महात्मा के पास आते है, प्रतीत होता है कि ये कोई महान ज्ञानी महातपस्वी है। उसने भगवान श्री वर्धमान से जिज्ञासा की—"आत्मा क्या है?"

प्रभु ने समाधान दिया—"जो 'मैं' शब्द का वाच्यार्थ है, वही आत्मा है।"

स्वातिदत्त ने पुन जिज्ञासा की—"आत्मा का स्वरूप क्या है और इसका लक्षण क्या है?"

प्रभु वर्धमान ने समाधान दिया—"वह अत्यन्त सूक्ष्म है और रूप, रस, गध, स्पर्श आदि से रहित है तथा चेतना गुण से युक्त है।"

प्रश्न उत्पन्न हुआ—"सूक्ष्म क्या है?"

उत्तर मिला—जो इन्द्रियो से जाना-पहचाना न जाय।

पुन जिज्ञासा प्रस्तुत हुई कि क्या आत्मा को शब्द, रूप, गध और पवन के सदृश समझा जाय ?

प्रभु ने स्पष्टीकरण करते हुए फरमाया—नही, ये इन्द्रियग्राह्य है। श्रोत्र के द्वारा शब्द, नेत्र के द्वारा रूप, घ्राण के द्वारा गध और शब्द व स्पर्श के द्वारा पवन ग्राह्य है पर जो इन्द्रियग्राह्य नही हो, वह सूक्ष्म है।

प्रश्न—क्या ज्ञान का नाम ही आत्मा है ?

उत्तर—ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, ज्ञान का आधार आत्मा-ज्ञानी है।

इस प्रकार की जिज्ञासाओ के समाधान से स्वातिदत्त का मन अत्यधिक आह्लादित हुआ।

प्रभु के कानो में कीलें

चम्पा का चातुर्मास पूर्ण होने पर प्रभु जंभियग्राम मे मिढिय-ग्राम होते हुए छम्माणि पधारे और ग्राम के बाहर ध्यानमुद्रा मे अवस्थित हुए। सन्ध्या के समय एक ग्वाला अपने बैलो को लेकर आया। ध्यानस्थ प्रभु के पास बैलो को खडा कर आवश्यक कार्यवश गाँव मे गया। बैल चरते-चरते आसपास की झाडियो मे जा बैठे। ग्वाला गाँव से आया तो उसे बैल दिखाई नही दिये। महावीर से पूछा "मेरे बैल कहाँ है ?" प्रभु मौन रहे। ग्वाला क्रोध मे लाल-पीला हो गया। कुपित होकर बोला—"पूछने का उत्तर भी नही देता, बोलता भी नही; क्या तुझे सुनाई नही देता है, अरे क्या तेरे कान बन्द है ? म अभी तेरे कान खोल देता हूँ।" यह कहकर उसने महावीर के कानो मे कासे की तीक्ष्ण शलाकाएँ डाल दी अं शलाकाओ को कोई देख न सके अत. शलाका का बाह्य भाग काट उसके बाद ग्वाला चला गया।

उस अत्यन्त वेदना को सहते हुए भी प्रभु शान्त-प्रशान्त थे, प्रस प्रभु के अन्तर्मानस मे किञ्चित् मात्र भी खिन्नता नही थी। प्रभु चिन्तन रहे थे कि 'त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे मैने जो कर्म बाधे थे वे नि कर्म आज उदय मे आये है। शय्यापालक के कानो मे मैने गर्म शीशा डाला था। उसे कितनी घोर वेदना हुई होगी।' प्रभु वहाँ से विहार मध्यमपावा पहुँचे। भिक्षा हेतु मध्यमपावा मे परिभ्रमण कर

सिद्धार्थ सेठ के यहाँ पधारे। उस समय सेठ खरक वैद्य से वार्ता कर रहा था। दीर्घ दृष्टि वाले वैद्य की निगाह महावीर की तरफ गई। उसने सर्वलक्षण सम्पन्न प्रभु महावीर के सुन्दर सुडौल शरीर का अवलोकन करते हुए कानो की तरफ दृष्टिपात किया।

वैद्य ने कहा—इनके कानो मे शल्य है, उसे निकालना हमारा कर्तव्य है। वैद्य और सेठ ने अत्यधिक प्रार्थना की, परन्तु प्रभु वहाँ रुके नही और ग्राम के बाहर पधार कर ध्यानस्थ खडे हो गये। खरक वैद्य और सेठ औषधि तथा साधन सामग्री लेकर भगवान के पदचिह्नो के आधार से उद्यान मे आये। वहाँ वर्धमान प्रभु ध्यानस्थ थे। उसने शलाका निकालने के पूर्व प्रभु के पूरे शरीर का तैल से मर्दन किया और सण्डासी से पकडकर शलाकाएँ बाहर निकाली। कानो से रक्त की धारा बह चली। कहा जाता है कि उस अतीव भयकर वेदना मे प्रभु के मुँह से एक चीख निकल पडी[1] जिससे सारा बाग और देवकुल सभ्रमित हो गया। वैद्य ने शीघ्र ही सरोहण औषधि से रक्त को बन्द कर दिया और वह घाव पर भी लगादी। प्रभु को नमस्कार कर क्षमायाचना की। सेठ और वैद्य अपने स्थान पर चले गये।

ग्वाला अपनी अशुभ भावना से सातवी नरक मे गया और खरक वैद्य व सिद्धार्थ सेठ दोनो ही शुभ भावना से देवलोक मे गये।

भगवान महावीर ने साधना काल मे अनेको रोमाचकारी कष्टो का सामना किया जिसे आज पढते हुए भी भावुक भक्तो के कलेजे काँप उठते हैं। ताडना, तर्जना, अपमान और उत्पीडन ने प्राय पद-पद पर प्रभु की कठोर परीक्षा ली।

भगवान का पहला उपसर्ग कूर्मारग्राम मे एक ग्वाले के द्वारा हुआ था और अन्तिम उपसर्ग भी एक ग्वाले के द्वारा ही हुआ।

प्रभु के सभी उपसर्गो को तीन भागो मे विभक्त करे तो जघन्य उपसर्गों मे कटपूतना का उपसर्ग महान था। मध्यम उपसर्गो मे सगम का कालचक्र उपसर्ग विशिष्ट था और उत्कृष्ट उपसर्गो मे कानो मे शलाकाएँ निकालना अत्यन्त उत्कृष्ट था।

प्रभु एक वीर सेनानी की भाँति निरन्तर आगे बढते रहे। कभी पीछे कदम नही रखा। देव-दानव-मानव और पशुओ के द्वारा भीषण कष्ट

---

१ भगवान महावीर : एक अनुशीलन—लेखक देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री

देने पर भी अदीनभाव से, अव्यथित मन से, अम्लान चित्त से, मन, वचन और काया को वश में रखते हुए सब कुछ सहन किया।[1]

प्रभु महावीर के दस स्वप्न

मूल—

समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा—एगं च णं महं घोररूव-दित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं चित्तविचित्त पक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्स-कलियं भुयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। एगं च णं हरिवेरुलियवण्णाभेणं णियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं स[व्वओ] समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे। ए[गं च] णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अ[प्पाणं] सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे[2] ॥१४॥

मूलार्थ—

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रा[त्रि में ये]
दश स्वप्न देखे—

(१) एक बड़े विकराल रूप वाले दीप्त ताल पिशाच को स्व[प्न में] पराजित कर जागृत हुए।

(२) एक बड़े श्वेत पुंस्कोकिल को देखकर जागृत हुए।

---

१ आचारांगसूत्र

२ भगवतीसूत्र, शतक १६, उ० ६, सूत्र १८

(३) एक चित्र-विचित्र पाखो वाले पुस्कोकिल को देखकर जागृत हुए।

(४) एक बहुत बडी रत्नो की माला-युगल को देखकर जागृत हुए।

(५) एक श्वेत गायो को वर्ग (समूह) को देखकर जागृत हुए।

(६) सुगधित पुष्पो वाले एक बडे पद्म सरोवर को देखकर जागृत हुए।

(७) छोटी-बडी हजारो तरगो वाला एक बडा सागर भुजा से तैर कर पार कर लिया —ऐसा स्वप्न देखकर जागृत हुए।

(८) एक बडे तेजस्वी जाज्वल्यमान सूर्य को देखकर जागृत हुए।

(९) नील वर्ण वाले वैडूर्य रत्न जैसे अपने शरीर मे रहे हुए आतरडो (आँतो) से मानुषोत्तर पर्वत को चारो तरफ वेष्टित व विशेषवेष्टित किया हुआ देखा और जागृत हुए।

(१०) एक लाख योजन ऊँचा मेरु पर्वत, उसके ऊपर चालीस योजन की चूलिका के ऊपर सिंहासन पर आप स्वय विराजमान हुए, ऐसा देखा और जागृत हुए।

इन सभी स्वप्नो का अर्थ आगम मूल पाठ मे भी दिया है।

मूल—

ज ण समणे भगवं महावीरे एगं मह घोररूवदित्तधर तालप्पिसाय सुविणे पराजिय पासित्ता ण पडिवुद्धे तं णं समणेण भगवया महावीरेण मोहणिज्जे कम्मे मूलओ घातिओ। ज ण समणे भगवं महावीरे एग मह सुक्किल जाव पडिवुद्धे, त णं समणे भगव महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ। ज ण समणे भगव महावीरे एगं मह चित्तविचित्त जाव पडिवुद्धे, तं ण समणे भगव महावीरे विचित्त ससमयपरसमय दुवालसगं गणिपिडग आघवेति पण्णवेति परूवेइ दसेइ निदंसेइ उवदसेइ, त जहा—आयार सूयगड जाव दिट्ठिवायं। ज ण समणे भगव महावीरे एग मह दामदुग सव्वरयणामय सुविणे पासित्ता ण पडिवुद्धे, तं णं समणे भगवं महावीरे दुविहे धम्मे पण्णवेइ, त जहा—आगारधम्म वा अणगारधम्म वा। ज णं समणे भगवं महावीरे एगं

प्रभु महावीर का प्रथम प्रवचन

यह एक शाश्वत नियम है कि जिस स्थान पर केवलज्ञान की उपलब्धि होती है वहाँ एक मुहूर्त तक तीर्थंकर प्रभु ठहरते हे और धर्मदेशना भी करते हे। भगवान महावीर भी एक मुहूर्त तक वहाँ ठहरे।

प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तथा देवियो का आवागमन शुरू हो गया। अष्ट प्रतिहार्य युक्त समवसरण की रचना देवो ने की। सिंहासन पर बैठ प्रभु ने अमृतमय वाणी अर्धमागधी भाषा मे फरमाई। इस समवसरण मे मनुष्य और तिर्यंच नही थे। देवगण ही उपस्थित थे। देवगण सर्वविरति-देशविरति के योग्य न होने के कारण किसी ने भी देशविरति या सर्वविरति रूप चारित्र धर्म स्वीकार नही किया। दश आश्चर्यो मे एक यह भी आश्चर्य है कि 'तीर्थंकर की प्रथम परिषद् अभावित नही होती है किन्तु प्रभु महावीर की प्रथम परिषद् अभावित हुई। जिसका उल्लेख गर्भ अपहरण के प्रसग पर पहले ही कर दिया गया हे।'

द्वितीय प्रवचन

मूल—

तओ णं समणे भगव महावीरे उप्पण्णणाण दसणधरे अप्पाण च लोग च अभिसमेक्खपुव्व देवाणं धम्ममाइक्खइ तओ पच्छा मणुस्साणं ॥

—आचारागसूत्र, दूसरा श्रु०, अ० २४, सूत्र ३८

तओ ण समणस्स भगवओ महावीरस्स एतेण विहारेण विहरमाणस्स बारस वासा वितिक्कता तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाण दोच्चे मासे, चउत्थे पक्खे, वइसाहसुद्धे-तस्स ण वइसाहसुद्धस्स, दसमीपक्खेण सुव्वएण दिवसेण विजएण मुहुत्तेण हत्थुत्तराहि, णक्खत्ते ण जोगोवगतेण पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए जभियगामस्स णगरस्स बहिया णदीए उज्जुवालियाए उत्तरकूले सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणसि वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सालरुक्खस्स अदूरसामते उक्कुडुयस्स गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेण भत्तेण अपाणएण उड्ढजाणु अहोसिरस्स धम्मज्झाण कोट्ठोवगयस्स सुक्कज्झाणतरिया वट्टमाणस्स निव्वाणे, कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए णिरावरणे, अणते, अणुत्तरे, केवलवरणाण दसणे समुप्पण्णे ॥३५॥

से भगव अरहा, जिणे जाए, केवली • विहरइ ॥३६॥

—आचारागसूत्र, भावनाख्य चतुर्विशतितम् अध्ययनम्

कुछ समय मे नष्ट हो जाती है किंतु ये विमान तीनो कालो मे रहते हे । अत शाश्वत है । इसलिए उन्हे मायिक भी नही कह सकते ।

दूसरी बात जो बहुत पाप करते है वे नरक मे जाते है तो बहुत पुण्य करने वाले भी स्वर्ग मे जाते है । पापी जीव नारकी बनते है तो पुण्यकर्ता देव बनता है ।

देव स्वेच्छाचारी होते है, वे परिभ्रमण करते हुए मनुष्यलोक मे क्यो नही आते ? नही आने का मूल कारण यह है कि मनुष्यलोक की दुर्गन्ध उन्हे असह्य होती है । दूसरी बात देव वहॉ के विषय-भोगो मे ही इतने लिप्त रहते है कि उन्हे यहॉ आने का अवकाश ही नही मिलता । फिर भी देवगण कभी-कभी इस लोक मे आते है । देव चार प्रकार के है—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक । वे तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा, कैवल्य-प्राप्ति, निर्वाण आदि प्रसगो पर आते है तथा पूर्वभव के वैर या स्नेह के कारण भी आते हे ।

इस प्रकार देव विषयक समाधान पाकर मौर्यपुत्र ने अपने साढे तीनसौ शिष्यो सहित प्रभु महावीर के पास दीक्षा धारण कर ली ।

८ अकम्पित (नरको का अस्तित्व)

मौर्यपुत्र जब नही लौटे तो पडित अकम्पित भी अपने शिष्यो सहित समवसरण मे पहुंचे । महावीर ने उन्हे सबोधित करते हुए फरमाया कि "अहो अकम्पित ! तुम्हारे मन मे सशय है कि 'नरक हे या नही' । इसका समाधान मै करता हूँ । तुम ध्यानपूर्वक सुनो ।"

जैसे प्रकृष्ट पुण्यफल का उपभोग करने वाले देव है वैसे ही प्रकृष्ट पापफल का उपभोग करने वाले भी कोई न कोई तो होने ही चाहिये ? दुनिया मे भी घोर अपराधी को अधिक दण्ड और अल्प अपराधी को थोडा दण्ड दिया जाता है वैसे ही भारी पाप का फल जहाँ मिलता है वहॉ नरक है अर्थात् प्रकृष्ट पापफल के भोक्ता नारक है और जघन्य-मध्यम कर्मफल के भोक्ता मनुष्य और तिर्यंच है ।

प्रश्न—अत्यन्त कष्ट पाते हुए तिर्यच और मानवो को ही प्रकृष्ट पापफल का भोक्ता मानले तो क्या आपत्ति ?

समाधान—ऐसा एक भी तिर्यंच और मनुष्य नही मिलेगा जो पूर्ण रूप से दु खी ही हो अत प्रकृष्ट पापकर्मफल के भोक्ता के रूप मे तिर्यंच और मनुष्यो से अलग नारको का अस्तित्व मानना ही चाहिये ।

११. प्रभास (निर्वाण की सिद्धि)

पण्डित प्रभास को जब ज्ञात हुआ कि पण्डित मेतार्य महावीर के पास गये और अभी तक आये नही। मन मे सोचा और सकल्प के अनुसार महावीर प्रभु के समवसरण मे पहुँचे। प्रभु महावीर ने उनको सबोधित करते हुए कहा प्रभास! तुम्हारे मन मे 'निर्वाण है या नही' यह शका है। मै तुम्हारे सशय का निवारण करूँगा।

जीव और कर्म का सयोग आकाश के समान अनादि है इसलिये उसका कभी भी नाश नही हो सकता फिर निर्वाण किस प्रकार माने।

कितने ही कहते है कि दीप-निर्वाण के समान जीव का नाश ही निर्वाण-मोक्ष है।

कितनो का मन्तव्य है कि विद्यमान जीव के राग-द्वेष आदि दुखो का अन्त हो जाने पर जो एक विशेष प्रकार की अवस्था प्राप्त होती है, वही मोक्ष है।

जैसे कनक और पाषाण का सयोग अनादि है फिर भी प्रयत्न के द्वारा सोना और पत्थर अलग किये जा सकते है वैसे ही रत्नत्रय द्वारा जीव और कर्म के अनादि सयोग नष्ट हो सकते है और जीव कर्मो से मुक्त हो सकता है।

दीप-निर्वाण के समान मोक्ष मे जीव का भी नाश हो जाता है, ऐसी मान्यता युक्तिसगत नही है क्योकि दीपक प्रकाश-परिणाम को त्यागकर अधकार-परिणाम को धारण करता है। पर्याय बदलती है किन्तु द्रव्य नही बदलता। अत दीपक की अग्नि सम्पूर्ण रूप से नष्ट नही होती। जैसे दूध दही के रूप मे, मृतकुभ कपाल के रूप मे परिवर्तित होता है इसी प्रकार दीपक के समान जीव का सम्पूर्ण रूप से उच्छेद नही होता।

पुन शका—दीप का सर्वथा नाश नही होता तो वह बुझने के बाद भी दिखना चाहिये?

समाधान—बुझने के बाद वह अधकार मे परिणत हो जाता है जो हमे अधकार दिखता ही है। अत तुम्हारी शका निरर्थक है।

जैसे प्रकाशमान दीपक स्पष्ट दिखाई देता है वैसे ही बुझने पर भी दीपक स्पष्ट दिखाई देना चाहिये?

वह उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर परिणाम को धारण करता जाता है अत विद्यमान होते हुए भी स्पष्ट दिखाई नही देता। उदाहरण के तौर पर,

वादल छिन्न-भिन्न होने के बाद मौजूद होते हुए भी आकाश मे दिखलाई नही देता वैसे ही दीपक भी बुझने पर मौजूद होते हुए भी अपने सूक्ष्म परिणाम के कारण स्पष्ट रूप से दिखाई नही देता। इसी तरह निर्वाण मे भी जीव का सर्वथा नाश नही होता।

जैसे दीपक का निर्वाण (बुझना) यानि परिणामातर होता है वैसे ही जीव का परिनिर्वाण प्राप्त करना निराबाध सुख रूप परिणामान्तर को प्राप्त होता है किंतु नष्ट नही होता।

कोई शका करते है कि मुक्तावस्था मे ज्ञान का अभाव है ?

समाधान यह है कि आत्मा का स्वरूप तो ज्ञान है जैसे परमाणु सदा मूर्त है, सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु मे भी एक वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श तो अवश्य होते है, वह कभी भी अमूर्त नही हो सकता वैसे ही आत्मा भी कभी ज्ञानरहित नही हो सकता।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा प्रत्यक्ष से भी सिद्ध हो सकता है। अगर आत्मा ज्ञानस्वरूप न हो तो इष्ट मे प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति नही हो सकती। हम उसमे प्रत्यक्ष रूप से इष्ट मे प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति देखते है, अत आत्मा को ज्ञानस्वरूप ही मानना चाहिये। जैसे जाज्वल्यमान प्रदीप को छिद्रयुक्त आवरण से ढकने पर वह अपना प्रकाश उन छिद्रो द्वारा कुछ ही फैला सकता है वैसे ही ज्ञानस्वरूप आत्मा भी आवरणो का क्षयोपशम होने से इन्द्रियरूप छिद्रो के माध्यम से अपना प्रकाश थोडा ही फैला सकता है। कर्म आठ हैं—प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म है जिसका स्वभाव ज्ञान गुण को आवृत्त करना है, उस कर्म का समूल नष्ट हो जाना ज्ञान की पूर्णावस्था है। जो मुक्त आत्मा है उसमे कर्मरूप आवरण का पूर्ण अभाव है। उसे ससार के सभी पदार्थो का परिज्ञान होता है। अत यह निर्विवाद सिद्ध है कि मुक्तआत्मा ज्ञानी है।

वस्तुत सुख-दु ख का कारण पुण्य-पाप है और पुण्य-पाप का मूल कारण शरीर है तथा शरीर का कारण कर्म है। मोक्ष मे कर्म और काया का अभाव होने से सुख-दु ख का भी अभाव है।

कर्मजन्य सुख मे दु ख निहित है। जैसे विषयजन्य सुख दु ख रूप है। ज्ञानियो का कथन है कि "**खिण मित्त सुक्खा वहु काल दुक्खा**" तथा कर्म-जन्य दु ख मे सुख निहित है जैसे फोडे के ऑपरेशन रूप शल्य चिकित्सा मे दु ख है किन्तु इसके पीछे सुख निहित है। रोग निवारणार्थ कटु क्वाथ-पान दु खरूप होते हुए भी परिणाम मे सुखरूप है।

मुक्तावस्था मे बाह्य वस्तु का किंचित् भी ससर्ग नही है अत मुक्तावस्था का सुख विशुद्ध और विशिष्ट सुख है।

इस प्रकार समाधान प्राप्त कर पण्डित प्रभास भी सशयातीत बने और अपने तीनसौ छात्रो के साथ श्रमणधर्म स्वीकार किया।

प्रभु महावीर के द्वितीय समवसरण मे धर्मसघ के ये ग्यारह ही पडित गणधर बने। इनके साथ जो जो शिष्य थे वे उन्ही के सान्निध्य मे रहे तथा ९ गण बने। एक ही दिन मे केवली प्रभु महावीर के ४४०० (चार हजार चार सौ) शिष्य बने।

●

तीर्थंकर जीवन

द्वितीय समवसरण मे मुख्य ग्यारह शिष्य और कुल चार हजार चार सौ (४४००) शिष्य प्रभु महावीर के वने।

उस समय चन्दनवाला कौशाम्वी मे थी। गगनमार्ग से देव-विमानो को जाते हुए देखकर उसने यह अनुमान लगाया कि प्रभु वर्धमान को केवलज्ञान हो गया है। मुझे भी दीक्षा ग्रहण करनी है। उसके हृदयगत भावो को अवधिज्ञान के द्वारा जानकर देव उसे समवसरण मे ले गये। अमृतमय उपदेश सुनने के पश्चात् चन्दनबाला ने प्रभु से ५ महाव्रत देने का निवेदन किया। उसका अनुकरण करते हुए हजारो महिलाये सयम साधना के लिये तैयार हो गई।

आर्या चन्दनवाला ने उस समय किन-किन महिलाओ मे साथ दीक्षा धारण की थी, उनके नामो की सूची यद्यपि आज प्राप्त नही है फिर भी यह सत्य है कि आर्या चन्दनवाला के साथ सैंकडो व हजारो नारियो ने दीक्षा अगीकार की थी। इसी कारण प्रभु महावीर ने उन्हे साध्वी सघ की मुखिया वनाया था। यदि वे उस समय अकेली ही प्रव्रजित हुई होती तो साध्वी समुदाय की प्रमुखा वनाए जाने का प्रश्न ही नही था।

भगवान महावीर का नारियो को प्रव्रजित करना तत्कालीन परिस्थितियो मे वहुत ही क्रातिकारी योजना थी क्योकि उस समय वेदशास्त्रो को मानने वाले वेदिक लोग नारी मात्र को अशुद्ध मानते थे। यज्ञ होमादि कार्यो मे स्त्रियो को भाग नही लेने देते थे। उसका प्रमाण आज भी मदिरो मे मिलता है। मदिरो के पुजारी पुरुप होते है। स्त्रियो को पूजा करने का अधिकार नही है। यही वात उस जमाने मे भी थी। महावीर ने इसका खुला विरोध किया और धार्मिक क्षेत्र मे नारी समाज को समान अधिकार दिया। महाव्रत और अणुव्रत नर और नारी समान रूप से पालन कर सकते है। नारी समाज की जागृति देखकर समवसरण की जनता आश्चर्यान्वित हो

गई। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना हुई। व
युग नारी समाज से घृणा करने वाला था। वेद शास्त्रो के मानने वाले ना
समाज को सन्यास धारण करने का अधिकार नही देते थे। कोई-कं
नारियो को सन्यासिनी बनाते भी थे फिर भी उनमे छूआछूत बहुत र
जाता था। आगे जाकर सन्यासिनी बनाने का भी घोर विरोध किया ग
था। उसका एक प्रमाण आज भी देखा जाता है कि पुरुष वर्ग जनेऊ धार
करता है, मगर यह अधिकार नारियो को नही दिया जाता है।

भगवान महावीर ने कहा कि नारी समाज का अनादर करना मानव समाज का अनादर करना है। आत्मोद्धार करने मे नारी पुरुष से कम नही है। मोक्ष मार्ग दोनो के लिये खुला है। माना जाता हे कि तथागत बुद्ध ने भी नारी समाज को साध्वी बनाने मे सकोच किया था। जब बुद्ध कपिलवस्तु के न्यग्रोधराम मे विहार कर रहे थे, तब उनकी मौसी गौतमी महाप्रजापति साध्वी बनने के लिये आई। उस समय बुद्ध ने स्वीकृति नही दी। गौतमी निराश होकर चली गई। बहुत दिनो के बाद गौतमी फिर बुद्ध की सेवा मे वैशाली पहुँची। इस बार गौतमी पहले से ही अपने शिर के बाल कटवाकर, काषाय वस्त्र धारण कर अपनी सहेलियो को साथ मे ले कपिलवस्तु नगर से वैशाली तक पैदल चलकर गई थी। गौतमी प्रव्रज्या के पूर्व ही अपने नैसर्गिक एव कृत्रिम शृ गारो का परित्याग कर एव पादविहार कर बुद्ध के विहार मे पहुँची। प्रव्रज्या के योग्य वेशभूषा एव विहार कर पहुँचने का कारण यह था कि बुद्ध केवल नारी की शारीरिक दुर्बलता के कारण उसे सघ मे प्रवेश के अयोग्य न समझे। बुद्ध ने उनको पहचाना नही। गौतमी ने वहाँ जाकर बुद्ध के पट्टधर शिष्य आनन्द को अपना परिचय दिया। शिष्य आनन्द ने बुद्ध के पास जाकर सनम्र गौतमी का परिचय दिया तथा उनको साध्वी बनाने की प्रार्थना की। बुद्ध ने टालने की बहुत कोशिश की तब आनन्द ने बुद्ध को उनके उस सिद्धान्त की जिसमे स्त्रियो को भी आर्हत् पद पाने का अधिकारी बताया गया था, याद दिलाते हुए कहा कि गौतमी आपका पालन-पोषण करने वाली, पयपान कराने वाली तथा आपकी माता की मृत्यु के बाद मातृपद का पोषण करने वाली है। इसलिये उनको प्रव्रज्या की अनुमति प्रदान करे। भिक्षु सघ की स्थापना के ५ वर्ष बाद अनिच्छापूर्वक आनन्द का अनुनय भरा प्रस्ताव सुनकर बुद्ध ने बहुत ही दबे शब्दो मे आज्ञा प्रदान की। आज्ञा प्रदान करते हुए भी बुद्ध ने चेतावनी दी कि यह प्रव्रज्या कुल समय बाद हमारे सामाजिक साधना क्षेत्र मे ब्रह्मचर्य व्रत को हानि पहुँचाने

वाली होगी क्योकि जिस धर्म एव विनय मे स्त्रियाँ प्रव्रज्या नही लेती वहाँ ब्रह्मचर्य स्थायी रहता है। किंतु स्मरण रखने की बात है कि जहाँ ६ वाड का सम्यक् परिपालन होता है वहाँ खतरे की कोई सम्भावना नही और जहाँ सम्यक् परिपालन नववाड का नही होता हे वहाँ सदा ही खतरा सम्भव हे।

जैन परम्परा मे भगवान ऋषभदेव की सुपुत्रियाँ ब्राह्मी-सुन्दरी आदि श्रमणिया वनी। भगवान अरिष्टनेमि की अर्धपरिणीता राजीमती तथा कर्मयोगी श्रीकृष्ण की महारानियो ने भागवती दीक्षा अगीकार की थी। जैन समाज के धार्मिक क्षेत्र मे नर-नारी को समान अधिकार दिया है। इस प्रकार चन्दनवाला के जीवन का महत्व बतलाते हुए भगवान ने हजारो नारियो को सयम व्रत दिया। उस समवसरण मे धीर वीर नर-नारियो ने सयमव्रत स्वीकार किये। जो लोग असमर्थ थे उन्होने देशव्रत अगीकार किये। इस प्रकार साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले भगवान उस दिन से तीर्थंकर कहलाये।

चतुर्विध तीर्थ की स्थापना होने के बाद भगवत के जो ग्यारह महा-पण्डित मुख्य शिष्य वने थे उन्हे त्रिपदी का ज्ञान दिया।

मूल—

उपन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा

—भगवतीसूत्र

जगत मे पदार्थ उत्पन्न होते है, उनका विनाश होता है, और मूल रूप से उनके परमाणु सदा वने रहते है। इस त्रिपदी मे इतनी विशेषता है कि भगवान महावीर के मुख से प्रकट होने वाला जितना श्रुतज्ञान है, उसका पूरा सार इस त्रिपदी मे आ जाता है। इस त्रिपदी के आधार पर योग्यता पाने वाले जो ग्यारह मुनिराज थे वे गणधर पद से प्रख्यात हुए। प्रभु महावीर के ११ गणधर और ६ गण हुए। इसका अर्थ यह है कि सात गणधरो की सूत्र वाचना अलग-अलग थी। अकम्पित और अचलभ्राता की वाचना साथ मे थी तथा मेतार्य और प्रभास की भी वाचना साथ थी। अत ११ गणधर और ६ गण हुए। प्रभु महावीर की सेवा में ही रहते हुए ६ गणधर मोक्ष पधार गये। जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष पधारे, उसी दिन गोतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। छद्मस्थ अवस्था मे सुधर्मा स्वामी

थे अत. आगम वाचना का पूरा भार सुधर्मा स्वामी के कंधो पर आया और सभी गण उनके सरक्षण मे रहे।

तेरहवाँ वर्षावास : राजगृह

मध्यमपावापुरी से विहार कर भगवान राजगृह नगर मे पधारे। राजगृह नगर के बाहर गुणशीलक उद्यान में विराजे। भगवान का यह वर्षावास राजगृह मे हुआ। भगवान के अपने अनुयायी श्रावकों के सिवाय पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा के श्रमणोपासक भी राजगृह मे वडी सख्या मे रहते थे। केवलज्ञानी महावीर के आगमन को सुनकर राजगृह नरेश श्रेणिक अपने परिवार सहित वन्दन-नमस्कार करने पहुँचे। यह माना जाता है कि उसी समय राजा श्रेणिक ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। अभयकुमार ने श्रावकव्रत अगीकार किये। ऐसा भी माना जाता है कि अनाथी मुनि के द्वारा राजा श्रेणिक ने जैनधर्म समझा था। हो सकता हे दोनो जगह जाकर उन्होने धर्मतत्त्व को श्रवण किया हो। केवलज्ञानी के इस प्रथम वर्षावास मे मेघकुमार एव नन्दीषेण ने दीक्षा अगीकार की थी। इन महानुभावो की दीक्षा मास और तिथि का उल्लेख नही मिलता हे।

मेघकुमार की दीक्षा

श्रेणिक नरेश के सुपुत्र मेघकुमार ने युवावस्था मे प्रवेश किया। आठ राजकन्याओ के साथ उसका विवाह हुआ। भगवान महावीर का उपदेश सुनकर उसके हृदय मे वैराग्य जागृत हुआ। महलो मे पहुँच कर अपने पिता श्रेणिक और माता धारिणी से साग्रह प्रार्थना की कि 'मेरा आपने लम्बे समय तक पालन-पोषण किया, मेरे जीवन निर्माण मे आपश्री का अति श्रम रहा है किन्तु मैं ससार के जन्म-जरा के दुख से घबरा चुका हूँ। मेरी अन्तर्भावना उन दुखो से मुक्ति दिलवाने वाली भागवती दीक्षा श्रमण भगवन्त के श्रीचरणो मे अगीकार करने की हे।' माता ने मेघ को सुकुमारता और सुखमय जीवन यापन का परिचय देते हुए भाति-भाति से समझाया किन्तु कुमार अपने विचारो मे सुदृढ रहा। उसने कहा कि 'तिर्यंच-नरकादि गतियो के घोर कष्टो को सहन करते हुए मेरी आत्मा ने अनन्त काल बिताया है, अत सयम साधना-आराधना मे जो तनिक दैहिक कष्टो से सामना करना पडेगा। उसमे मेरा परम कल्याण रहा हुआ है। अतः माता-पिताओ ! मै किसी क्षणिक आवेश मे आकर सयम नही ग्रहण कर रहा हूँ किन्तु भवभीति से ही मैने यह निश्चय किया है।'

पुत्र के सुदृढ विचार जानकर माता-पिता ने सहर्ष आज्ञा प्रदान की। दीक्षा उत्सव किया। मेघकुमार शिविकारूढ हुए। सहस्रो नर-नारियो के साथ राजगृह के मुख्य बाजारो मे होती हुई सवारी गुणशीलक उद्यान मे पहुँची। प्रभु का अतिशय देख शिविका का परित्याग किया। मेघकुमार के पीछे माता-पिता परिजन आदि समवमरण मे पहुंचे। भगवान से प्रार्थना की—"भगवत ! उम्बर पुप्प के समान जिनके दर्शन दुर्लभ हे। यह लाल आज जन्म-मरण के दु खो से ऊबकर आपके श्रीचरणो मे भागवती दीक्षा अगीकार करना चाहता है, अत हम आज आपको शिष्य रूप भिक्षा देते है। आप स्वीकार करे।" प्रभु ने उसे ५ महाव्रत दिये।

साधना की प्रथम निशा

दीक्षा की पहली ही रात्रि थी। उन्हे रात भर निद्रा नही आई। मुनि-जीवन समता, साधना और समानता का जीवन है। यहाँ राजकुमार या दरिद्रकुमार का कोई भेद नही है। भेद है दीक्षा के पूर्व और पश्चात् का। पहले के दीक्षित ज्येष्ठ पद पर और पश्चात् के दीक्षित उनमे छोटे (लघु)। मेघ मुनि लघु होने के कारण उनको शय्यास्थान सबके अत मे द्वार के समीप मिला। जो श्रमणो के आने-जाने का बस एक ही मार्ग था। आते-जाते मुनियो मे से किसी के पैर मेघ मुनि के हाथ से टकरा जाते। किसी के पैर पाँव से टकरा जाते। किसी के पैर हाथ की अगुलियो से टकरा जाते। किसी का गच्छक मस्तक पर छू जाता। ऐसी स्थिति होने से मेघमुनि की पलके खुल पडती। आँखो मे नीद आने लगती कि फिर ऐसे निमित्त मिल जाते। मेघ धीरे से "सी-सी" कर उठते। बार-बार पैरो के लगने से शय्या-वस्त्र भी मिट्टी और धूल से भर गये थे। बार-बार ऐसा होने से नीद न आ सकी, सिर भारी हो गया, आँखें लाल हो गई, शरीर शिथिल पड गया। घबडाये हुए मेघमुनि का धैर्य टूटने लगा। सोचा—'श्रमणधर्म मे इतना कष्ट और यह कष्ट जीवन भर तक सहना। मैं ऐसे जीवन को नही सह सकूँगा, जहाँ जीवन भर रात मे कुछ घटे आराम से सोना भी नही मिलता।' मन मे चचलता जगी, अगला जीवन कहाँ किस ढग के बिताना इत्यादि सारी योजना बना ली।

प्रात होते ही चचल मन मेघमुनि प्रभु महावीर के चरणो मे गच्छ, वस्त्र, पात्रादि सौपकर घर जाने की आज्ञा प्राप्त करने को पहुँचे।

प्रभु ने सबोधित करते हुए कहा—"हे मेघ ! तुमने कल साधना के

क्षेत्र मे प्रवेश किया और आज ही पुन पीछे हटने का विचार कर रहे हो। थोडे से कष्ट को देखकर इतना पीछे हट जाना क्षत्रिय वंशोत्पन्न तुम्हारे जैसे मुनि को शोभा नही देता। पशु जीवन मे तुमने कष्टो पर विजय प्राप्त की और आज कायर बनकर, मानव-जीवन को हार रहे हो। तुम अपने पूर्व-जीवन की एक घटना को सुनकर उस पर ध्यान दो।"

मुनि प्रभु के श्रीचरणो में बैठ गए अपना पूर्वभव सुनने को।

प्रभु ने मेघमुनि का पूर्व भव सुनाया -

विन्ध्याचल के गहन जगलो मे सुमेरुप्रभ नाम का एक श्वेत हाथी रहता था, उसके आश्रित पाँचसौ हथिनियाँ थी। एक बार उस बीहड वन मे भयकर आग लगी। अनेको वृक्ष लताएं तो क्या गगनविहारी पक्षी और अनेको पशु भी आग की लपटो मे झुलस कर भस्म हो गये थे। इस सुमेरुप्रभ की कई हथिनियाँ भी उस दावानल मे भस्मीभूत बन गई थी।

इस दृश्य को देखते-देखते सुमेरुप्रभ हस्ति का मन सकल्प-विकल्प मे गोते लगाने लगा। चितन करते ही करते उसे अपने पूर्व-भव की स्मृति जागृत हो गई। पूर्वभव मे अपने साथियो सहित अपने जीवन को जलते हुए देखकर वह दावाग्नि से बचने का उपाय सोचने लगा। वह दावाग्नि शात हुई परन्तु भविष्य मे कभी खतरा न हो ऐसा उसने उपाय सोचा और नदी के किनारे बहुत बडा मडल बनाया अर्थात् लम्बी दूर तक उसने झाड, घास को उखाड कर अपनी निश्चित भूमि की सीमा से बाहर फेंक दिया। कही घास का तिनका भी न रहने दिया। ऐसा करके वह सुख से अपना जीवन यापन करने लगा।

पुन उसी जगल मे आग सुलग उठी। आग से बचने के लिये जग[illegible] के प्राणी दौड-दौडकर उस मडल मे एकत्रित होने लगे। हाथी, सिंह, मृ[illegible] खरगोश, लोमडी, चूहे, बिल्ली आदि वैरभाव को भूलकर अपनी जान बचा[illegible] के लिए एकत्रित हो गये। सुमेरुप्रभ हस्ति अपनी जान बचाने हेतु आया[illegible] मडल बहुत कुछ भर गया था। वह भी किनारे वही शात भाव से खडा ह[illegible] गया। किन्तु अपनी सुविधा के लिये किसी भी प्राणी को सताया नही।

एकाएक सुमेरुप्रभ हस्ति के शरीर मे कही खुजली उभरी। उसने खुजलाने के लिये अपना पाँव ऊपर उठाया, जगह खाली समझ एक खरगोश वहाँ आ गया। पुन पाव रखने के लिए हस्ति ने नीचे देखा कि भयभीत खरगोश मृत्यु से बचने हेतु यहाँ बैठा है। करुणा से उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने अपना पैर नीचे नही रखा, ऊपर मे ही उठाए रहा। इस दशा

मे ही दो-दिन तीन राते बीत गई। तीसरे दिन दावानल शात हुआ, पशु-पक्षी अपने आश्रय की तरह लौट गये। हस्ति भूमि खाली देख पाँव नीचे रखने लगा। इतने समय अधर ऊपर रखने से पैर अकड गया, उसका भारी शरीर सभल न सका। हाथी धडाम से नीचे गिर पडा। तीन दिन का भूखा-प्यासा भारी शरीर वाला सुमेरुप्रभ पुन उठ न सका। परन्तु मन मे अपार शांति का अनुभव कर रहा था कि उसने एक क्षुद्र जीव पर दया की थी।

अहो मेघ मुनि! वह सुमेरुप्रभु हाथी मरकर तुम राजकुमार बने हो। पशु जीवन मे अपार कष्ट सहकर करुणामय जीवन यापन किया और अब मानव जीवन मे थोडे से कष्ट से तुम घबरा रहे हो। विराट् महासागर तुमने भुजाओ से तैर लिया, अब किनारे पर आकर थोडे से पानी मे डूब रहे हो। अज्ञान अवस्था मे जीव कितनी दारुण वेदना भोगता है। स्वार्थ और लोभ के वशीभूत बना प्राणी प्राणो को भी न्यौछावर कर देता है। परन्तु उस कष्ट और सहनशीलता का आध्यात्मिक दृष्टि से क्या महत्व है। अहो मेघ! तुम्हे अब सत्य दृष्टि मिली है, आत्मबोध भी हुआ है, समभावपूर्वक कष्टो को सहनकर जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बनाओ। मन को स्थिर करो और पूर्ण तन्मयता के साथ साधना मे लीन हो जाओ।

प्रभु की अन्तर्प्रेरणामयी वाणी को हृदयगम करके मेघमुनि की आत्म-चेतना जागृत हुई। मेघमुनि का साधना का दीपक जो बुझने वाला था उसमे स्नेह (तेल) का कार्य प्रभु की वाणी ने किया। मुनि सयम मे सलग्न हो गए। उच्चतम परिणामो की धारा से तप सयम की साधना करते हुए आयु का क्षय हो जाने पर प्रथम अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए।

मेघकुमार महामुनि का सविस्तृत विवेचन ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र मे प्राप्त होता है।

नन्दिषेण कुमार की दीक्षा

नरेश श्रेणिक के सुपुत्र नन्दिषेण प्रभु की अमृतमय वाणी श्रवण कर विरक्त बने। माता-पिता से निवेदन किया, काफी सवाद किया। अन्त मे अनुमति प्राप्त कर ली। दीक्षा की तैयारी होने लगी। उस समय एकाएक आकाशवाणी हुई कि 'हे नन्दिषेण! अभी तुम ठहरो। तुम्हारे भोगावली कर्म अवशेष है और वे भी निकाचित हे। उन्हे भोगे बिना तुम्हे छुटकारा नही मिल सकता। तुम्हारा सकल्प अति उत्तम है तदपि तुम उन भोगावली कर्मो की कभी भी उपेक्षा नही कर सकोगे।'

क्षेत्र मे प्रवेश किया और आज ही पुन पीछे हटने का विचार कर रहे हो। थोडे से कष्ट को देखकर इतना पीछे हट जाना क्षत्रिय वंशोत्पन्न तुम्हारे जैसे मुनि को शोभा नही देता। पशु जीवन मे तुमने कष्टो पर विजय प्राप्त की और आज कायर बनकर, मानव-जीवन को हार रहे हो। तुम अपने पूर्व-जीवन की एक घटना को सुनकर उस पर ध्यान दो।"

मुनि प्रभु के श्रीचरणो मे बैठ गए अपना पूर्वभव सुनने को।

प्रभु ने मेघमुनि का पूर्व भव सुनाया -

विन्ध्याचल के गहन जगलो मे सुमेरुप्रभ नाम का एक श्वेत हाथी रहता था, उसके आश्रित पाँचसौ हथिनियाँ थी। एक बार उस बीहड वन मे भयकर आग लगी। अनेको वृक्ष लताए तो क्या गगनविहारी पक्षी और अनेको पशु भी आग की लपटो मे झुलस कर भस्म हो गये थे। इस सुमेरुप्रभ की कई हथिनियाँ भी उस दावानल मे भस्मीभूत बन गई थी।

इस दृश्य को देखते-देखते सुमेरुप्रभ हस्ति का मन सकल्प-विकल्प मे गोते लगाने लगा। चितन करते ही करते उसे अपने पूर्व-भव की स्मृति जागृत हो गई। पूर्वभव मे अपने साथियो सहित अपने जीवन को जलते हुए देखकर वह दावाग्नि से बचने का उपाय सोचने लगा। वह दावाग्नि शात हुई परन्तु भविष्य मे कभी खतरा न हो ऐसा उसने उपाय सोचा और नदी के किनारे बहुत बडा मडल बनाया अर्थात् लम्बी दूर तक उसने झाड, घास को उखाड कर अपनी निश्चित भूमि की सीमा से बाहर फेंक दिया। कही घास का तिनका भी न रहने दिया। ऐसा करके वह सुख से अपना जीवन यापन करने लगा।

पुन उसी जगल मे आग सुलग उठी। आग से बचने के लिये जगल के प्राणी दौड-दौडकर उस मडल मे एकत्रित होने लगे। हाथी, सिंह, मृग, खरगोश, लोमडी, चूहे, बिल्ली आदि वैरभाव को भूलकर अपनी जान बचाने के लिए एकत्रित हो गये। सुमेरुप्रभ हस्ति अपनी जान बचाने हेतु आया। मडल बहुत कुछ भर गया था। वह भी किनारे वही शात भाव से खडा हो गया। किन्तु अपनी सुविधा के लिये किसी भी प्राणी को सताया नही।

एकाएक सुमेरुप्रभ हस्ति के शरीर मे कही खुजली उभरी। उसने खुजलाने के लिये अपना पाव ऊपर उठाया, जगह खाली समझ एक खरगोश वहा आ गया। पुन पाव रखने के लिए हस्ति ने नीचे देखा कि भयभीत खरगोश मृत्यु से बचने हेतु यहां बैठा है। करुणा से उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने अपना पैर नीचे नही रखा, अधर मे ही उठाए रहा। उस दशा

मे ही दो-दिन तीन राते बीत गई। तीसरे दिन दावानल शात हुआ, पशु-पक्षी अपने आश्रय की तरह लौट गये। हस्ति भूमि खाली देख पाँव नीचे रखने लगा। इतने समय अधर ऊपर रखने से पैर अकड गया, उसका भारी शरीर सभल न सका। हाथी धडाम से नीचे गिर पडा। तीन दिन का भूखा-प्यासा भारी शरीर वाला सुमेरुप्रभ पुन उठ न सका। परन्तु मन मे अपार शाति का अनुभव कर रहा था कि उसने एक क्षुद्र जीव पर दया की थी।

अहो मेघ मुनि! वह सुमेरुप्रभ हाथी मरकर तुम राजकुमार बने हो। पशु जीवन मे अपार कष्ट सहकर करुणामय जीवन यापन किया और अब मानव जीवन मे थोडे से कष्ट से तुम घबरा रहे हो। विराट् महासागर तुमने भुजाओ से तैर लिया, अब किनारे पर आकर थोडे मे पानी मे डूब रहे हो। अज्ञान अवस्था मे जीव कितनी दारुण वेदना भोगता है। स्वार्थ और लोभ के वशीभूत बना प्राणी प्राणो को भी न्यौछावर कर देता है। परन्तु उस कष्ट और सहनशीलता का आध्यात्मिक दृष्टि से क्या महत्व है। अहो मेघ! तुम्हे अब सत्य दृष्टि मिली है, आत्मबोध भी हुआ है, समभावपूर्वक कष्टो को सहनकर जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बनाओ। मन को स्थिर करो और पूर्ण तन्मयता के साथ साधना मे लीन हो जाओ।

प्रभु की अन्तर्प्रेरणामयी वाणी को हृदयगम करके मेघमुनि की आत्म-चेतना जागृत हुई। मेघमुनि का साधना का दीपक जो बुझने वाला था उसमे स्नेह (तेल) का कार्य प्रभु की वाणी ने किया। मुनि सयम मे सलग्न हो गए। उच्चतम परिणामो की धारा मे तप सयम की साधना करते हुए आयु का क्षय हो जाने पर प्रथम अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए।

मेघकुमार महामुनि का सविस्तृत विवेचन ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र मे प्राप्त होता है।

नन्दिषेण कुमार की दीक्षा

नरेश श्रेणिक के सुपुत्र नन्दिषेण प्रभु की अमृतमय वाणी श्रवण कर विरक्त बने। माता-पिता से निवेदन किया, काफी सवाद किया। अन्त मे अनुमति प्राप्त कर ली। दीक्षा की तैयारी होने लगी। उस समय एकाएक आकाशवाणी हुई कि 'हे नन्दिषेण! अभी तुम ठहरो। तुम्हारे भोगावली कर्म अवशेष है और वे भी निकाचित है। उन्हे भोगे बिना तुम्हे छुटकारा नही मिल सकता। तुम्हारा सकल्प अति उत्तम है तदपि तुम उन भोगावली कर्मो की कभी भी उपेक्षा नही कर सकोगे।'

देववाणी-आकाशवाणी श्रवण कर कुमार मन ही मन हँसने लगा। सोचा—मुझे कौन रोक सकता है। मेरी मनोवृत्ति सुदृढ है तो किसकी हिम्मत है कि वह मुझे साधना के पथ से विचलित कर सके। मै साधु बनते ही घोरातिघोर कठोरतम तपश्चर्या करूँगा, फिर तपाग्नि मे घास की तरह कर्म जलकर समाप्त हो ही जाएँगे। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग मे सदा सलग्न रहूँगा जिससे किसी भी प्रकार से अनिष्ट की आशका ही नही रह सकेगी।

थोडी ही देर के बाद पुन नभोवाणी हुई—अहो नन्दिषेण ! ठहरो, ठहरो। अभी तुम मेरी वाणी को असत्य बनाने की चेष्टा तो कर रहे हो किन्तु मेरी भविष्यवाणी कभी भी असत्य नही हो सकती। क्योकि साधना के द्वारा निधत्त कर्म अन्य रूप से भोगकर उनसे मुक्ति पा सकते हो किन्तु तुम्हारे भोगावली कर्म तो निकाचित है, उन्हे भोगे बिना छुटकारा नही मिल सकता।

दृढप्रतिज्ञ नन्दिषेणकुमार ने देववाणी पर फिर भी ध्यान नही दिया और श्रमण भगवत महावीर प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचकर श्रमण बन गये। देववाणी को निष्फल सिद्ध करने के लिये महामुनि नन्दिषेण तप मे सलग्न हो गये। अनिष्ट की भावना मानव को सदा सतर्क और सावधान रखती है। घोरतम तप करते हुए दिव्य भव्य देह अत्यन्त कृश और कांति-रहित बन गयी, केवल हड्डियो एव नसो का ककाल-शरीर का ढाचा मात्र ही रह गया। दीर्घ तप के बाद वस्ती मे गोचरी हेतु जाते, पुन शीघ्र ही लौटकर आत्म-चिंतन मे तल्लीन हो जाते। उग्र तप-जप के कारण मुनि नन्दिषेण को अनेको चमत्कारिक लब्धियाँ प्राप्त हो गई थी।

भावीयोग—जो होनहार होता है वह होकर ही रहता है। सयोग वश तप के पारणे के दिन मुनि एक दिन वेश्या के घर गोचरी हेतु पहुँचे। मुनि ने ज्यो ही धर्मलाभ की बात कही त्यो ही गणिका ने मधुर-मुस्कान के साथ कहा—महात्माजी ! यहाँ धर्मलाभ की आवश्यकता नही। यहा तो आवश्यकता है अर्थलाभ की। जिसके पास सपत्ति है, वैभव है उसे यहाँ सब कुछ मिल सकता है। दरिद्र-दीन-हीन-अनाथ को यहाँ कोई स्थान नही है, ऐसा कहते हुए कृशकाय मुनि को देख वह खिल-खिलाकर हँस पडी। वेश्या की हँसी ने मुनि के मन मे सोये अहकार को जगा दिया। सोचा—इसने मुझे अभी तक पहचाना नही है। यह मेरे दिव्य तप के सामर्थ्य को नही

जानती है। इस प्रसग पर मुझे कुछ अपना परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा सोच मुनि ने भूमि पर पडे तिनके को उठाया और ज्यो ही तोडा त्यो ही स्वर्णमुद्राएँ बरस पडी। 'लो यह अर्थलाभ' इतना कहकर मुनि वेश्या के घर से बाहर निकल गये।

यह आश्चर्य देख विस्मित वेश्या शीघ्र ही सभल कर मुनि के पीछे पीछे दौडी और मार्ग रोकते हुए बोली "नाथ! इस अबला को छोड कर आप कहाँ जा रहे हो?" अनेको हाव-भाव और कटाक्ष करने लगी।

यह है राग और विराग का सघर्ष। घोर तपस्वी मुनि अपनी भावना को और उस आकाशवाणी को भूल गये और वेश्या के द्वारा रखे गये प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मुनि के मन मे विकार भावना उत्पन्न होने लगी। यह है 'मन के हारे हार'। छोटा सिंह भी इतना बलवान होता है कि अपने से कई गुने मोटे और भारी हाथी को भी मार सकता है फिर भी साल मे एक बार वह भी विषयो मे आसक्त हो जाता है और कच्चे मन वाला कबूतर ककर पत्थर को चुगने वाला सदा वासनाओ मे मुग्ध रहता है—

सिंहोबली द्विरदशूकर - मासभोजी।
सवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम्॥
पारापत खर - शिलाकणमात्रभोजी।
कामी भवत्यनुदिन ननु कोऽत्र हेतु॥

कल के योगी नन्दिषेण मुनि आज के भोगी बन गये। यह है निकाचित कर्मो की माया-विडम्बना। घोरतम साधक को साधना से विचलित कर दिया। वे उल्टे पैर वेश्या के भवन मे प्रवेश कर गए। मुनिवेश को त्याग, गृहस्थ वेश-भूषा को धारण कर लिया किन्तु अन्तर्जागृति ने एक चेतना दी और उस समय नन्दिषेण ने एक घोर-कठिन प्रतिज्ञा धारण की कि प्रतिदिन दस व्यक्तियो को प्रतिबोध देकर दीक्षा के लिये श्रमण भगवत महावीर प्रभु के समवसरण में भेजूंगा तब भोजन करूँगा जिस दिन यह कार्य सपन्न न होगा उसी दिन मैं स्वय ही पुन दीक्षा अगीकार कर लूंगा।

अपनी ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा का सम्यग् पालन करते, दस व्यक्तियो को प्रतिदिन प्रतिबोध देकर प्रभु महावीर के समवसरण मे भेजते और बाद मे स्वय भोजन करते थे। एक दिन का प्रसग—पुन जागृति का निमित्त आया। नव (९) व्यक्ति प्रतिबोध पाकर प्रभु के समवसरण मे चले

गये किंतु दसवे व्यक्ति को काफी समझाने पर भी वह तैयार नही हुआ। भोजन का समय हो गया था। वेश्या बार-बार बुलावा भेज रही थी किंतु प्रतिज्ञा पूर्ण नही होने से नन्दिषेण भोजनार्थ नही गये। प्रतीक्षा करते-करते वेश्या आतुर हो उठी। वह स्वय नन्दिषेणजी के पास आई और झुझलाकर बोली—भोजन ठण्डा हो रहा है और आप इतना विलंब कर रहे है।

नन्दिषेण ने कहा—नव लघुकर्मी तो जग गये, किंतु मेरी प्रतिज्ञा मे एक व्यक्ति को प्रतिबोध देना और आवश्यक है अत मै इसको मार्ग बता रहा हूँ। इसे समझाये बिना मै भोजन कैसे कर सकता हूँ? वेश्या झुझला गई। तपाक से बोल गई कि "ऐसी बात है तो आप स्वय ही दसवे क्यो नही बन जाते हो?" नन्दिषेण को वेश्या के वचन चुभ गये। "लो मैं यह चला" कहकर चल दिए। वेश्या देखती ही रह गई। नन्दिषेण प्रभु के समवसरण मे पहुँचे। प्रभु के पास अपने कृतदोषो की, अतीत मे की गई भूलो की आलोचना कर सयम ग्रहण किया। उग्र तप-जप की साधना आराधना करके आयु पूर्ण कर स्वर्ग मे गये।

प्रभु महावीर ने इस वर्षावास मे और भी अनेको प्राणियो को प्रतिबोध देकर धर्मपथ पर अग्रसर किया।

विदेह की ओर प्रस्थान

तेरहवाँ वर्षावास पूर्ण कर प्रभु ने अपने शिष्य मण्डल सहित विदेह की तरफ विहार किया। अनेक ग्राम नगरो मे विचरण करते हुए धर्म का प्रचार करते हुए ब्राह्मणकुण्ड ग्राम और क्षत्रियकुण्ड ग्राम के बीच मे बहुशाल नामक बगीचे मे पधारे। ये शुभ सदेश दोनो ही तरफ बिजली के वेग की भाँति फैल गये। हजारो नर-नारी उमड पड़े, प्रवचन का लाभ लेने।

प्रभु ने धर्मोपदेश दिया। आगार-अनगार धर्म का स्वरूप, सम्यग्दर्शन का स्वरूप सुनकर श्रोताजन आनन्द विभोर हो गये। अनेको ने सर्वविरति व्रत अगीकार किये। कइयो ने देशविरति व्रत धारण किये। कइयो ने निर्ग्रन्थो के प्रवचनो पर श्रद्धा प्राप्त की।

ऋषभदत्त और देवानन्दा की दीक्षा

ब्राह्मणकुण्ड ग्राम मे ऋषभदत्त ब्राह्मण रहता था। वह ४ वेद का ज्ञाता होते हुए भी श्रमणोपासक था। श्रमण भगवत महावीर प्रभु के बहुशाल उद्यान मे पधारने के समाचार पाकर अपनी पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी के

साथ रथ पर आरूढ हो वदन करने को गया। समवसरण के नजदीक पहुँच कर रथ को छोड़ दिया और पाँच अभिगम (१ सचित्त द्रव्य का त्याग २ अचित्त द्रव्य वस्त्रादि को सुव्यवस्थित किया, ३ एक शाटिक वस्त्र का उत्तरासन लगाया ४ दोनों हाथ जोडे ५ मन को एकाग्र यानि प्रभु के ध्यान मे लगा दिया) का साचवन किया। इस विधि से समवसरण मे पहुँचकर प्रभु को वदन नमस्कार किया और यथोचित स्थान पर बैठ गया। देवानन्दा को भगवान के दर्शन होने पर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कहा भी है—

मूल—

तए ण सा देवाणदा माहणी आगयपण्हया पप्फुयलोयणा सवरियवलियवाहा, कचुयपरिक्खित्तिया धाराहत-कलंवपुप्फगंपिव-समुस्स-सियरोम कूवा, समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी चिट्ठई ॥१२॥

—भगवतीसूत्र, श० ६, उ० ३३

मूलार्थ—

तव देवानन्दा ब्राह्मणी को स्नेह भाव की अभिवृद्धि होने से स्तन मे पय (दूध) आया, नेत्र प्रफुल्लित होकर पानी से भर गये। अधिक हर्ष होने से शरीर स्थूल हो गया। हाथ के वलये (कंकन) तग हो गये, कचुकी कसी टूट गई। मेघधारा से हणाये हुए कदम्ब वृक्ष के समान रोम हो गये और वह श्रमण भगवत महावीर को मेषोन्मेष देखने लगी।

देवानन्दा के शरीर मे इस प्रकार का परिवर्तन देखकर गणधर गौतम ने प्रभु को नमस्कार कर पूछा—भगवत! आपको देखकर देवानन्दा इतनी रोमाञ्चित क्यो हो गई है? उसके स्तनो से दूध की धारा क्यो निकली?

प्रभु महावीर ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"हे गौतम! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं उसका पुत्र हूँ।"

गर्भ अपहरण की सारी घटना श्रमण भगवत ने उस समवसरण के बीच कही।

इतने समय तक प्रभु के गर्भ परिवर्तन की बात किसी को मालूम नहीं थी किन्तु इस वक्त गौतम के पूछने पर जो प्रभु ने फरमाया उसे देवानन्दा

वत्सदेश में विहार

वैशाली का वर्षावास पूर्ण कर प्रभु ने वत्सदेश की तरफ विहार किया। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य में प्रभु पधारे। सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, वैशाली के राजा चेटक का दौहित्र, मृगावती महारानी का आत्मज, जयन्ती श्राविका का भतीजा राजा उदयन कौशाम्बी का शासक था।

राजा उदयन के पास हाथियो की विराट सेना थी। स्वय राजा वीणा बजाकर हाथियो को पकडा करता था। विपाकसूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध अध्ययन ५ मे इन्हे हिमालय की उपमा दी गई है। जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य मे उसका जीवन कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है अर्थात् राजा उदयन एक ऐतिहासिक व्यक्ति है।

प्रभु महावीर के पधारने का शुभ सदेश प्राप्त हुआ तो राजा उदयन अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट हुए। माता मृगावती, बूआ जयन्ति श्रमणोपासिका और उसके पुत्र सहित राजा उदयन सवारी सहित प्रभु के दर्शनार्थ समवसरण मे गये। प्रभु ने धर्मोपदेश फरमाया।

जयन्ती के प्रश्न

भगवतीसूत्र, शतक १२, उद्देशक २ के अनुसार जयन्ती साधुओं के लिये प्रथम शय्यातर के रूप मे प्रसिद्ध थी। आगत श्रमण साधु सर्वप्रथम जयन्ती के यहाँ वसति की याचना करते थे। जयन्ती श्राविका बडी ज्ञान निष्ठ थी। तत्त्व के प्रति गाढ रुचि रखने वाली थी। यही कारण है कि उसने प्रभु महावीर की सेवा मे अपने प्रश्नो को रख कर समाधान प्राप्त किया।

प्रश्न १—भते ! जीव गुरुत्व को कैसे प्राप्त होता है ?

प्रभु महावीर—अहो जयन्ती ! प्राणातिपात, मृषावादादि अठारह पाप (दोष) है, जिनके सेवन से जीव गुरुत्व को प्राप्त होता है।

प्रश्न २ – भगवन् ! आत्मा लघुत्व को कैसे प्राप्त होता है ?

प्रभु महावीर—प्राणातिपातादि का आसेवन न करने से आत्मा लघुत्व को प्राप्त होता है। १८ पापो की प्रवृत्ति से आत्मा जिस प्रकार ससार को बढाता है, प्रलम्ब करता है, ससार मे परिभ्रमण करता है उसी प्रकार १८ पाप की निवृत्ति से संसार को घटाता है, ह्रस्व करता है और उसका उल्लघन भी कर लेता है अर्थात् मोक्ष भी पा लेता है।

प्रश्न ३—भगवन् ! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से ?

प्रभु महावीर—अहो जयन्ती ! स्वभाव से होती है, परिणाम से नहीं।

प्रश्न ४—भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे ?

महावीर—हाँ, जो भवसिद्धिक हैं, वे सभी आत्माएँ मोक्ष प्राप्त करेंगी।

प्रश्न ५—भगवन् ! यदि सभी भव-सिद्धिक जीव मोक्ष चले जाएँगे तो फिर क्या ससार उनसे रहित हो जायगा ?

महावीर—इस प्रकार नही है। सादि तथा अनन्त व दोनो ओर से परिमित तथा दूसरी श्रेणियो से परिवृत्त सर्वाकाश की श्रेणी में से एक-एक परमाणु पुद्गल प्रतिसमय निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो जायँ फिर भी वह श्रेणी रिक्त नही होती। उसी प्रकार भव-सिद्धिक जीवो के मुक्त होते रहने पर भी यह ससार उनसे रहित नही होगा।

प्रश्न ६—भन्ते ! जीव सोता हुआ अच्छा है या जागता हुआ ?

महावीर—जयन्ती ! कितने ही जीवो का सोना अच्छा है। जो जीव अधार्मिक है, अधर्म का अनुसरण करते हैं, जिनको अधर्म ही प्रिय है जो अधर्म की ही व्याख्या करते हैं, जो अधर्म मे ही आसक्त है, अधर्म मे ही हर्षित हैं और अधर्म से ही अपनी आजीविका चलाते हैं उनका सोना अच्छा है। ऐसे जीव जब तक सोते रहते है तो प्राण-भूत-जीव-सत्त्व के शोक और परिताप का कारण नही बनते। अत ऐसे जीवो का सोना ही अच्छा है।

हे जयन्ती ! जो जीव धार्मिक, धर्मानुरागी, धर्मप्रिय, धर्म व्याख्याता, धर्म मे हर्षित और धर्मजीवी है उनका जगना ही अच्छा है। धर्मी जीव अपनी जागृति मे सारे प्राणियो के अदुख और अपरिताप के कार्य करते है तथा अन्य जीवो को धर्म मे जोडने मे निमित्त बनते है। इसलिए धर्मी का जागना अच्छा है।

प्रश्न ७ जीवो का दुर्बल होना अच्छा या सबल ?

महावीर—जो जीव अधर्मी है, अधर्म से ही आजीविकोपार्जन करते

यव्वा, ण उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे, णितिए, सासए, समेच्च लोय खेयन्नेहि पवेतिते ।

—आचारागसूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अ० ४

मूलार्थ—

अतीतकाल मे जो अनन्त तीर्थ कर हुए है, वर्तमान काल मे तीर्थ कर है और आगामी काल मे अनन्त तीर्थ कर होगे । सब अरिहत भगवत ऐसा कहते है, ऐसा बोलते है, ऐसी प्ररूपणा करते है कि सर्व प्राण-भूत-जीव और सत्त्व को मारना नही, ताडना नही, घात करना नही, परिताप उपजाना नही, किलामना देनी नही तथा शरीर से प्राणो का व्यवच्छेद करना नहीं । यही धर्म शुद्ध है, सनातन है और शाश्वत है ।

१ गौतम का समवसरण मे प्रवेश (आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व)

इन्द्रभूति उस युग के माने हुए विद्वान थे । जीवन के कण कण मे वैदिक धर्म के सस्कार थे । न्याय, दर्शन, तर्क, भाषा, ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, आयुर्वेद तथा चारो वेदो के विद्वान् थे । किसी भी सिद्धान्त को समझने की पूर्ण अभिलाषा थी । आर्य सोमिल की प्रेरणा से अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ समवसरण मे पहुँचे । इन्द्रभूति को आते हुए देखकर देवता एव मानव समाज ने उनका उचित स्वागत किया, सत्कार किया । समवसरण का प्रशात वातावरण देखकर इन्द्रभूति आनन्द विभोर हो गये । स्वर्गलोक के इन्द्र ने आने वाले पडित समाज का भाव भीना स्वागत किया । कल्पसूत्र तथा आवश्यकचूर्णिकारो का मत है कि उस समय भगवान महावीर की आयु ८२ वर्ष के लगभग थी और गौतम इन्द्रभूति की उम्र ५० वर्ष की थी । हो सकता है महावीर को देखकर गौतम ने सोचा होगा मै इनको बहुत शीघ्र चुटकियो मे जीत लूँगा । समवसरण मेआकर ज्यो ही खडे हुए चारो तरफ का विरोध रहित जाति स्वभाव से विपरीत वातावरण देखकर तथा प्रभु महावीर की देहकाति-शोभा को देखकर प्रभावित हो गये । इतने प्रभावित हुए कि उनका मनोमालिन्य धुल-सा गया और समर्पण की भावना यहाँ तक हुई कि मै इनके चरणो मे अर्पित हो जाऊँ । इन्द्रभूति के मन मे तत्व समय मे एक गूढ प्रश्न चल रहा था कि 'आत्मा का अस्तित्व है या नही ?'

प्रभु महावीर ने ज्यो ही उनको गौतम कह कर सबोधित किया त्यो ही वे चकित से रह गये, परन्तु सोचा 'दिनकर को सब जाने जगत मे, त्यो मुझ नाम पहचाने' मेरी विश्वव्यापिनी प्रसिद्धि के कारण इन्हे मेरे नाम का

पता चल गया होगा, परन्तु जब तक मेरे अन्त:करण के संशय का उच्छेद नही कर देगे तब तक मैं इन्हे सर्वज्ञ कदापि नही मान सकता ।

गौतम के सदेह की तरफ सकेत करते हुए प्रभु महावीर ने फरमाया —हे गौतम ! तेरे अन्तर्मानस मे इस प्रकार का संशय है कि आत्मा का अस्तित्व है तो घट-पटादि वस्तुओ की तरह प्रत्यक्ष दिखाई देना चाहिये । किंतु वह तो आकाश-पुष्प की तरह दिखाई नही देता । अत. उसका अस्तित्व कैसे स्वीकार किया जा सकता है ।

अनुमान से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नही हो सकता । जैसे किसी ने पहले कभी अग्नि देखी है तो फिर कभी दूर से धुएँ को देखकर अग्नि का अनुमान लगाया जाता है कि यत्र-यत्र धूमस्तत्र-तत्र वह्नि. किन्तु आत्मा का कोई चिह्न नही जिसके आधार से फिर से प्रत्यक्ष होने पर उस सम्बन्ध का स्मरण हो सके और उससे आत्मा का अनुमान किया जा सके ।

आगम प्रमाण से भी आत्मा को सिद्ध नही कर सकते, क्योंकि जो प्रत्यक्ष ही नही, वह आगम का विषय कैसे हो सकता है ? आत्मा को किसी ने प्रत्यक्ष देखा हो, ऐसा कोई व्यक्ति भी तो नही मिलता जिसके वचनो को प्रामाणिक मानकर आत्मा का अस्तित्व सिद्ध कर सकें । दूसरी बात यह है कि आगम प्रमाण मानने पर भी आत्मा की सिद्धि नही हो सकती क्योंकि विभिन्न दर्शनो के दर्शनशास्त्र (आगम) अनेक हैं और आत्म विषय पर परस्पर विरोधी तत्वो को बतलाते हैं । इस प्रकार गौतम ! तुम्हारे मन मे विचार चल रहा है ।

समाधान करते हुए प्रभु महावीर ने फरमाया—अहो गौतम ! तुम्हारा यह सदेह सम्यक् नही है क्योंकि जीव तुम्हे प्रत्यक्ष है ही । तुम खुद ही प्रत्यक्ष जीव रूप मे खड़े हो । जीव को समझने के लिये सरलतम मार्ग है कि मैं खा रहा हूँ, मैं पी रहा हूँ, मैं चल रहा हूँ मैं यह कार्य कल करूँगा, मैं तुम्हारे घर कल आया था इत्यादि प्रयोगो मे जो 'मैं' शब्द आया है, वह 'मैं' ही तो आत्मा है । अत आत्मा प्रत्यक्ष ही है । 'मैं' की अनुभूति करने वाला आत्मा है, 'मैं' रूप जो ज्ञान है वह आत्म-प्रत्यक्ष ही है । आत्मा है या नही, यह सशयकर्त्ता भी तो आत्मा ही है । आत्मा का यह प्रत्यक्ष स्पष्ट है कि उसको सुख-दुःख का अनुभव होता है । जैसे घडे का आकार प्रत्यक्ष है वैसे ही बाल-वृद्धपने का अनुभव करने वाला आत्मा भी प्रत्यक्ष है । इस तरह पदार्थ का ज्ञान तथा आत्मा का ज्ञान किया जा सकता है ।

भद्रा ने मुख्य मुनीम को बुलाकर कहा—"इन व्यापारियो को १६ कम्बलो का जितना भी मूल्य हो चुका दिया जाय और इनके घर पहुँचा दिया जाय ताकि इनको ले जाने का वजन उठाना न पड़े।"

इतना कहकर सेठानी दूसरे कार्य मे लग गई।

मुनीम ने भण्डारी को आदेश देते हुए कहा कि २० लाख रुपये चुका दिये जायँ। भण्डारी के आदेशानुसार कम्बलो की कीमत चुका दी गई। व्यापारी हर्षविभोर हो गये। उनके आश्चर्य का पार न रहा। बाहर निकलते निकलते कहने लगे—अरे भाई ! भला हो इन दासियो का जो हमको यहाँ पर लाई।

दूसरे दिन चेलना महारानी ने साग्रह निवेदन किया कि स्वामी अधिक न खरीद सके तदपि एक कम्बल तो मेरे लिये खरीदना ही होगा। चेलना के अति आग्रह को श्रेणिक नरेश टाल न सके। प्रधान अभयकुमार ने व्यापारियो को बुलवाने हेतु अनुचरो को भेज दिया। अनुचरो के साथ व्यापारी आये। व्यापारी बोले—महाराज ! जय हो। विजय हो। राजन् ! हमारे सोलह ही कम्बल आपके नगर मे एक ही घर मे बिक चुके हैं। साश्चर्य नरेश ने सारी स्थिति पूछी, आश्चर्य का पार न रहा। नगर नरेश होते हुए भी मैंने महारानी के आग्रह को भी ठुकरा दिया। मैं एक कम्बल भी नही खरीद सका। धन्य है उस नारी को कि एक साथ सोलह बेशकीमती कम्बल खरीद लिए। मेरी नगरी की शोभा उसने रखी। वरना माल न बिकने पर ये व्यापारी जहाँ भी जाते मेरी नगरी की निन्दा ही करते।

अभयकुमार भद्रा सेठानी की हवेली पहुँचे। बोले—महारानीजी को एक रत्नकबल की आवश्यकता है। व्यापारियो के द्वारा ज्ञात हुआ कि सोलह ही कबल आपने खरीद लिए है अत आप कीमत लेकर एक कम्बल महारानीजी के लिये दे दीजिए। भद्रा ने स्वागत करते हुए कहा कि मैंने एक-एक रत्नकम्बल के दो-दो टुकडे कर ३२ ही बहूरानियो को दे दिये हैं। अभयकुमार बोले—तो आप दो टुकडे मँगवा लीजिये। महारानी चेलना की इच्छा को तो पूर्ण करना ही होगा।

दासियो द्वारा बहूरानियो से पुछवाया तो ज्ञात हुआ कि सभी बहूरानियो ने अपने पादप्रोच्छन बनवा लिए है।

भद्रा सेठानी बहुमूल्य भेंट लेकर अभयकुमार प्रधान के साथ राजसभा मे आई। उपहार भेंट करते हुए कहा—"नरेश ! आप मन मे बुरा न मानें। शालिभद्र और उसकी पत्नियाँ देवदूष्य वस्त्र ही पहनती हैं।

शालिभद्र के पिता महावीर प्रभु का उपदेश सुन त्यागी बने और संयम की साधना-आराधना कर स्वर्ग मे गये हैं। पुत्र के प्रति उनकी ममता है, मोह-अनुराग है, अतः प्रतिदिन तेंतीस पेटियां वस्त्राभूषण से सजाकर शालिभद्र के शयन कक्ष मे पहुँचाते हैं। रत्नकम्बल का स्पर्श बहुओं को कठोर प्रतीत हुआ उन्होंने उनके पादप्रोच्छन बना लिये हैं।

भद्रा की सारी बाते सुन नरेश और सभासद आश्चर्यान्वित हो गये।

लोकप्रसिद्ध धारणा यह है कि रत्नकम्बल पांव पोंछकर चौक के कोने मे डाल दिये गये, महतरानी आई, झाडू निकालते समय रत्नकम्बलो को देख हर्षित हुई। एक कम्बल स्वय ने धारण कर लिया तथा अन्य कबल सुव्यवस्थित कर लिए। उसी वेष मे महारानी चेलना के महलो के चौक मे झाडू लगाने गई। झरोखे से महारानी चेलना ने देखा, कारण पूछा तो बताया कि शालिभद्र की हवेली के चौक की सफाई करते हुए मुझे प्राप्त हुए हैं। ये एक नही, बत्तीस टुकडे हैं। सारी बाते सुनकर महारानी ने दिल मे सोचा —नगरनारियो को तो रत्नकम्बल नसीब है और मैं राजरानी होते हुए भी नरेश ने मेरे लिये एक रत्नकम्बल भी न खरीदा। चेलना ने सारी बातें नरेश को कही। स्वय नरेश अभयकुमार सहित भद्रा के घर गए।

भद्रा ने आमन्त्रण दिया नरेश को कि आप मेरी झोपडी पावन करने की कृपा करे। महाराज श्रेणिक शालिभद्र को देखना चाहते ही थे। उन्होंने सहर्ष निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। यथासमय महाराज श्रेणिक अभय कुमार सहित भद्रा के घर पहुँचे। भद्रा ने भावभीना स्वागत किया।

लोकप्रसिद्ध कथानक है कि महाराज श्रेणिक विचक्षण होते हुए भी आगन की दीप्ति से चकाचौंध से हो गये। उन्हे फर्श के बजाय पानी होने का भ्रम हुआ। अपनी अंगूठी जमीन पर डाली कि पानी कितना गहरा है। आगन का तो निर्णय हो गया कि यहा पानी नही है किन्तु अगूठी ढूढने हेतु इधर-उधर निगाह डाली। स्फटिक मणि के आंगन मे अंगूठी की अनेक परछाइयां दिखाई दे रही थी। श्रेणिक सम्भ्रमित हो गए। वे यह निश्चय नही कर सके कि उनकी अंगूठी किस स्थान पर है। श्रेणिक की यह दशा देखकर भद्रा ने उनसे भी अधिक कीमती अगूठियो का थाल भरकर हाजिर कर दिया। उन अंगूठियो को देखकर राजा के हर्ष का पार न रहा—मेरे राज्य मे प्रजा कितनी संपन्न है और सुखी है। यदि ऐसे सपन्न श्रीमन्त न होते तो मेरी नगरी की शोभा किस प्रकार रहती। व्यापारियो की आज्ञा कौन सफल करता।

श्रेणिक का आसन चौथी मजिल मे सजाया गया था। अभयकुमार भी वही बैठ गये। भवन की दिव्य दीप्ति देख कर नरेश सोचने लगे—भवन इतने भव्य है तो इस स्वर्गीय सुख को भोगने वाला शालिभद्र कैसा होगा। भद्रा सातवी मजिल मे पहुँची, बोली—"लाल! नीचे आओ अपने घर श्रेणिक आया है।"

"माताजी आप घर की मालकिन है। श्रेणिक का जो भी मूल्य हो आप दे दीजिये और खरीद लीजिये। मुझे नीचे आने की क्या आवश्यकता है?"

"बेटा! तुम नही समझे। श्रेणिक कोई खरीदने की वस्तु नही है। श्रेणिक तो अपने नरेश है, नाथ है, मालिक है। वे बडी महरबानी करके, महती कृपा करके अपने यहाँ आये है। तुम नीचे चलकर उन्हे नमस्कार करो।"

'नाथ' शब्द सुनते ही शालिभद्र के हृदय में एक गहरी चोट-सी लगी, सोचा—'क्या मैं अपना नाथ नही हूँ? क्या मेरा भी कोई अन्य मालिक है? यदि ऐसा है तो मेरी मान्यता गलत हो गई क्योकि मैं अपने आपको मालिक मानता हूँ। सबसे ऊँचा मैं ही हूँ किन्तु आज माताजी के वचन से यह सिद्ध हो रहा है कि मै तो पराधीन हूँ, मेरे तो मालिक है, नाथ है और मैं अनुचर हूं। तो जरूर मेरी करणी अधूरी है। अब मुझे ऐसी साधना करनी चाहिये कि जिससे मेरे ऊपर कोई नाथ न रहे, मैं सबका अधिपति बन सकूं। पराधीनता के सुख को मैं सुख समझ कर रहा हूँ, यह मेरी बहुत बडी भूल है। अभी तो मुझे माताजी की आज्ञा के अनुसार नीचे जाकर नरेश को नमस्कार करना चाहिये।'

माता की आज्ञा का परिपालन करने के लिये शालिभद्र सातवी मजिल से नीचे उतरे। उनके शरीर की दिव्य दीप्ति, सुकुमारता, भव्य ललाट, दीर्घ भुजा, विशाल सीना देख महाराज श्रेणिक अवाक् से रह गये। ज्यो ही नमस्कार करने के लिये नजदीक आये कि महाराज श्रेणिक ने सस्नेह उन्हे गोद मे बैठा लिया। शालिभद्र गुलाब के फूल की तरह सुकोमल, नवनीत से कोमल थे। नरेश के शरीर की उष्मा मे उनके सम्पूर्ण शरीर से पसीना बहने लगा। आकुलता मे घबराने लगे। यह दृश्य देखकर राजा स्वय समझ गये, अपना परिचय दिया। समीप के आसन पर बैठे। महाराज अपने राजमहल मे चले गये। शालिभद्र पुन सातवी मजिल पर चढ गये।

परन्तु मन मे 'नाथ' शब्द शल्य की भाँति चुभने लगा। दिल-दिमाग में विचित्र उथल-पुथल होने लगी। कोई समाधान हृदय मे नहीं पा रहे थे। सतर्क सावधानी से सोचने लगे कि इसका समाधान किस प्रकार होगा।

धन्ना-शालिभद्र की दीक्षा

इसी उधेड-बुन मे समय चल रहा था कि उन्हें अनुचर द्वारा ज्ञात हुआ कि धर्मघोष मुनि उद्यान मे पधारे है। प्रचलित प्रणाली के अनुसार भगवान महावीर स्वामी पधारे। खैर, कोई भी पधारे हों किन्तु उन्हे 'नाथ' शब्द का समाधान पाने का मार्ग मिल गया। रथ मे बैठ त्यागियो के श्रीचरणो मे पहुँचे। धर्मोपदेश सुना, भोगो मे विरक्ति हुई। नाथ-अनाथ का मर्म समझा। मुनि बनने का दृढ सकल्प किया। घर आकर माता से सानुनय विनय किया। अपनी भावना व्यक्त की। मुनि बनने की बात पुत्र के मुँह से सुनने पर माता भद्रा के हृदय पर वज्रघात-सा लगा। बोली—"लाल! तुम सुकुमार हो, संयम की साधना घोर साधना है। यह तुम्हारे से कैसे होगा? फिर भी मेरा परामर्श है कि यदि साधु बनना है तो धीरे-धीरे त्याग-तप-सयम का अभ्यास करो।"

पुत्र का बढता हुआ वैराग्य देखकर माता ने मध्यम मार्ग अपनाया। बत्तीस ही पत्नियो को मालूम हुआ तो उन्होने समझाने का प्रबल किया। प्रतिदिन एक-एक पत्नी को धर्म का स्वरूप समझाकर उनका परित्याग करने लगे। प्रतिदिन एक-एक पत्नी को समझाने की चर्चा सारे नगर मे फैल गई।

शालिभद्र की बहिन सुभद्रा का पाणिग्रहण राजगृह के श्रीमन्त धन्ना सेठ के साथ हुआ था। सुभद्रा के अलावा अन्य सात सेठानियाँ और भी थी। बिना पख के उडने वाली बात हवा की भाति द्रुतगति से सुभद्रा के कानो मे भी पहुँची कि भैया एक-एक पत्नी को प्रतिदिन समझाकर त्याग के मार्ग पर कदम बढाएगा।

एक दिन धन्ना स्नानार्थ बैठे थे। सेठानियाँ अपनी-अपनी अवस्था अनुसार सेवा में खडी थी। सुभद्रा को अपने भाई की स्मृति हो आई। हृदय मे दुःख का सागर भर गया, वह पानी हृदय मे न समा सका, आँखो से आँसू के रूप छलक पडा। धन्ना की पीठ पर गर्म-गर्म पानी की बूँदे गिरी। उन्होने जरा मुड कर ऊपर की तरफ देखा। सुभद्रा के अश्रुपूरित नयन देख साश्चर्य धन्नाजी बोले—"इस आमोद-प्रमोद के समय में तुम्हारी आँखो से

सत्रहवाँ वर्षावास : वाणिज्यग्राम

राजगृह का वर्षावास पूर्ण कर महावीर भगवान ने चपानगरी की तरफ विहार किया। चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र यक्ष के यक्षायतन मे प्रभु विराजे। दत्त नाम का राजा वहाँ राज्य करता था। महारानी रक्तवती का पुत्र महाचन्द्र राजकुमार युवराज भी था। प्रभु का पदार्पण सुन राजा वन्दनार्थ पहुँचा।

महाचन्द्र राजकुमार ने श्रावकव्रत अंगीकार किये। पुन' प्रभु चम्पा पधारे तब युवराज महाचन्द्र माता-पिता की अनुमति ग्रहण कर दीक्षित हुए। ग्यारह अग का अध्ययन किया। एक मास के अनशनपूर्वक सौधर्म कल्प मे देव बने।

वीतभय नगर की ओर

सिंधु-सौवीर देश की राजधानी वीतभय नगरी थी। सोलह बडे देश, तीन सौ तिरेसठ नगर और आगर उसके अधीनस्थ थे। राजा उदायन था। चण्डप्रद्योत आदि दस मुकुटधारी महापराक्रमी राजा उसके अधीन थे। वैशाली नरेश चेटक की पुत्री प्रभावती महारानी तथा अभीचिकुमार उनका पुत्र था और राजा उदायन की बहन का पुत्र केशी भानेज था। प्रभावती निर्ग्रन्थ धर्म को मानने वाली श्राविका थी किन्तु राजा उदायन तापसो का भक्त था। प्रभावती मृत्यु प्राप्त कर देव बनी। उसने पुन. राजा उदायन को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाया।

प्रचलित धारणा यह है कि चेडा (चेटक) राजा के ७ पुत्रियां थी और सातो उसी भव से मोक्ष गई। हो सकता है कि प्रभावती रानी जो देवी बनी वह चेडा राजा की पुत्री नही हो। एक नाम की अनेको रानियां भी हो सकती है। आगम मे ऐसे कई उल्लेख भी आते है।

पौषधशाला मे धर्म जागरणा करते हुए राजा उदायन के अन्तर्मन मे विचार पैदा हुआ कि वह गाम नगर धन्य है जहाँ श्रमण भगवत महावीर प्रभु विचरण करते है। अगर प्रभु यहाँ पधारे तो मैं गृहस्थाश्रम को छोड़कर साधु बन जाऊँगा। राजा उदायन के विचार सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु से अज्ञात न रहे। उदायन का कल्याण जानकर प्रभु ने चम्पा से वीतभय की ओर प्रस्थान कर दिया। ग्रीष्म ऋतु थी। प्रभु ने यह सातसौ कोस का उग्र विहार किया था। मार्ग मे गाव बहुत कम थे। शिष्य मडली भूख-प्यास से आकुल-व्याकुल हो गई। उस समय मार्ग मे तिलो की भरी गाडी जा रही

थी। यद्यपि प्रभु यह जान गये कि ये तिल अचित्त हैं फिर भी शिष्यों को तिल लेने की अनुमति प्रदान नहीं की। गाड़ीवालों ने कहा कि आप इन तिलों को खाकर क्षुधा को शांत कीजिये! प्रभु तो सर्वज्ञता के कारण यह जानते थे कि तिल अचित्त हैं, ग्रहण करने में व्रत भंग नहीं होता है किन्तु सभी तिल अचित्त नहीं होते। पास ही में अचित्त जल का ह्रद भी था। प्रभु यह जानते थे कि यह जल अचित्त है, साधु को ग्राह्य है किन्तु सभी ह्रदों का पानी अचित्त नहीं होता। यदि आज इस पानी का उपयोग करने दिया जायगा तो भविष्य में भी अन्य सचित्त जल-ह्रदों के पानी का उपयोग भी प्रारम्भ हो जायगा। अतः उस तिल और जल को उपयोग में लेने की सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने अनुमति प्रदान नहीं की। निश्चयधर्म से भी बढ़कर व्यवहारधर्म की परिपालना का यह एक संकेत था।

आज के आधुनिक युग में दो चर्चाएँ जोर पकड़ती जा रही हैं। भौतिक युग में नल और बिजली का आविष्कार हुआ है। बिजली को अचित्त समझकर ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना दोष नहीं मानते। नल का पानी भी फिल्टर होकर आता है अतः अचित्त है ऐसा कई चिंतनशील श्रमण कहते हैं। यह बात सदोष है या निर्दोष, यह तो केवलीगम्य है। फिर भी लोक व्यवहार को देखते हुए दोनों का वर्जनीय होना उचित है। प्रत्येक बात के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टि से चिंतन कर ही कदम बढ़ाना चाहिये। समाज विराट है। किसी एक के बोलने से करवट नहीं लेता। आज चालीस वर्ष का आँखों देखा मेरा का इतिहास है कि अच्छाइयाँ कम होती जा रही हैं। जीवन में कमजोरियाँ बढ़ती जा रही हैं। यह नया नहीं है। आगमों को देखने से अच्छी तरह आइने की भांति स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि समाज में समय-समय पर परिवर्तन होता आ रहा है। जैसे प्राचीन युग में श्रमणवर्ग नगर के बाहर बगीचे में ठहरते थे तब ही परठने की विधि का सम्यग् परिपालन होता था। गाँव के नजदीक नहीं परठना, गाँव के अन्दर नहीं परठना, कोई आते हों वहाँ नहीं परठना, कोई देखे वहाँ नहीं परठना। अब आज उस विधि का पालन कितने अंश में हो रहा है, यह चिंतनीय विषय है।

उन ग्रीष्म काल के उग्र विहार में भूख और प्यास के परीषह में कई धीर-वीर मुनिराज कालधर्म को प्राप्त हो गये। प्रभु आगे बढ़ते रहे।

किसान ने करवट बदली

भगवान महावीर और गणधर गौतमादि विहार करते हुए सोमनाथ

काश्यप मुनि बने

राजगृह निवासी काश्यप गाथापति ने प्रभु का उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अगो का अध्ययन किया, सोलह वर्ष तक सयम की साधना कर अन्त मे विपुल पर्वत से मोक्ष गये।

वारत्त मुनि

वारत्त गाथापति उपदेश सुन मुनि बने, बारह वर्ष तप-सयम की साधना-आराधना कर कैवल्यश्री प्राप्त कर मोक्ष मे गये।

नन्दमणिकार का चिंतन

राजगृह निवासी नन्दमणिकार (जौहरी) ने प्रभु की अमृतमय वाणी का पान किया, श्रावकव्रत ग्रहण किये। पौषधोपवास, सामायिकादि क्रियाएँ भी करता था। बीच मे त्यागीजनो का सम्पर्क कम रहने से विचारो मे धर्म के प्रति कुछ शैथिल्य आ गया था। एक बार ग्रीष्म काल मे अष्टमभक्त पौषधोपवास मे प्यास बहुत जोरो से लगी जिससे चिंतन चला कि धन्य है उन सेठ-सेनापतियो को जो सार्वजनिक स्थान पर पुष्करणी बनाते है, बाग बगीचे लगाते है, मुझे भी ऐसा काम अवश्य करना चाहिये। जैसा पौषध मे चिन्तन किया वैसी ही पौषध पार कर राजाज्ञा प्राप्त की। सकल्प के अनुसार बगीचा लगवाया और पुष्करणी का निर्माण करवाया, आतिथ्य भवन भी बनवाया। आगन्तुक राहगीर और नागरिक जनता वहाँ आराम पाने लगी और नन्दमणिकार के गुण गाने लगी। अपनी प्रशसा सुनकर नन्दमणिकार बहुत प्रसन्न होने लगा।

श्रावक के व्रतो मे शैथिल्य बढता गया और स्वनिर्मित बगीचे एव पुष्करणी का अनुराग बढने से तिर्यंच गति का आयुष्य बाँधा। मरकर सज्ञी पचेन्द्रिय दर्दुर (मेढक) बना, और उसी अपनी बनाई हुई पुष्करणी में रहने लगा।

श्रमण भगवत महावीर प्रभु विचरण करते राजगृह के बाहर गुणशीलक चैत्य मे पधारे। पुष्करणी पर आने वालो के मुँह से बार-बार शब्द निकलते थे कि आज अहोभाग्य है कि प्रभु महावीर स्वामी यहाँ पधारे है। दर्शन करके नयन पवित्र करेगे। अमृतमय वाणी सुनकर व्रत-प्रत्याख्यान धारण करेंगे और नर-जन्म को सफल बनाएँगे। जन-जन के मुँह से ये बाते दर्दुर ने भी सुनी। ये शब्द उसे प्रिय लगे, ऊहापोह जगा, जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अपना पूर्वभव देखा कि 'मैंने व्रतो की विराधना की इसलिए

तिर्यंच योनि में आकर उत्पन्न हुआ, अब मुझे बिगड़ी को सुधारना है। ऐसा सोच संकल्प किया 'प्रभु आपकी साक्षी से मैं यावज्जीवन षष्ठ षष्ठ तप करूँगा, पारणे में अचित्त जल आदि ग्रहण करूँगा।'

प्रतिज्ञा ग्रहण करके प्रभु की वंदनार्थ रवाना हुआ। महाराज श्रेणिक भी सवारी सहित प्रभु को वंदनार्थ जा रहे थे। चलते हुए मेंढक पर अश्व का पैर पड़ा, वह छोटा सा मेंढक वहीं कुचल गया। मन में सोचा—प्रभु अब मैं आपके श्रीचरणों में पहुँचने में असमर्थ हूँ। तब वह शनैः-शनैः राजमार्ग से खिसक कर एक तरफ आ गया और प्रभु की साक्षी से आलोचनापूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया। आयु पूर्ण कर प्रथम देवलोक दर्दुर विमान में दर्दुर देव बना। अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होकर अवधिज्ञान से उपयोग लगाया, पूर्वभव को देखा। प्रभु को मैं वन्दनार्थ जाऊँ—ऐसा सोच सपरिवार उत्तर वैक्रिय बनाकर राजगृह के बाहर गुणशीलक चैत्य में विराजे प्रभु महावीर को वन्दनार्थ आया। धर्मोपदेश सुना। अपनी दिव्य ऋद्धि का परिचय देते हुए दिव्य नाटिका का प्रदर्शन करके अपने स्थान को चला गया।

गणधर गौतम स्वामी ने प्रभु से दर्दुर देव का भविष्य पूछा तो प्रभु ने फरमाया कि यह महाविदेह में जन्म लेकर मोक्ष में जाएगा।

उन्नीसवाँ वर्षावास : राजगृह

अठारहवाँ वर्षावास पूर्ण होने पर भी क्षेत्र स्पर्शना और धर्म प्रचार के लिए प्रभु वहीं विराजे। सम्राट् श्रेणिक, महामन्त्री अभयकुमार, सेठ एवं सेठकुमार, राजकुमार, राजरानियाँ, सेठानियाँ, श्रीपति और धर्मरति आदि यशस्वी और वर्चस्वी व्यक्ति प्रभु का उपदेश श्रवण करते थे। काल-सौकरिक कसाई और कौतूहलप्रिय जन भी वहाँ आया करते थे, कोई धर्म का स्वरूप समझकर तो कोई दर्शक बनकर और कोई मनोविनोद हेतु आया करते थे। आगन्तुकों में सब ही के विचार एक सरीखे हों ऐसा कह नहीं सकते। खैर, उस दिन कालसौकरिक कसाई समवसरण के बाहर या निकट कहीं बैठा था। प्रभु की पावन प्रवचन गंगा प्रवाहित हो रही थी। ऐसी स्थिति में एकाएक एक वृद्ध पुरुष, जिसका शरीर कुष्ट रोग से पीड़ित, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र वेष्टित, लकड़ी के सहारे लड़खड़ाते पैरों से सभा को चीरता हुआ प्रभु की तरफ आया। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र के अनुसार प्रथम प्रभु महावीर को छींक आई, कुछ देर बाद महाराज श्रेणिक को, फिर थोड़ी देर बाद महामन्त्री अभयकुमार को छींक आई और तदनन्तर कालसौकरिक कसाई को भी छींक आई।

> अत्रान्तरे जिनेन्द्रेण क्षुते प्रोवाच कुष्ठिक ।
> म्रियस्वेत्यथ जीवेति श्रेणिकेन क्षुते सति ॥
> क्षुतेऽभयकुमारेण जीव वा त्व म्रियस्व वा ।
> कालसौकरिकेणापि क्षुते मा जीव, मा मृथाः ॥
>
> —त्रिषष्टि० १०।९।६३-६४

प्रभु महावीर की छीक सुनते ही उस रुग्ण वृद्ध पुरुष ने जोर से कहा—"तुम शीघ्र ही क्यो नही मर जाते ?" अर्थात् जल्दी मरो। ये शब्द सुनते ही सारी परिषद में सन्नाटा छा गया कि यह कौन निरामूढ है जो अनन्तज्ञानी के लिये ऐसे कठोर शब्द बोल रहा है, किन्तु वह तीर्थकर प्रभु की धर्मसभा थी इसलिए कोई भी कुछ न बोल सका। राजा श्रेणिक की आँखे भी तन गई थी किन्तु अनाधिकार का विषय होने से नरेश भी मौन थे। क्योकि धर्मसभा मे मुफलिस और तवगर, धनी-निर्धनी आदि को समान अधिकार होता है।

महाराज श्रेणिक मन ही मन कुढ रहे थे कि उन्हे भी छीक आ गई। यह सुनते ही वृद्ध ने श्रेणिक की तरफ मुँह करते हुए कहा "सम्राट ! चिरजीव रहो। चिरकाल तक आप जीवित रहो।" अपने चिरजीव रहने की बात सुनकर श्रेणिक प्रसन्न न हुए किन्तु उन्हे विचार यह पैदा हुआ कि प्रभु के लिये इसने ऐसे कठोर शब्द कैसे कहे। ऐसा चितन चल ही रहा था कि अभयकुमार को छीक आई।

अभयकुमार को छीक सुनते ही कुष्टि ने उनकी तरफ मुख करके कहा "अरे अभयकुमार ! तुम चाहे जीओ, चाहे मरो।"

यह सुनते ही सारी सभा का क्रोध कुतूहल मे परिवर्तित हो गया। सभी सभासद साश्चर्य कुष्टि पुरुष की तरफ देखते ही रह गये। इसी बीच कालसौकरिक कसाई को छीक आई। यह सुनकर कुष्टि वृद्ध पुरुष बोला—"तुम न तो मरो और न जीओ।"

इन चारो बातो को सुनकर जनगण विचारमग्न हो ही रहे थे कि वह वृद्ध देखते ही देखते आँख मिचौनी सी कर गया। आँख की पलक हिलाते ही देखा तो वृद्ध नजर न आया।

महाराज श्रेणिक के आश्चर्य का पार न रहा। प्रभु के श्रीचरणो मे निवेदन किया "प्रभु ! यह निराला व्यक्ति कौन था। उसने आपका बहुत अधिक अविनय किया। पागल की तरह बकवास क्यो किया ? क्या प्रभु इसमे भी कोई रहस्य छिपा हुआ है ?"

यो ५०० भैसे बनाकर उसने मारे । यह दृश्य देख नरेश का कलेजा कांपने लगा कि क्या प्रजा भी मेरा अनुशासन नही मानती ? क्या मुझे नरक मे जाना ही पडेगा ? फिर भी दिल मे धैर्य की ध्वनि झकृत हुई कि अभी तो दो उपाय और है।

दादी को मुनि-दर्शन करवाना यह उपाय तो बहुत ही सरल और सुगम है। दादी के पास आकर मुनि-दर्शन करने के लिए प्रार्थना की। आपके दर्शन करने मात्र से मेरी नरक टल जाएगी किन्तु दादी ने स्पष्ट शब्दो मे इन्कार कर दिया कि मैं भगवान और उनके मुनियो के दर्शन कदापि नही करूँगी। नरेश ने जबरन दादी को पालकी मे बिठाया और अनुचरों को आदेश दिया कि समवसरण मे ले चले, वहाँ सहज ही भगवान के दर्शन हो जायेगे। दादी ने अपने दृढ सकल्प के अनुसार रास्ते मे ही अपनी आँखो मे लौह शलाकाये डाल कर फोड दी। सम्राट निराश हो गये। दिल-दिमाग मे गहरी उथल-पुथल मच गई कि दादी को दर्शन करवाना अति सहज उपाय होने पर भी मुझे सफलता नही मिली। तीन उपाय निष्फल हो गये।

नरक के दु ख मे बचने के लिये नरेश अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हो गये। नरेश स्वय पूणिया श्रावक की एक सामायिक का फल प्राप्त करने के लिये उसके घर पहुँचे और अत्यन्त दीनता से कहने लगे—"हे श्रावकश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे यहाँ माल खरीदने आया हूँ। तुम उसका जितना मूल्य माँगोगे, मै सहर्ष देने को तैयार हूँ।"

पूणिया श्रावक ने कहा—"नरेश ! नगरी के नाथ ! मुझ साधारण गृहस्थ के पास ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसकी आपको आवश्यकता आ पडी और आपको स्वय यहाँ पधारने का कष्ट करना पडा।"

श्रेणिक—हे श्रावक ! किसी बाह्य पदार्थ का मेरा लक्ष्य नहीं है, किन्तु मुझे तुम्हारी केवल एक सामायिक चाहिये। बोलो, उस एक सामायिक की कीमत तुम क्या लेना चाहते हो ?"

पूणिया श्रावक—"मालिक आपको एक सामायिक चाहिये किन्तु यह बात मेरे लिये बिल्कुल नई है। मैं आपको सामायिक का क्या मूल्य बताऊँ। मैने यह व्यापार कभी किया नही है। हाँ, जिन्होने आपको सामायिक खरीदने के लिये कहा हो, वे ही सही मूल्य बता सकते है। आप उन्ही से पूछे कि एक सामायिक का क्या मूल्य होता है।"

श्रेणिक सम्राट प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचे। सनम्र निवेदन किया—"प्रभु ! पूणियाजी स्वय अपनी एक सामायिक का मूल्य नही जानते। अत

कृपा कर आप फरमाइये कि एक सामायिक का क्या मूल्य होता है। ताकि मैं अपने समस्त राज्य-कोष को देकर भी उनकी सामायिक खरीद लूं और नरक के दुःखों से बच सकूं।"

प्रभु महावीर ने फरमाया—"राजन् ! तुम भौतिक वैभव से आध्यात्मिक वैभव की तुलना करना चाहते हो किन्तु नरवर ! हीरे, पन्ने, मोती, सोने-चांदी के ढेर सुमेरु पर्वत जितना भी लगा दो तब भी एक सामायिक का मूल्य तो क्या, सामायिक की दलाली भी नहीं हो सकती है। जैसे कोई मरण शय्या पर सोया प्राणी अन्तिम श्वास ले रहा है। उसे क्या कोई भी करोड़ों और अरबों का धन देकर भी बचा सकता है ?"

श्रेणिक—स्वामी ! यह बात कदापि सम्भव नहीं हो सकती है।

महावीर प्रभु ने समझाया—"नरवर ! हीरे, पन्ने, माणक, मोती से भी जीवन की कीमत बढ़कर है। जीवन का एक क्षण भी करोड़ों, अरबों का धन वैभव देकर खरीदा नहीं जा सकता है तो सामायिक की साधना तो आत्म-साधना है, समता की साधना है। राग-द्वेष की विषमता को चित्त से दूर हटाकर जन से जिन बनना, आत्मा से परमात्मा बनना यही सामायिक का आध्यात्मिक मूल्य है। एक सामायिक को प्राप्त करने के लिये मन को स्फटिक की तरह निर्मल बनाना होता है। बाह्य वैभव से सामायिक प्राप्त नहीं हो सकती है।"

यह सुनकर नरेश का गर्व चूर चूर हो गया, सामायिक मैं खरीद सकता हूँ वैभव देकर भी, अन्तर का यह अहंकार नष्ट हो गया। मन में निश्चय हो गया कि सामायिक की कीमत चुकाई नहीं जा सकती। कृतकर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता। तीर्थंकर प्रभु भी कृतकर्मों से छुड़ा नहीं सकते। प्रभु ने श्रेणिक नरेश को प्रतिबोध देने हेतु ही चार उपाय नरक से बचने के लिये बताये थे।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि

एक बार मगधराज श्रेणिक सवारी पर आरूढ़ होकर प्रभु महावीर को वन्दन करने के लिये आये। उपदेश सुना, अपने हृदय की शंका का समाधान पाने हेतु प्रभु से निवेदन किया कि "मैं आज दर्शनार्थ-वन्दनार्थ आ रहा था मार्ग में एक तपोधनी महामुनि को देखा जो सूर्य की तरफ दोनों भुजाएँ उठा कर मेरु की तरह अडोल थे। एक स्थान पर उनकी दृष्टि केन्द्रित थी। उनके चेहरे पर सौम्यता झलक रही थी। प्रभु ऐसे ध्यानस्थ मुनि मर कर किस गति को प्राप्त करेगा ?"

चितन करने लगे कि अधोमुखी आत्मा भी ऊर्ध्वमुखी बन सकता है, मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। प्रभु को वन्दनकर नगर मे आये। मन मे निर्ग्रन्थ धर्म के प्रति गाढ श्रद्धा जागृत हुई। उसी श्रद्धा से प्रेरित होकर नरेश ने यह उद्घोषणा करवाई कि—"जो कोई भगवान के पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा मैं उसे यथोचित सहयोग दूँगा, रोकूंगा नही।" घोषणा से प्रभावित होकर अनेको नागरिको के साथ (१) जालि, (२) मयालि, (३) उपालि, (४) पुरुषसेन, (५) वारिषेण, (६) दीर्घदत, (७) लष्टदत, (८) वेहल्ल, (९) वेहास (१०) अभय (११) दीर्घसेन, (१२) महासेन, (१३) लष्टदत, (१४) गूढदत (१५) शुद्धदत, (१६) हल्ल, (१७) द्रुम, (१८) द्रुमसेन, (१९) महाद्रुमसेन (२०) सिह, (२१) सिहसेन, (२२) महासिहसेन, और (२३) पूर्णसेन-इन तेवीस राजकुमारो ने तथा (१) नन्दा (२) नन्दमती, (३) नन्दोत्तरा (४) नन्दिसेणिया, (५) मरुया, (६) सुमरुया, (७) महामरुया, (८) मरुदेवा (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमना और (१३) भूतदत्ता इन तेरह रानियो ने दीक्षित होकर भगवान के सघ मे प्रवेश किया। तेवीसो ही राजकुमारो का अधिकार अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे सविवरण आता है। ये सभी महामुनि साधना करके अनुत्तर विमान मे गये और वहाँ से महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष जाएँगे तथा सभी महारानी साध्वियाँ कर्म खपा कर कैवल्यश्री प्राप्त कर मोक्ष गई।

आर्द्रक मुनि का चितन

आर्द्रकपुर नगर के राजा आर्द्र के आर्द्रा महारानी का आत्मज आर्द्रककुमार गुणनिष्पन्न कलानिष्णात राजकुमार था। महाराज श्रेणिक और आर्द्र नरेश मे पुराना मैत्री व्यवहार था। आपस मे यथासमय उचित सामग्रियो के उपहार भी आते-जाते रहते थे। एक बार का प्रसग है। महाराज श्रेणिक ने मित्रोचित उपहार अपने मन्त्री के साथ महाराज आर्द्र को भेजा। उसे देख आर्द्रककुमार ने पूछा—"ये किस राजा की तरफ से भेट आयी है।" "वत्स! राजगृहनरेश श्रेणिक मेरे पुराने मित्र है। उन्होने ही यह भेट मन्त्री से साथ भेजी हे।" मन्त्री के सामने कुँवर ने जिज्ञासा प्रकट की "क्या आपके राजा के राजकुमार मेरे समवयस्क है?" 'हा कुँवर साहब! हमारे राजकुमार दान दया की प्रतिभा सपन्न मूर्ति बुद्धिसपन्न अभयकुमार है, जो पाचसौ मन्त्रियो मे प्रधानमत्री है।" यह सुन आर्द्रककुमार ने सोचा कि राजा राजा को उपहार भेज रहे है तो मुझे भी अभय राजकुमार के साथ मैत्री व्यवहार स्थापित करना चाहिये। जिस

यह मैत्री शृंखला सदा बनी रहे। ऐसा सोच आर्द्रककुमार ने अभयकुमार के लिए योग्य उपहार भेजा। मंत्री उपहार लेकर राजगृह में पहुँचा। राजा के सामने दोनों भेंट रखी। अभय ने सोचा प्रथम बार ही यह भेंट आयी किन्तु वह अनार्य देश में है और मैं आर्य देश में हूँ। मैत्री व्यवहार दूध और पानी सरीखा होता है। मैं प्रयत्न करके उस मित्र को आर्य बनाऊँ तो मित्रता की शोभा है। यथासमय जब भेंट पिताश्री ने भेजी तब एक संदूक में अभयकुमार ने धार्मिक उपकरण माला, मुँहपत्ति, आसन और पूंजणी आदि बन्द करके आर्द्रककुमार के लिये भेजे। अभय ने सोचा था कि भौतिक वैभव की मेरे मित्र के पास कोई कमी नहीं है किन्तु मुझे आत्मचिन्तन करने हेतु धार्मिक उपकरण भेजना ही उचित है। ऐसा सोचकर ही उसने धार्मिक उपकरण भेजे।

भेंट राजा एवं राजकुमार ने प्राप्त की। अपने मित्र द्वारा भेजी मंजूषा को लेकर आर्द्रककुमार अपने भवन में गया। हर्षित हृदय से मंजूषा को खोला। अन्दर के उपकरणों को देख सोचा—वस्त्राभूषण हीरे आदि न भेज कर मित्र ने ये उपकरण भेजे हैं, इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। मुझे इन्हें किस तरह उपयोग करना है, यह चिन्तन का विषय है। ये किस अंग पर ठीक बैठेंगे ऐसा सोच हाथ, पांव, ग्रीवा आदि पर मुहपत्ति लगाई। आईने में देखा सुन्दरता महसूस न हुई। सोचते-सोचते सदोरक मुँहपत्ति मुख पर रख कानों में धागा डाला। आईने में चेहरा देखा। उनको बहुत सुन्दर लगा, चिन्तन करते-करते उन्हें जातिस्मरणज्ञान हो गया। पूर्वभव देखे। मैं इससे पूर्व तीसरे भव में वसन्तपुर निवासी सेठ था, मेरी धर्मपत्नी बंधुमती थी। धर्मघोष मुनि पधारे। दोनों ने उपदेश सुना। व्रत धारण किये। व्रतधारण के पश्चात् एक बार अपनी धर्मपत्नी को देखकर रागभाव जागृत हुआ। यह देख बन्धुमती ने सोचा पतिदेव अपने व्रतों में अतिचार लगा रहे हैं किन्तु अनाचार से इन्हें बचा लूं। ऐसा सोच संथारा ग्रहण कर लिया और काल करके देवलोक में गई। बाद में मुझे मालूम हुआ तो मैं भी संथारा-पूर्वक स्वर्ग गया और वहाँ से च्यवकर यहाँ (अनार्य देश में) जन्म पाया। धन्य है मित्र अभयकुमार, जिसने मुझे ये उपकरण भेजकर प्रतिबोधित किया। दिल में दीक्षा के विचार जगे। पिताश्री से अनुमति माँगी। पिताश्री ने पुत्र को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। पाँचसौ राजकुमारों के निगरानी में रखा किन्तु रक्षकों से छिपकर आर्द्रककुमार वहाँ से निकलकर आर्य देश में आये और स्वयमेव संयम ग्रहण कर लिया। उस समय आकाशवाणी हुई

निवास तथा चौमासे करते थे। आज तुम जाकर देखो—बडे-बडे देव-देवेन्द्रो को बुलाकर विशाल समवसरण रचवाते है। पहले मौन रहते थे अब धर्मोपदेश करते है। अत पहले और अब के व्यवहार मे बहुत अन्तर है। उस अस्थिरात्मा ने अपनी आजीविका चलाने का यह उपक्रम किया है।

आर्द्रक मुनि, जिन्होने अभी महावीर के दर्शन भी नही किये, किन्तु कितनी अगाध श्रद्धा है, वे गोशालक के वचनो से किञ्चित् मात्र भी दोलायमान नही हुए। कहने लगे—आपने महावीर के जीवन रहस्य को नही समझा। प्रभु का एकात भाव तीनो काल मे स्थिर रहने वाला है। वे हजारो लाखो मे रहकर भी सबसे अलग है क्योंकि वे राग-द्वेष से रहित है। प्रभु जितेन्द्रिय है। उनके उपदेश मे किंचित् मात्र भी वाणी के दोष नही है। प्राणीमात्र के उद्धार हेतु सर्वविरति-देशविरति की उपयोगिता समझाते है। पाँच आस्रव हेय है, पाँच सवर उपादेय है, ऐसा आदेश फरमाते है। अकर्तव्य से निवृत्ति का उपदेश देते है वे प्रभु महावीर सच्चे विज्ञ है, ज्ञानी ही क्या अतिशय ज्ञानी है, सच्चे श्रमण है।

मूल—

धम्म कहं तस्सओ णत्थि दोसो, खतस्स दंतस्स जितिन्दियस्स।
भासाय दोसेय विवज्जगस्स, गुणेय भासायणि सेवगस्स॥
महव्वए पंच अणुव्वए य, तहेव पंचासवसवरेय।
विरति इह सामणियभिपन्ने, लवावसक्की समणे॥ त्ति बेमि॥

—सूत्रकृतागसूत्र, अ॰ २ गा॰ ४-५

गोशालक अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए आर्द्रक मुनि से कहता है कि हमारे सिद्धान्त के अनुसार सचित्त जल पीने मे, सचित्त बीज वनस्पति हरितकाय तथा उद्दिष्ट आहार खाने मे कोई पाप नही। स्त्री सभोग मे भी एकान्त विहारी तपस्वी को कुछ भी पाप नही लगता है।

शात स्वर से आर्द्रक मुनि ने प्रत्युत्तर देते हुए गोशालक से कहा कि तुम्हारे सिद्धान्त के अनुसार तो गृहस्थ और श्रमण मे कोई अन्तर ही नही है। जो श्रमण गृहस्थ की तरह ही सचित्तभोजी है, स्त्रीभोगी है वह तो केवल पेटभराई के लिये ही श्रमण है, ऐसे लोग ससार का परित्याग करके भी मोक्ष कदापि नही पा सकते है—ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।

श्रमण गृहस्थ में कोई अन्तर नहीं, यह सुन गोशालक भृकुटी चढ़ाकर सरोष बोला—तुमने सभी बौद्धादि योगी तपस्वी महात्माओं का, सभी मतों का तिरस्कार किया है।

आर्द्रक मुनि—मैं किसी भी मत और मतावलम्बियों की निंदा नहीं करता, किन्तु मिथ्या-मान्यताओं का तिरस्कार करता हूँ। सच्चे साधक सब जीवों के रक्षक हैं। उनका तिरस्कार कदापि नहीं कर सकता।

गोशालक—तुम्हारे धर्माचार्य महावीर बड़े कायर हैं। वे किसी भी धर्मशाला आदि में नहीं ठहरते क्योंकि उनको सताता है कि वहां अनेक मत के प्रकाण्ड विद्वान आते हैं, ठहरते हैं। कहीं कोई प्रश्न पूछ बैठे जिसका मैं उत्तर न दे सकूं।

आर्द्रक मुनि—मेरे धर्माचार्य प्रबल प्रतापी, सच्चे उपदेशदाता हैं। बालक की तरह उनमें चापल्यता का सर्वथा अभाव है। वे किसी भी भय से भयभीत नहीं होते हैं। किससे बोलना, किससे नहीं, कहां जाना और कहां नहीं, किससे प्रश्नोत्तर करना, किससे नहीं; इन सबका हमारे धर्माचार्य को जितना विवेक है उतना अन्य में होना कम संभव लगता है। वे संसार के उद्धार हेतु प्रवचन देते हैं। कदाग्रही, मताग्रही, तत्त्व जिज्ञासा से रहित, दर्शन-भ्रष्ट, अनार्य स्वभावी के पास प्रभु नहीं जाते हैं।

गोशालक—तुम्हारे धर्माचार्य स्वार्थी-लाभार्थी वणिक के समान हैं। अपनी वस्तु बता-बताकर अन्य को ठगते हैं?

आर्द्रक मुनि—हमारे धर्माचार्य प्रभु महावीर पुराने कर्मों को तोड़ते हैं, नवीन कर्मों का उपार्जन नहीं करते। वे मोक्ष चाहते हैं अतः वे वणिक की तरह नहीं हैं। वणिक हिंसादि कृत्य करके अनेक प्रकार का पाप इकट्ठा करते हैं जिसके कारण चतुर्गति में परिभ्रमण करना पड़ता है किन्तु महावीर तो परोपकारी हैं। पूर्ण अहिंसक तथा सत्य-ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पूर्ण परिपालक हैं। अतः तुमने जो वणिक के साथ उनकी तुलना की वह तुम्हारे अज्ञान का परिचायक है।

इस प्रकार से परास्त होकर गोशालक निरुत्तर हो गया। आर्द्रक मुनि आगे बढ़े। बौद्ध भिक्षु से वार्तालाप हुआ।

बौद्ध भिक्षु—हमारा अभिमत है कि बाह्य प्रवृत्ति पापोत्पत्ति का मुख्य कारण नहीं है किन्तु अन्तरंग परिणाम ही कारण है। हमारी दृष्टि से कोई पुरुष खली को बालक मानकर भाले से छेदे तो वह पुरुष बालक के वध का पापी

कुछ क्षण रुककर जिस प्रकार विनीत पुत्र पिता को झुकता है तद्वत् झुककर वन की तरफ भाग गया।

राजा श्रेणिक को अनुचरो द्वारा हाथी और मुनि की जानकारी हुई तो वे आर्द्रक मुनि के पास पहुँचे और पूछा—हाथी बन्धन को तोडकर भागा और आपके समीप प्रशात कैसे रहा? आर्द्रक मुनि ने कहा राजन्! लोह की साकल को तोडना वनहस्ती के लिये उतना मुश्किल नही है जितना स्नेह से बँधे हुए कच्चे सूत के धागो को तोडना मुश्किल है। श्रेणिक ने पुन जिज्ञासा रखी कि यह कैसे? मुनि ने अपनी जीवन-झाकी बताई—मैं श्रमण वेप मे वसन्तपुर नगर के बाहर मदिर मे ध्यानस्थ था। उस समय धन्नाश्री अपनी सखियो के साथ खेल रही थी। सध्या के अधकार मे स्तम्भ के भ्रम मे मुझे पकड कर कहा कि यह मेरा पति है। लेकिन उस समय मैं वहाँ से चला गया। पुन योगी वेश मे वहाँ आया, उसने मुझे पहचाना, विवाह हुआ। पुत्र जन्म के बाद दीक्षा की भावना प्रकट करने पर धन्नाश्री ने चरखा कातना शुरू कर दिया। पुत्र ने कारण पूछा। माता ने बताया कि पिता दीक्षित होगे। तब पुत्र ने बाल-क्रीडा करते हुए कुकडी से मेरे पाँव बाँधे। बारह आँटो से मै बारह वर्ष और ससार मे रहा। मैं उस कच्चे सूत के बधन को नही तोड सका। इसीलिये मैने कहा लोह की साकल को तोडना सरल है पर कच्चे सूत के धागो को तोडना कठिन है। हाथी भी मुनियो के स्नेह सूत्र को तोड नही सका।

उसके पश्चात् मुनि को वन्दन कर श्रेणिक अपने महलो मे चले गये। आर्द्रक मुनि प्रभु महावीर के पास गये। सविनय वन्दन-नमस्कार किया। आर्द्रक मुनि द्वारा प्रतिबोधित पाँचसौ तस्करो को व तापसादि को प्रभु महावीर ने दीक्षा देकर उन्ही के सुपुर्द किया।

बीसवाँ वर्षावास : वैशाली

राजगृह का उन्नीसवाँ वर्षावास पूर्ण कर प्रभु ने कौशाम्बी की तरफ विहार किया। मार्ग मे आलभिया नगरी मे पधारे। वहाँ पर ऋषिभद्रपुत्र आदि श्रमणोपासक रहते थे। एक बार ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने अन्य श्रमणोपासको के साथ ज्ञानचर्चा करते हुए देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के सम्बन्ध मे कहा किंतु ऋषिभद्रपुत्र की बात पर किसी को विश्वास न हुआ। प्रभु पधारे। उन्होने देवो की स्थिति के सम्बन्ध मे पूछा तो प्रभु ने फरमाया कि ऋषिभद्रपुत्र ने जो स्थिति बताई है वह यथार्थ है। यह सुन अन्य श्रमणोपासको ने ऋषिभद्रपुत्र से सविनय क्षमायाचना की।

हो गया। मृगावती रानी चन्दनबाला की शिष्या बनी। चण्डप्रद्योत प्रभु को वन्दन कर उज्जैनी को लौट गया।

कौशाम्बी से विहार कर प्रभु विचरण करते हुए फिर विदेह की तरफ पधारे। प्रभु वहाँ से वैशाली पधारे। बीसवाँ वर्षावास प्रभु ने वैशाली मे सम्पन्न किया।

इक्कीसवाँ वर्षावास वाणिज्यग्राम

वैशाली का वर्षावास पूर्ण होने पर प्रभु मिथिला नगरी होते हुए काकदी नगरी मे पधारे। वहाँ का राजा जितशत्रु था। जो बहुत ही प्रजाप्रिय था। काकदी की ही रहने वाली बुद्धिमती और व्यवहार दक्षा सार्थवाही भद्रा थी। अपार वैभव था उसका। एक पुत्र धन्नाकुमार था। धन्नाकुमार ने युवावस्था मे प्रवेश किया, सुयोग्य-सुशील-सुलक्षणी बत्तीस कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण करवाया।

श्रमण भगवत महावीर प्रभु काकदी नगरी के सहस्राम्र उद्यान मे पधारे। राजा जितशत्रु सपरिवार वन्दनार्थ पहुँचा और धन्नाकुमार भी प्रभु को वन्दन करने, उपदेश सुनने प्रभु के श्रीचरणो मे गया। सुकोमल हृदयी धन्नाकुमार ने प्रथम बार ही प्रभु का प्रवचन सुना। हृदय मे अनुरक्ति-आसक्ति ने विरक्ति का रूप धारण किया। जहाँ ससार अतिप्रिय लगता था वह अब कटु और अप्रिय लगने लगा। ससार का सुख अमृतमय लगता था अब विषमिश्रित पय के समान लगने लगा। भोग से हटकर मन योग की तरफ झुक गया। माता का गाढ प्रेम, बत्तीस पत्नियो का स्नेह बन्धन तोडकर प्रभु के श्रीचरणो मे प्रव्रज्या ग्रहण की।

धन्नामुनि का घोर अभिग्रह

धन्नाकुमार ने मुनि बनते ही प्रभु के श्रीचरणो मे निवेदन किया कि इस तन को खूब खा-खाकर पुष्ट किया है, अब मुझे तन से मोह नही रहा है। आज से ही ये यावज्जीवन प्रतिज्ञा फरमाएँ कि बेले-बेले पारणा करूँगा। और पारणे मे नीरस आहार ग्रहण करूँगा। भिखारी भी जिस आहार को लेना पसन्द नही करे वैसा आहार मैं ग्रहण करूँगा। यह आहार भी मैं इसलिये ग्रहण करूँगा कि आत्म-साधना मे यह शरीर सहयोगी बना रहे। गोचरी हेतु स्वय धन्ना अणगार जाते। कभी आहार मिला तो पानी नही, और पानी मिला तो आहार नही। किन्तु दोनो ही स्थितियो मे मन मे म्लानता नही, ग्लानि नही थी। एकात-शात-प्रशात मन से गोचरी ग्रहण

भ्रमण करते हुए प्राणियो को वे धर्मरूपी दण्डे से गोपन करते है, मोक्षरूपी वाडे मे सकुशल पहुँचाते है अत. श्रमण भगवत महावीर महागोप हे।

गोशालक—क्या यहाँ महासार्थवाह आये थे ?

सद्दालपुत्र – कौन महासार्थवाह ?

गोशालक—श्रमण भगवत महावीर प्रभु महासार्थवाह हे।

सद्दालपुत्र—आप उन्हे महासार्थवाह किसलिये कहते हे ?

गोशालक—ससाररूपी अटवी मे बहुत से जीवो को धर्म मे स्थिर करते हे और मोक्षरूप नगर मे पहुँचाते है अत वे महासार्थवाह हे।

गोशालक ने पुन प्रश्न किया कि क्या महाधर्मकथी आये थे ?

सद्दालपुत्र – महाधर्मकथी किसको कहते हे ?

गोशालक—महावीर प्रभु महाधर्मकथी है क्योकि ससार मे उन्मार्गगामी व्यक्तियो को धर्म का मर्म वताकर सन्मार्ग पर चलाते हे, इसलिये महावीर महाधर्मकथी है। क्या यहाँ महानिर्यामक आये थे ?

सद्दालपुत्र—महानिर्यामक किसे कहते हे और क्यो कहते हैं ?

गोशालक—ससाररूपी समुद्र मे डूबते हुए प्राणियो को धर्मरूपी नौका मे बैठाकर अपने हाथो से पार लगाते है इसलिए श्रमण भगवत महावीर महानिर्यामक हे ।

सद्दालपुत्र ने गोशालक से कहा कि तुम ऐसे चतुर हो तो क्या मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवत महावीर के साथ चर्चा-वार्ता कर सकते हो ?

गोशालक—मै उनसे वाद-विवाद नही कर सकता। जैसे कोई बलिष्ट व्यक्ति बकरे, मेढे, सूअर आदि पशु अथवा मुर्गे, तीतर, बतख आदि पक्षियो को पाँव, पूँछ, पख आदि किसी को भी कही से मजबूती से पकडता है वैसे ही श्रमण भगवत महावीर प्रभु भी हेतु, युक्ति, प्रश्न और उत्तर मे मुझे जहाँ कही से पकड लेते हे। मै उन्हे उत्तर नही दे सकता। मुझे परास्त होना पडता है, अत मै तुम्हारे धर्माचार्य के साथ चर्चा-वार्ता करने मे असमर्थ हूँ।

सद्दालपुत्र ने कहा—तुमने मेरे धर्माचार्य के सद्गुणो की यथार्थ प्रशसा की, एतदर्थ मै तुम्हे पीठ-फलक-भाण्डशाला के लिये निमन्त्रण देता हूँ, आवश्यकतानुसार ग्रहण करे।

यह सुन गोशालक भाण्डशाला मे ठहरा। यथासमय सद्दालपुत्र को बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु सद्दालपुत्र किंचित् मात्र भी जिनेश्वर के धर्म से विचलित नही हुआ। सारा प्रयत्न निष्फल जाने से

गोचरी लेकर गौतम लौटे तब बालभाव ने अतिमुक्तक ने पूछा— आप कहा जा रहे है ? आप कहा रहते है ?

सरल हृदयी, सस्नेह गौतम ने कहा—कुमार ! हमारे धर्माचार्य, धर्म-गुरु, मार्ग-दर्शक, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवत महावीर है। जो इसी नगर के बाहर श्रीवन उद्यान मे अभी विराजमान है, हम उनकी सेवा में ही ठहरे हुए हैं।

मधुर उत्तर सुनकर कुमार का सरल हृदय आकृष्ट हुआ, निवेदन किया—"मै भी आपके धर्मगुरु के दर्शन करूँगा।" ऐसा कहकर माता कोई पुराना स्नेही हो वैसे ही गौतम के साथ अतिमुक्तक कुमार श्रीवन मे पहुँचा। बच्चे हमेशा बडो को देखकर व्यवहार करते है। गौतम ने प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया उसी तरह अतिमुक्तक ने भी वदन किया। प्रभु ने अतिमुक्तक कुमार को भी उपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर राजकुमार बोला—प्रभो ! मै भी आपके समान मुनि-श्रमण बनना चाहता हूं।

अतिमुक्तक कुमार राजमहलो मे आये। माता-पिता से मुनि बनने की इच्छा प्रगट की।

लघुवयस्क बालक की बात सुनकर माता-पिता मुस्कराये—लाल ! साधु बनना हँसी-खेल का काम नही है। तलवार की धार पर चलना, जलते अगारो पर चलना तो आसान है किन्तु सयम की साधना घोर साधना है। श्रमणत्व की साधना अति कठिन है ? अत जरा विचार करो।

अतिमुक्तक—मैने अपनी शक्ति को सोच लिया है। आपने जो कहा धार तलवार से भी सयम की साधना कठिन है किन्तु माताजी कायरो के लिये तो आप जैसी बात कहती है वैसी ही है किन्तु शूरवीरो के लिए कोई कार्य दुष्कर नही है। मेरा दृढ सकल्प है कि जो जन्मा है वह अवश्य ही मरेगा, पर कब और किस प्रकार, यह मैं नही जानता। कर्म के कारण जीव ससार मे परिभ्रमण करता है, यह मै जानता हूँ। किन्तु यह नही जानता कि किन-किन कर्मो के उदय से कहाँ-कहाँ परिभ्रमण करता है।

इन उत्तरो को सुनकर माता-पिता के हर्ष का पार नही रहा। अन्त मे माता-पिता ने कहा - लाल ! हम तुझे राज्य सिहासन पर आसीन करना चाहते है। यह सुनकर अतिमुक्तक मौन रहे।

माता-पिता ने उत्सव कर राजगद्दी पर बैठाया। अब तो अतिमुक्तक राजकुमार राजा बन गये। राजाज्ञा का सबको पालन करना पडता है।

स्थविरो ने प्रभु से निवेदन किया कि भगवन ! ये लघु मुनि अतिमुक्तक कितने भव करके मोक्ष जाएँगे ? प्रभु ने प्रत्युत्तर मे फरमाया कि अतिमुक्तक मुनि इसी भव मे मुक्ति प्राप्त करेगे ।

स्थविरो के मन मे सकल्प-विकल्प की प्रवृत्ति फिर भी मिटी नहीं थी । प्रभु ने प्रशात स्वर से स्थविरो को सबोधित करते हुए कहा "अहो मुनियो ! अतिमुक्तक मुनि की बाल प्रवृत्ति को देख हीलना, निदना और गर्हणा मत करो अपितु इनकी सेवा-भक्ति करो । ये चरम शरीरी हैं ।"

प्रभु का पावन मार्गदर्शन मिलने पर सभी स्थविरो ने सनम्र प्रभु की आज्ञा को शीप पर चढाया और स्वाध्याय-ध्यान मे संलग्न बन गये । यह है प्रभु के प्रति अगाध श्रद्धा का विपय ।

सभी स्थविर आपस मे कहने लगे कि ये मुनि अतिमुक्तक देह मे लघु है, किन्तु आत्मा की दृष्टि से महान् हैं । साधना भूमि में देह की पूजा नही, गुणो की पूजा की जाती है ।

स्थविर अतिमुक्तक महामुनि की तन-मन से सेवा करने लगे । अतिमुक्तक मुनि ने सविनय ग्यारह अगो का अध्ययन किया । गुणरत्नसवत्सर तप, जो सोलह मास का होता है, ऐसे सुदीर्घ तप की आराधना से कमल-सा कोमल शरीर कुम्हलाने लगा, देह बल क्षीण होने लगा किन्तु मनोबल दिन प्रतिदिन बढता ही रहा । अन्त मे सलेखना-संथारापूर्वक अन्तिम समय केवलज्ञान-केवलदर्शन को प्राप्त कर मोक्ष मे पधारे ।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि सद्दालपुत्र भी पोलासपुर के और अतिमुक्तक मुनि भी पोलासपुर के थे । उपासकदशाग मे जहाँ सद्दालपुत्र का वर्णन है वहाँ नगर-नरेश का नाम जितशत्रु और उद्यान का नाम सहस्राम्रवन बताया है और अतकृद्दशाग मे राजा का नाम विजय, महारानी का नाम श्रीदेवी और उद्यान का नाम श्रीवन आता है । ऐसा मालूम पडता है कि जितशत्रु राजा का नाम न होकर विशेपण होना चाहिए । अनेक स्थानो पर अनेको राजाओ का एक ही नाम हो यह भी कम सभव लगता है । जितशत्रु यानि शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने के कारण उन्हे जितशत्रु भी कह सकते हैं । तथ्य केवलीगम्य है ।

पोलासपुर से विहार कर प्रभु वाणिज्यग्राम मे पधारे और वहीं वर्षावास पूर्ण किया ।

बडे लोभी हो, मुक्ति के लोभ मे आकर विरक्ति का स्वाँग रच रहे हो। मुझ से भी तुमने विरक्ति धारण कर ली है, किंतु याद रखो मुक्ति का सुख तब तक ही अच्छा लगता है, जब तक तुम मेरे से दूर हो। आओ मेरी इच्छा की पूर्ति करो, धर्म के ढोग को छोड दो। मनुष्य जन्म बार-बार कहाँ है ?" रेवती ने ऐसा निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार दो बार-तीन बार किया। अनेक प्रकार से कायिक-वाचिक प्रयोग कर धर्म से विचलित करने का रेवती ने प्रयत्न किया किंतु उसका प्रभाव महाशतक पर कुछ भी न हुआ।

महाशतक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ पूर्ण की थी। घोर तप की साधना करने से शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। संलेखना संथारा धारण कर आत्म-चिंतन मे लग गया था। शुभ अध्यवसाय से ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से महाशतक को अवधिज्ञान प्राप्त हुआ था। उत्तर दिशा मे चूलहिमवत पर्वत और तीन दिशाओ मे एक एक हजार योजन तक, नीचे प्रथम नरक के लोलुप-अच्युत नाम के नरकावास तक जानने और देखने लगा था।

महाशतक अनशनपूर्वक साधना मे सलग्न था। तब एक बार पुनः रेवती पूर्ववत् ही नशे मे चूर हो, उसके निकट आई और अपनी कामुक प्रवृत्ति का प्रदर्शन कर उसे चलित करने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु महाशतक मौन रहा। रेवती ने दूसरी बार काम प्रार्थना की, तीसरी बार भी काम प्रार्थना की किन्तु सफलता नही मिली तब उसके व्रतो और आचार-विचार पर तिरस्कारपूर्वक बोलने लगी। तदनन्तर घृणित आचरण पर उतारू हो गई। उस व्यवहार से महाशतक को कुछ क्रोध आ गया। रेवती को उसके अकृत्य व्यवहार के लिये काफी फटकारा, बहुत भर्त्सना की। अवधिज्ञान से रेवती के घोर पापो का परिणाम बताते हुए कहा—"रेवती! सात दिन मे विपन्निका (अलसक) रोग से पीडित होकर तुम रत्नप्रभा नाम की प्रथम नरक मे चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाली नैरयिक के रूप जन्म लोगी। वहाँ तुम्हे अत्यधिक कष्टो को भोगना पडेगा।"

अपने भविष्य का निर्णय सुन रेवती घबरा उठी। सोचा—पति ने मुझे अभिशाप दे दिया है। रोती-चिल्लाती अपने घर आई। भयकर रोग से पीडित होकर सातवें दिन असमाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुई।

प्रभु महावीर उन दिनो मे राजगृह मे ही विचरण कर रहे थे। प्रभु ने गौतम से कहा कि महाशतक श्रावक ने आवेश मे आकर अपनी पत्नी

राजा आप अनाथ कैसे ? आपके लिए मै हाजिर हूँ। जैसी आज्ञा आप दोगे, उसकी पूरी व्यवस्था करूँगा। मै आपका नाथ हूँ। मेरे जैसे समर्थ नृप के होते हुए अनाथपना कहना शोभा नही देता।

अनाथी—हे राजन्! मेरी दृष्टि मे तुम स्वय अनाथ हो।

राजा—हे मुनिवर! मै अनाथ कैसे ? आप मुझे नही पहचानते होंगे। जरा सुनिये - मैं एक करोड इकहत्तर लाख गाँव का स्वामी हूँ। मैं मगध देश का सम्राट श्रेणिक हूँ। फिर मुझे अनाथ कैसे कहते है ? मैं समझ नही पाया।

अनाथी—हे राजन्! मेरे पिता के पास भी प्रभूत धन-वैभव था। मगर जन्म-मरण के दु ख से छुडाने मे धन समर्थ नही है।

यह सुन नरेश कुछ भी उत्तर न दे सके। मुनि की सारगर्भित बाते सुनकर इतने प्रभावित हुए कि मानो मुनि के ही बन गये। पुन अपने राजमहलो मे आकर परिवार को मुनि दर्शन हेतु ले गये। सपरिवार श्रेणिक नरेश अनाथी मुनि के श्रीचरणो मे झुक गये।

> एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तीए।
> सओरोहो सपरियणो सबंधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा॥
>
> —उत्तरा०, अ० २०, गा० ५८

राजाओ मे सिह के समान महाराज श्रेणिक अपने परिवार के साथ पहुँचा। साधुओ मे सिह के समान अनाथी मुनि को वदन-नमस्कार किया। मुनि के गुणो का-चिन्तन करके अपने अन्त पुर, परिजन और बाधवो के साथ निर्मल चित्त से धर्म मे अनुरक्त हुआ।

रोह के प्रश्नोत्तर

श्रमण भगवत महावीर प्रभु से कुछ ही दूर बैठे रोह अनगार प्रकृति मे भद्र, कोमल, विनयवत और सरल थे। इन्द्रिय दमन करने वाले और कषायविजयी थे। प्रभु से कुछ ही दूर यानि न अति दूर और न अति नजदीक आत्मचिन्तन मे सलग्न थे। चिंतन के समय उनके मानस मे कुछ शकाएँ उठी कि धर्माचार्य श्रमण भगवत महावीर प्रभु ने फरमाया है कि अढाई द्वीप के बाहर भी असख्यात द्वीप समुद्र है। उन द्वीप समुद्रो के आगे अलोक है। लोक मे षट्द्रव्य है—'षड्द्रव्यात्मक लोक'। लोक के बाहर छह द्रव्य नही होते। सिद्ध जीवो के ऊपर अलोक है। सिद्ध जीव भी

इसी प्रकार रोह अणगार ने उपर्युक्त सभी प्रश्न अलोकात के साथ भी किये। प्रभु महावीर ने सभी के उत्तर फरमाये।

इसी प्रकार रोह अणगार ने पूर्व-पूर्व पद का त्याग कर उत्तर उत्तर पद के साथ पहले और पीछे का क्रम पूछा। प्रभु महावीर ने सभी के उचित उत्तर देकर समाधान किया।

अपने सभी प्रश्नो का उत्तर प्रभु महावीर के मुखारविंद से सुनकर रोह अणगार को अत्यधिक सन्तोष प्राप्त हुआ।

इसी प्रसग पर अधिक स्पष्टता के लिए गणधर गौतम ने लोक की स्थिति के विषय मे पूछा—"भगवन् ! पृथ्वी किसके ऊपर ठहरी हुई है ? इस विषय मे अनेको कल्पनाएँ प्रचलित हैं। कोई पृथ्वी को शेषनाग पर ठहरी हुई बताते है ? कोई वाराह की पृष्ठ पर ठहरी हुई बताते है ? वास्तविक स्थिति क्या है, कृपा करके फरमाइये।"

प्रत्युत्तर देते हुए प्रभु महावीर ने कहा—हे गौतम ! लोक की स्थिति आठ प्रकार की है—

१ आकाश के आधार पर वायु है।
२ वायु के आधार पर पानी है।
३ पानी के आधार पर पृथ्वी है।
४ पृथ्वी के आधार पर त्रस-स्थावर जीव हैं।
५ जीव के आधार पर अजीव है।
६ जीव कर्म के आधार से विविध पर्यायो मे प्रतिष्ठित है।
७ मन-भाषा आदि के अजीव पुद्गल जीवो द्वारा सगृहीत है।
८ जीव कर्म से सगृहीत है।

गौतम ने पूछा - भगवन् ! आकाश के आधार पर वायु और वायु के आधार पर पृथ्वी आदि कैसे प्रतिष्ठित है ?

प्रभु महावीर ने फरमाया—हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष चमडे की मशक मे पूरी हवा भर कर उसका मुँह बन्द करदे फिर उसको बीच में से बाध कर ऊपर का मुँह खोलकर हवा निकाल दे और उस ऊपर के विभाग मे पानी भरकर उसका मुंह बाँध दे फिर बीच का बधन खोल दे तो वह पानी नीचे की हवा पर ठहरता है या नही ?

गौतम ने कहा—हा भगवन् ! पानी हवा के ऊपर ठहरता है।

इस प्रकार के १२ बालमरण है। बालमरण से मरने वाले अनन्त बार चतुर्गति मे परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार बालमरण से ससार बढता है।

पडितमरण दो प्रकार का है—(१) पादोपगमन और (२) भक्त-प्रत्याख्यान। (१) पादोपगमन—वृक्ष की गिरी हुई शाखा के समान अपने शरीर को स्थिर करके जो मरण होता है वह पादोपगमन मरण कहलाता है। (२) भक्तप्रत्याख्यानमरण—चारो आहार का जीवन पर्यन्त पच्चक्खाण करने के बाद होने वाला मरण भक्तप्रत्याख्यानमरण कहलाता है। ये दोनो मरण दो प्रकार के है—(१) निर्हारिम और (२) अनिर्हारिम।

जो मुनि उपाश्रय मे पादोपगमन या भक्तप्रत्याख्यान करते है, पण्डितमरण के पश्चात् उनके शरीर को उपाश्रय या नगर से बाहर ले जाकर सस्कारित किया जाता है। अत वह मरण निर्हारिम (निहारी) कहलाता है। जो मुनि जगल मे या पहाड पर पादोपगमन या भक्तप्रत्या-ख्यान से देह त्यागते है, उनके शरीर को सस्कार करने के लिये बाहर नही ले जाया जाता अत वह अनिर्हारिम (अनिहारी) मरण कहलाता है।

पादोपगमन चाहे निर्हारिम हो या अनिर्हारिम हो उन्हे प्रतिक्रमण करने की आवश्यकता नही होती क्योकि वहाँ हलन-चलनादि क्रिया का अभाव है। भक्तप्रत्याख्यान चाहे निर्हारिम हो या अनिर्हारिम उन्हे प्रतिक्रमण करना पडता है क्योकि इनको हलन-चलनादि क्रिया लगती है।

इस प्रकार के पण्डितमरण से जो जीव मरते है, वे चतुर्गति मे अनन्त बार परिभ्रमण नही करते। वे दीर्घ ससार को छोटा करते है अर्थात् इन दो प्रकार के मरण से मरने वाला जीव ससार को घटाता है।

अपने पाँचो ही प्रश्नो का सविस्तृत युक्तियुक्त उत्तर सुनकर स्कदक के हृदय मे अपार हर्ष हुआ। प्रभु के वचनो पर अपनी श्रद्धा प्रकट की और साथ ही प्रव्रजित होने की भावना भी। प्रभु ने उन्हे पाँच महाव्रत दिये।

स्कदक ने आगम का गभीर अध्ययन किया और जैन दृष्टि के परम रहस्य के ज्ञाता बन गये। निर्ग्रन्थ प्रवचनो के अनुकूल प्रत्येक कार्य मे प्रवृत्ति करने लगे। भिक्षुप्रतिमा, गुणरत्न-सवत्सर तप तथा और भी अनेक प्रकार के तप से, विशुद्ध भावनाओ से कर्म नष्ट करने का प्रयत्न करने

६. भगवत ! सयम का फल क्या है ?

गौतम ! सयम का फल नये कर्मों का रुकना है अर्थात् अनास्रवपन होता है। आत्म-भाव मे रमण करना होता है।

७ भगवत ! आस्रव-निरुन्धन का क्या फल होता है ?

गौतम ! आस्रव-निरुन्धन का फल तप होता है।

८ भगवत ! तप से किस फल की प्राप्ति होती है ?

गौतम ! तपस्या करने से कर्म रूपी मैल नष्ट होता है।

९ भगवत ! कर्म रूपी मैल के नष्ट होने से किस फल की प्राप्ति होती है ?

गौतम ! उससे अक्रियापन की प्राप्ति होती है।

१० भगवत ! अक्रियापन से क्या लाभ होता है ?

गौतम ! अक्रियापन प्राप्त होने के बाद सिद्धि प्राप्त होती है।

मूल—

> सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य सजमे।
> अणण्हवे तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धि॥

—भगवतीसूत्र २-५

इस वर्ष भगवान के शिष्य वेहास और अभय आदि मुनियो ने राजगृह के विपुल-पर्वत पर अनशन किया, सलेखनापूर्वक देवगति मे गये। राजगृह का वर्षावास पूर्ण होने पर प्रभु ने आगे विहार किया।

पच्चीसवाँ वर्षावास : मिथिला

राजगृह का वर्षावास पूर्ण कर प्रभु ने चपानगरी की तरफ विहार किया।

चंपा का परिचय

महाराज श्रेणिक का ज्येष्ठ पुत्र कूणिक था। राज्य का अधिकार पाने हेतु कूणिक ने अपने पिता को छल-बल पूर्वक जेल मे रखवा दिया था। स्वय राजा बनकर माता चेलना को प्रणाम करने पहुँचा। माता की आँखो से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। कूणिक बोला—माताजी ! आप अश्रु क्यो बहा रही है ? आज आप राजमाता बन गई है। माता ने कठोर उपालभ दिया कि "जो पुत्र अपने पिता को जेल मे डाल कर माता को राजमाता का पद देता है, यह गौरव नही किन्तु कुल मे कलक पैदा करना है। तेरे लालन-पालन मे

भगवत महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए इसी चम्पानगरी के उपनगर मे पधारे है और पूर्णभद्र चैत्य मे पधारने वाले है।"

प्रवृत्ति-निवेदक के मुख से प्रभु के पदार्पण का सदेश सुनकर कूणिक के हर्ष का पार न रहा। सिहासन से नीचे उतरकर पादुकाएँ खोली। पाच अभिगमन का साचवन किया (खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानत और चामर) एक साटिक उत्तरासग किया। सात-आठ पाँव प्रभु के सन्मुख जाकर "णमोत्थुण" से अभिवादन किया और बोला "प्रभो! मैं यहाँ पर बैठा हुआ आपको वन्दन करता हूँ। भगवन्! आप मुझे वही से देखते हैं।"

प्रभु को वन्दन कर अपने सिहासन पर नरेश कूणिक बैठे और प्रभु के पधारने की शुभ सूचनादाता को एक लाख आठ हजार रजत मुद्राएँ प्रीतिदान मे दी और कहा—प्रभु चम्पा के पूर्णभद्र उद्यान मे पधारे तब मुझे तुरन्त सदेश देना।

प्रभु पूर्णभद्र उद्यान मे पधारे। राजमार्ग, चतुष्पथ, त्रिपथ आदि स्थानो पर जनगण मिलते और कहते—प्रभु का नाम-गोत्र सुनने मात्र से महान फल की प्राप्ति होती है परन्तु हमारा तो अहोभाग्य है कि आज प्रभु इसी नगरी के बाहर पूर्णभद्र उद्यान मे पधार गये है। देवानुप्रिय! चलो, हम सभी प्रभु को वन्दन नमस्कार करे, दर्शन कर नयन पवित्र करे, पावन-प्रवचन सुनकर कानो को पवित्र करे। जिस व्यक्ति ने नरेश को प्रभु के पदार्पण का शुभ सदेश दिया उसे राजा कूणिक ने साढे बारह लाख रजत मुद्राएँ प्रीतिदान मे दी।[1]

सेनाधिकारी को बुलाकर हस्ती-रत्न को धर्म सभा मे जाने हेतु सजाकर लाने का आदेश दिया—मैं प्रभु को वन्दनार्थ जाऊँगा। राजाज्ञा से चम्पानगरी सजाई गई। चतुरगिणी सेना, सुभद्रा आदि रानियो सहित चम्पा के मध्य बाजार मे होते हुए पूर्णभद्र चैत्य के समीप आये। छत्रादि अतिशय दूर से देखे वही उन्होने हस्तीरत्न, पाँचो राजचिह्नो को छोडा और प्रभु के सन्मुख आये। वन्दन-नमस्कार कर त्रियोग से पर्युपासना करने लगे। प्रभु का धर्मोपदेश सुनकर भभासार पुत्र कूणिक ने सविनय वन्दन-नमस्कार कर

---

१ मूल पाठ उववाईसूत्र मे "रजत" शब्द नही है, किन्तु परम्परा से यह माना जाता है कि चक्रवर्ती का प्रीतिदान साढे बारह करोड स्वर्ण-मुद्राओ का होता है। वासुदेव व माण्डलिक राजाओ का प्रीतिदान साढे बारह लक्ष रजत मुद्राओ का होता है।

छव्वीसवाँ वर्षावास : मिथिला

मिथिला नगरी का वर्षावास पूर्ण कर प्रभु महावीर वैशाली के समीप वैशाली के समीप होते हुए श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य मे पधारे। प्रभु ने धर्मोपदेश फरमाया। उन दिनो मखलीपुत्र गोशालक भी श्रावस्ती मे ही था। प्रभु महावीर से अलग होने पर गोशालक श्रावस्ती और उसके आसपास के क्षेत्रो मे घूमा करता था। श्रावस्ती निवासी हालाहला कुम्हारिन और अयपुल गाथापति गोशालक के परम भक्त थे। अत जब भी गोशालक श्रावस्ती मे आता तब-तब हालाहला की भाण्डशाला मे ठहरता और अपने आपको तीर्थंकर कहा करता था। स्वय को जिन, केवली और सर्वज्ञ भी कहा करता था।

गणधर गौतम प्रभु की आज्ञा लेकर श्रावस्ती नगरी मे भिक्षार्थ पधारे। उन्होने जनसवाद सुना कि श्रावस्ती मे दो तीर्थंकर विचरण कर रहे है—एक श्रमण भगवत महावीर और दूसरे मखलीपुत्र गोशालक। गोचरी लेकर गौतम प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचे और परिषद मे ही निवेदन किया—"प्रभु! नगरी की जनता के मुख से सवाद सुना कि हमारे पुण्योदय से दो तीर्थंकर—एक महावीर और दूसरे गोशालक विराज रहे है। प्रभु! क्या यह सत्य है? इस विषय मे सत्य तथ्य को जानना चाहता हूँ।

प्रभु महावीर ने फरमाया—"हे गौतम! गोशालक जिन नही है किंतु जिनप्रलापी है।"

इसके बाद प्रभु महावीर ने गोशालक का सम्पूर्ण पूर्व परिचय दिया।

प्रभु की बात भी श्रावस्ती नगरी मे सर्वत्र फैल गई। सभी जगह यही चर्चा होने लगी कि 'गोशालक जिन नही है किन्तु जिनप्रलापी है' सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवत महावीर ऐसा फरमाते है। प्रभु का कथन एक दिन गोशालक के कानो मे भी जा पहुँचा। उसे अत्यधिक क्रोध आया। वह आतापना भूमि से चलकर सीधा हालाहला कुभारिन की शाला मे आया, अपने आजीवक सघ को बुलाया और सुनी हुई बात अपने भक्तो के बीच स्पष्ट कही।

गोशालक और आनन्द अणगार

उस समय श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु के स्थविर शिष्य आनन्द प्रकृति के सरल और विनीत थे। षष्ठ तप निरन्तर किया करते थे। प्रभु की आज्ञा पाकर भिक्षार्थ श्रावस्ती नगरी मे गये। वे भिक्षार्थ फिरते हुए

छव्वीसवाँ वर्षावास : मिथिला

मिथिला नगरी का वर्षावास पूर्ण कर प्रभु महावीर वैशाली के समीप वैशाली के समीप होते हुए श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य मे पधारे। प्रभु ने धर्मोपदेश फरमाया। उन दिनो मखलीपुत्र गोशालक भी श्रावस्ती मे ही था। प्रभु महावीर से अलग होने पर गोशालक श्रावस्ती और उसके आसपास के क्षेत्रो मे घूमा करता था। श्रावस्ती निवासी हालाहला कुम्हारिन और अयपुल गाथापति गोशालक के परम भक्त थे। अत जब भी गोशालक श्रावस्ती मे आता तब-तब हालाहला की भाण्डशाला मे ठहरता और अपने आपको तीर्थंकर कहा करता था। स्वय को जिन, केवली और सर्वज्ञ भी कहा करता था।

गणधर गौतम प्रभु की आज्ञा लेकर श्रावस्ती नगरी मे भिक्षार्थ पधारे। उन्होने जनसवाद सुना कि श्रावस्ती मे दो तीर्थंकर विचरण कर रहे है— एक श्रमण भगवत महावीर और दूसरे मखलीपुत्र गोशालक। गोचरी लेकर गौतम प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचे और परिषद मे ही निवेदन किया—"प्रभु! नगरी की जनता के मुख से सवाद सुना कि हमारे पुण्योदय से दो तीर्थंकर— एक महावीर और दूसरे गोशालक विराज रहे है। प्रभु! क्या यह सत्य है? इस विषय मे सत्य तथ्य को जानना चाहता हूँ।

प्रभु महावीर ने फरमाया—"हे गौतम! गोशालक जिन नही है किन्तु जिनप्रलापी है।"

इसके बाद प्रभु महावीर ने गोशालक का सम्पूर्ण पूर्व परिचय दिया।

प्रभु की बात भी श्रावस्ती नगरी मे सर्वत्र फैल गई। सभी जगह यही चर्चा होने लगी कि 'गोशालक जिन नही है किन्तु जिनप्रलापी है' सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवत महावीर ऐसा फरमाते है। प्रभु का कथन एक दिन गोशालक के कानो मे भी जा पहुँचा। उसे अत्यधिक क्रोध आया। वह आतापना भूमि से चलकर सीधा हालाहला कुभारिन की शाला मे आया, अपने आजीवक सघ को बुलाया और सुनी हुई बात अपने भक्तो के बीच स्पष्ट कही।

गोशालक और आनन्द अणगार

उस समय श्रमण भगवन्न महावीर प्रभु के स्थविर शिष्य आनन्द प्रकृति के सरल और विनीत थे। षष्ठ तप निरन्तर किया करते थे। प्रभु की आज्ञा पाकर भिक्षार्थ श्रावस्ती नगरी मे गये। वे भिक्षार्थ फिरते हुए

हालाहला कुंभारिन की आपण के समीप से जा रहे थे। गोशालक ने उनको अपने पास बुलाया और कहा—"एक समय कुछ व्यापारियो ने व्यापार हेतु अनेक प्रकार का किराणा और सामान गाडियो मे भरकर और अपने पाथेय की व्यवस्था करके प्रयाण किया। मार्ग मे निर्जन और निर्जल अटवी मे पहुँचे। जगल का कुछ भाग तो पार किया किन्तु साथ मे लाया हुआ पानी समाप्त हो गया। प्यास से घबराये हुए, इधर-उधर पानी ढूंढने लगे किन्तु पानी नही मिला। लेकिन उन्हे एक विशाल वल्मीक दिखाई दिया। उसके उत्तुग चार शिखर थे। उन्होने एक शिखर को तोडा। उसमे से स्वच्छ, उत्तम, पाचक, स्वादिष्ट जल प्राप्त हुआ। सभी जन समुदाय ने पिया, बैल आदि पशुओ को पिलाया और आगे मार्ग हेतु पानी के वर्तन भी भर लिये। कौतूहलवश उन्होने दूसरा शिखर तोडा तो उसमे वहुत बडी स्वर्ण राशि प्राप्त हुई। उनकी तृष्णा वढी। तीसरा शिखर फोडा तो उसमें वहुमूल्य मणिरत्न प्राप्त हुए। उनकी तृष्णा और वढी, लोभ जागा, सोचा—शिखर तोडने पर उत्तरोत्तर वहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्तुओ की उपलब्धि हुई, अत चतुर्थ शिखर भी तोडना चाहिये। एक-दूसरे मे परामर्श करने के वाद सभी ने हाँ भर ली किन्तु एक मौन रहा। पूछने पर कहा—भैया! चतुर्थ शिखर मत तोडो। क्योकि ये हमारे लिये सकट का कारण हो सकता है। सभी ने उसके कथन की उपेक्षा और उपहास किया। चतुर्थ शिखर को फोडा। उसमे से एक महा भयकर फणिधर निकला जो अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाला और दृष्टिविप सर्प था। उसने ज्यो ही क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा तो सारे व्यापारी जलकर भस्म हो गये। किन्तु वह व्यापारी जिसने चतुर्थ शिखर फोडने का निपेध किया वस एक मात्र वही वचा। उसको सर्प ने सामान सहित सकुशल अपने स्थान पहुँचा दिया। हे आनन्द! इसी तरह तेरे धर्माचार्य, धर्मगुरु, श्रमण भगवंत महावीर ज्ञातपुत्र ने उत्तम अवस्था प्राप्त की है। देवता और मनुष्यो मे उनकी यशपताका फहरा रही है। परन्तु यदि सब कुछ यश मिलने पर भी मेरे सम्बन्ध मे ननुनच किया तो याद रखना मैं उन्हे अपने तप तेज से उन व्यापारियो की तरह भस्म कर दूंगा। उस हितैषी व्यापारी की तरह तुझे वचा लूँगा। तू अपने धर्मगुरु, धर्माचार्य के पास जा और मैंने जो वात तुझे कही है वह उन्हे सुना दे क्योकि शत्रु के दहन करने मे समर्थ मेरी तेजोलेश्या को तू नही जानता है।"

यह वात सुनकर मुनि आनन्द भयभीत हुए और शीघ्र ही लौटकर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य मे जहाँ श्रमण भगवत महावीर विराजमान थे,

का प्रयत्न कर रहे हो और अन्य न होते हुए भी अपने को अन्य बता रहे हो। इस प्रकार करना तुम्हारे लिये उचित नही है।

भगवान की बात को सुनकर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ। अनुचित शब्दो के साथ प्रलाप करने लगा। वह उच्च स्वर मे चिल्लाते हुए तिरस्कार पूर्ण शब्दो मे बोला— काश्यप ! तू आज ही नष्ट-विनष्ट और भ्रष्ट होगा। तेरा जीवन नही रहेगा।

तेजोलेश्या का प्रयोग

गोशालक के तिरस्कारपूर्ण वचनो को सुनकर भी प्रभु को किंचित् मात्र भी रोष नही आया क्योकि प्रभु वीतरागी थे। अन्य मुनियो ने भी भगवान के आदेश को शिरोधार्य करके गोशालक की तिरस्कारपूर्ण बातो का कुछ भी उत्तर नही दिया।

भगवान के शिष्य सर्वानुभूति मुनि जो स्वभाव मे भद्र, प्रकृति मे विनीत व सरल थे, और पूर्वदेशीय थे। वे अपने धर्माचार्य के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे। गोशालक की धमकी की कोई परवाह न करके अपने स्थान से उठे ओर गोशालक के पास आकर कहने लगे—गोशालक ! किसी श्रमण ब्राह्मण के मुख से कोई व्यक्ति यदि एक भी आर्य वचन सुन लेता है तो भी वह उन्हे वन्दन-नमस्कार करता है। मगल व कल्याण रूप समझ कर पर्युपासना करता है। आपका तो कहना ही क्या ? भगवान ने आपको शिक्षा व दीक्षा दी फिर भी आप अपने धर्माचार्य के प्रति इस प्रकार की बाते कह रहे हो। यह आपके लिये योग्य नही है।

यह सुनते ही गोशालक का चेहरा तमतमा उठा। उसने सर्वानुभूति अणगार को तेजोलेश्या के एक ही प्रकार से जलाकर भस्म कर दिया और पुन उसी प्रकार अपलाप करने लगा।

सर्वानुभूति अनगार की तरह अयोध्यानिवासी सुनक्षत्र अणगार से भी रहा न गया। गुरु का अपलाप उनके लिये असह्य हो गया और गोशालक को समझाने का प्रयत्न करने लगे। कुपित होकर गोशालक ने सुनक्षत्र मुनि पर भी पूर्ववत् तेजोलेश्या का प्रहार किया। इस बार लेश्या का तेज मन्द हो गया था। वेदना को भयकरता देखकर सुनक्षत्र मुनि उसी समय भगवान के पास आये, वन्दन कर आलोचना की और पुन महाव्रतो का आरोपण किया, फिर श्रमण-श्रमणियो से क्षमा-याचना कर समाधि पूर्वक शरीरोत्सर्ग किया।

भगवान ने भी गोशालक को समझाने का प्रयत्न किया। गोशालक का क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह सात आठ कदम पीछे हटा और प्रभु को भस्म करने के लिये तेजोलेश्या का प्रहार किया, पर भ० महावीर के अमित तेज के कारण गोशालक द्वारा प्रक्षिप्त तेजोलेश्या उन पर असर न कर सकी। वह भगवान की प्रदक्षिणा करके एक बार ऊपर उछली और गोशालक के शरीर को जलाती हुई उसी के शरीर मे प्रविष्ट हो गई। जिस प्रकार भयकर ववण्डर पर्वत से टकराकर वापस लौट जाता है उसी प्रकार वह लेश्या भी प्रभु को भस्म करने मे असमर्थ हो, वापस लौट गई।

गोशालक अपनी ही तेजोलेश्या से पीडित होकर भगवान महावीर से बोला—"काश्यप! मेरी इस तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत व पीडित होकर पित्त ज्वर के कारण तू छ मास की अवधि मे छद्मस्थावस्था मे ही मृत्यु प्राप्त करेगा।"

भगवान महावीर ने उसी गम्भीर मुद्रा मे उत्तर दिया—"गोशालक! मैं तो अभी सोलह वर्ष तक तीर्थंकर पर्याय मे विचरण करूँगा पर तुम अपनी तेजोलेश्या से प्रभावित एव पित्तज्वर मे पीडित होकर सात रात्रि के अन्दर ही छद्मस्थावस्था मे काल प्राप्त करोगे।"

तेजोलेश्या के पुन पुन प्रयोग से गोशालक निस्तेज हो गया, उसका तपस्तेज उसी के लिए घातक सिद्ध हुआ। भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थो को बुलाया और कहा—जैसे तृण, काष्ठ, पत्र आदि का ढेर अग्नि से जल जाने के पश्चात् नष्ट हो जाता है वैसे ही गोशालक भी मेरे वध के लिये तेजोलेश्या निकालकर नष्टतेज हो गया है। अव तुम उसके सामने सहर्ष उसके मत का खण्डन कर सकते हो, विस्तृत अर्थ पूछ सकते हो, धर्म सम्बन्धी विचार-चर्चा कर सकते हो और उसे निरुत्तर कर सकते हो।

निर्ग्रन्थो ने विविध प्रकार के प्रश्न करके गोशालक को निरुत्तर कर दिया। गोशालक को वहुत ही क्रोध आया। उस समय गोशालक ने गड्ढे मे पडे हुए सिह की तरह अत्यन्त क्रोधित दृष्टि से उन श्रमणो की ओर देखा। अपने आपको असमर्थ देख वह क्रोध के मारे उछाले मारने लगा किन्तु निर्ग्रन्थो को कुछ भी कष्ट नही दे सका। अनेक आजीवक स्थविर असतुष्ट होकर उसके सघ से अलग हो गये और भगवान महावीर के सघ मे सम्मिलित होकर साधना मे तल्लीन हो गये।

कुछ ही क्षणो मे श्रावस्ती मे यह वात फैल गई। नगर के त्रिक् और

चतुष्पथों एव राजमार्गों में सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी कि श्रावस्ती के वाहर कोष्ठक चैत्य मे दो जिन परस्पर आक्षेप-विक्षेप कर रहे है। एक कहता है तुम पहले काल प्राप्त करोगे तो दूसरा कहता है तुम्हारी मृत्यु पहले होगी। इसमें कौन सच्चा है और कौन झूठा है ? विज्ञ और लब्धि प्रतिष्ठित व्यक्ति कहते है कि श्रमण भगवन्त महावीर सत्यवादी हैं और मखलीपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।

परास्त गोशालक की दशा

मखलीपुत्र गोशालक अपने अभिलपित मे असफल होकर कोष्ठक चैत्य से वाहर निकला। उसके शरीर मे भयकर वेदना हो रही थी, जिससे वह विक्षिप्त-सा वना हुआ चारा दिशाओ को देखता हुआ, दीर्घ नि श्वास छोडता हुआ, अपनी दाढ़ी के वालो को नोचता हुआ, गर्दन को खुजलाता हुआ, दोनो हाथो को कभी फैलाता हुआ और कभी सिकोडता हुआ, पाँवो को जमीन पर पछाडता हुआ 'हाय मरा ? हाय मरा ?' चिल्लाता हुआ हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारापण मे पहुचा। वहाँ अपने दाह की शाति हेतु कच्चा आम चूसता, मद्यपान करता, पुन. पुन. गीत गाता, नृत्य करता, पुन पुन हालाहला कुम्हारिन को हाथ जोड़ता, मिट्टी के वर्तन मे रखे हुए ठण्डे पानी से अपने शरीर का सिंचन करता।

श्रमण भगवत महावीर ने अपने निर्ग्रन्थो को वुलाकर कहा—"आर्यो ! मखलीपुत्र गोशालक ने जिस तेजोलेश्या का मेरे वध के लिए प्रहार किया था वह (१) अग, (२) वग, (३) मगध, (४) मलय, (५) मालव, (६) अच्छ, (७) वत्स, (८) कौत्स, (९) पाठ, (१०) लाट, (११) वज्र, (१२) मौलि, (१३) काशी, (१४) कौशल, (१५) अवाध, (१६) सभुत्तर, इन सोलह महाजनपदो को जलाने व नष्ट करने मे समर्थ थी। अव वह कुभकारापण मे कच्चा आम चूसता हुआ यावत् ठण्डे पानी का सिचन कर रहा है। अपने दोपो को छिपाने के लिए उसने आठ चरम वतलाये है। जैसे—(१) चरमपान, (२) चरमगान, (३) चरमनाट्य, (४) चरम अजलि-धर्म (५) चरमपुष्कलसवर्त मेघ, (६) चरम सेचनक गधहस्ती, (७) चरम-महा-शिलाकटक सग्राम और (८) चरम तीर्थंकर, अवसर्पिणी काल के अतिम तीर्थंकर के रूप मे उसका सिद्ध होना।

शीतल पानी मे शरीर सिंचित करने के दोप को छिपाने हेतु वह चार पानक-पेय और चार अपानक-अपेय पानी प्ररूपित कर रहा है। वे

चार पानक-पेय ये है—(१) हाथ के पृष्ठ भाग से गिरा हुआ, (२) हाथ से उलीचा हुआ, (३) सूर्य ताप से तपा हुआ, और (४) शिलाओ से घिरा हुआ। चार अपानक ये है—पीने के लिये ग्राह्य तो नही है परन्तु दाह आदि के उपशमन के लिये व्यवहार योग्य है। जैसे—(१) स्थालपानी—पानी से आर्द्र हुए ठण्डे छोटे-वडे वर्तन। इन्हे हाथ से स्पर्श करे, किन्तु पानी न पीए, (२) त्वचा पानी—आमगुठली और बेर आदि कच्चे फल मुँह मे चबाना परन्तु उनका रस नही पीना, (३) फलो का पानी —उडद, मू ग, मटर आदि की कच्ची फलियाँ मुँह मे लेकर चबाना, परन्तु उनका रस नही पीना, (४) शुद्ध पानी। कोई व्यक्ति छह महिने तक शुद्ध मेवा मिष्टान्न खाए। उन छ महिनो मे दो महीने भूमि शयन, दो महीने पट्टशयन, दो महीने तक दर्भ शयन करे तो छठे मास की अतिम रात मे महाऋद्धि सपन्न मणिभद्र और पूर्णभद्र नामक देव प्रकट होते हैं। वे अपने शीतल और आर्द्र हाथो से स्पर्श करते हैं। यदि व्यक्ति उस शीतल स्पर्श का अनुमोदन करता है तो आशीविप प्रकट होता है और अनुमोदन नही करता है तो उसके शरीर मे अग्नि उत्पन्न होती है और उत्पन्न ज्वालाओ से उसका शरीर भस्म हो जाता है। उसके पश्चात् वह व्यक्ति सिद्ध-बुद्ध एव विमुक्त हो जाता है।

श्रावस्ती मे ही अयपुल आजीवकोपासक रहता था। रात्रि मे चिंतन करते हुए उसके मन मे विचार उठा कि हल्ला वनस्पति का आकार कैसा होता है ? वह अपने धर्माचार्य गोशालक से समाधान करने के लिए हाला-हला कुम्भकारापण मे आया, पर गोशालक को हँसते, गाते, नाचते और मद्यपान करते हुए देखकर वह लज्जित हुआ और पुन लौटने लगा। अन्य आजीवक स्थविरो ने उसे लौटता हुआ देख लिया। उन्होने अपने पास बुला-कर आठ चरम वस्तुओ का परिचय देते हुए कहा—तुम जाकर अपने प्रश्न का समाधान करो।

स्थविरो के सकेत से गोशालक ने गुठली एक ओर रख दी और कहा—तुम हल्ला की आकृति जानने के लिए मध्य रात्रि मे मेरे पास आये हो, पर मेरी यह स्थिति देखकर लज्जित होकर लौटना चाहते थे, लेकिन यह तुम्हारी भूल है। मेरे हाथ मे कच्चा आम नही, पर आम की छाल है, निर्वाण-समय पर इसका पीना आवश्यक है। निर्वाण के समय नृत्य-गीत आदि भी आवश्यक है, अत तू भी वीणा बजा। अयपुल ! हल्ला का सस्थान बास के मूल के जैसा होता है। अपने प्रश्न का समाधान पाकर अयपुल लौट गया।

गोशालक का पश्चात्ताप

गोशालक ने अपना अतिम समय समीप जानकर अपने स्थविरो को वुलाकर कहा- जब मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरे शरीर को सुगन्धित पानी से नहलाना, सुगन्धित गेरुक वस्त्र से पोछना, गोशीर्ष चन्दन का लेप करना, वहुमूल्य श्वेतवस्त्र पहनाना और सभी अलकारो से विभूपित करना। एक हजार व्यक्ति उठा सके ऐसी विराट शिविका मे वैठाकर श्रावस्ती मे इस प्रकार उद्घोपणा करना कि चौवीसवे चरम तीर्थंकर मखलीपुत्र गोशालक जिन हुए, सिद्ध हुए, विमुक्त हुए और सभी दु खो से रहित हुए है। इस प्रकार महोत्सव करके मेरी अन्तिम क्रिया करना।

सातवी रात्रि व्यतीत होने पर गोशालक का मिथ्यात्व नष्ट हुआ उसकी दृष्टि निर्मल और शुद्ध हुई।

मूल

तए ण तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सत्तरत्त सि परिणाम-माणति पडिलद्ध सम्मत्तस्स अयमेया रूवे अज्झत्थिए......

—भगवतीसूत्र, शतक १५, सू० १३४

उसको अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होने लगा। वह विचारने लगा— मै जिन नही था, पर अपने को जिन घोपित किया। मैंने श्रमणो की घात की है और धर्माचार्य से द्वेप किया है। वस्तुत श्रमण भगवत महावीर ही सच्चे जिन है, मैंने जीवन मे भयकर भूल की है।

इस प्रकार विचार कर अपने स्थविरो को अपने पास वुलाकर कहा— "स्थविरो! मैं जिन नही था तथापि मैं अपने आपको जिन घोपित करता रहा हूँ, मैं श्रमणघाती और आचार्य प्रद्वेपी हूँ। श्रमण भगवत महावीर ही सच्चे जिन है। इसलिये मेरी मृत्यु के वाद मेरे वाँए पाँव मे रस्सी वाँध कर मेरे मुँह मे तीन वार थूकना तथा श्रावस्ती के राजमार्गों मे गोशालक जिन नही, परन्तु महावीर ही जिन है। इस प्रकार की उद्घोपणा करते हुए, मेरे शरीर को खीचकर ले जाना।" अपनी अन्तिम भावना की पूर्ति के लिए उसने स्थविरो को शपथ दिलवाई और उसी रात्रि को उसकी मृत्यु हो गई।

गोशालक के भक्त व स्थविरो ने सोचा—यदि हम अपने धर्माचार्य के अन्तिम आदेश के अनुसार उन्हे पैर वांधकर श्रावस्ती मे से घसीटते हुए निकालेंगे, तो हमारी इज्जत धूल मे मिल जाएगी और यदि हम इस प्रकार

नही करते है तो गुरु-आज्ञा भग होती है। ऐसी स्थिति मे हमे क्या करना चाहिये। चितन के पश्चात् यही निष्कर्ष निकला कि कुम्भकारापण के द्वार वन्द करके गोशालक की अन्तिम इच्छा और उसके सामने अपनी ली हुई शपथ पूरी की जाय। उन्होने वही आँगन मे श्रावस्ती का चित्र बनाया और गोशालक की अन्तिम इच्छानुसार सभी कार्य किये। स्थविरो ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। तदनन्तर गोशालक के पहले के आदेशानुसार उसकी पूजा की, नगर मे धूम-धाम से शव-यात्रा निकाली और उसका अन्तिम सस्कार सम्पन्न किया।

सर्वानुभूति और सुनक्षत्र अनगार की सुगति

गणधर गौतम ने भगवान महावीर मे प्रश्न किया—भगवन्! सर्वानुभूति अनगार, जिन्हे गोशालक ने भस्म किया था, यहाँ से काल-धर्म प्राप्त कर कहाँ गये है? प्रभु ने प्रत्युत्तर मे फरमाया—हे गौतम! सर्वानुभूति अनगार सहस्रार कल्प मे अठारह मागरोपम की स्थिति वाले देवरूप मे उत्पन्न हुआ है। वहाँ से च्युत होने पर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध, वुद्ध और मुक्त होगा।

इसी तरह सुनक्षत्र अनगार भी अच्युत कल्प मे वाईस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है। वहाँ से च्युत होने पर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध, वुद्ध, मुक्त होगा।

गोशालक कहाँ गया?

गौतम ने फिर जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! आपका कुशिष्य गोशालक मृत्यु प्राप्त कर कहाँ उत्पन्न हुआ है? प्रत्युत्तर मे प्रभु ने फरमाया—वह अच्युत कल्प मे वाईस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है। वहाँ से च्युत होकर अनेक भवो मे परिभ्रमण करने के पश्चात् उसे सम्यक्त्व की उपलब्धि होगी। दृढप्रतिज्ञ मुनि के भव मे वह केवली वनेगा और सभी दु खो का अन्त करेगा।[1]

भगवान का विहार तथा रुग्णावस्था

गोशालक की मृत्यु के पश्चात् प्रभु महावीर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य से विहार कर अनेक ग्राम-नगरो को पावन करते हुए मेढियगाँव के

---

१ "गोशालक का समवशरण मे आना" शीर्षक से यहाँ तक प्राय देवेन्द्र मुनि शास्त्री रचित 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' से उद्धृत किया गया है।

वाहर सालकोष्ठक चैत्य मे पधारे। जनता वन्दनार्थ आई। प्रभु ने धर्मोपदेश फरमाया।

प्रभु महावीर पर श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान मे गोशालक ने तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी, उस समय तत्काल तो प्रभु पर कोई असर नही पडा किंतु उन प्रचण्ड ज्वालाओ ने प्रभु के शरीर पर थोडा प्रभाव छोडा अर्थात् उस कारण से रक्तातिसार और पित्तज्वर प्रभु को हो गया जिससे प्रभु के शरीर मे अत्यधिक शिथिलता और कृशता आ गई थी। प्रभु की शारीरिक स्थिति को देख जनता मे यह चर्चा चलने लगी कि भगवान का शरीर क्षीण हो रहा है, कही गोशालक की भविष्यवाणी सत्य न हो जाय।

सिंह मुनि का करुण क्रन्दन

सालकोष्ठक चैत्य के समीप ही मालुकाकच्छ मे सिंह मुनि ध्यान कर रहे थे। उनके कानो मे भी प्रभु के शरीर की कृशता और गोशालक की भविष्यवाणी विषयक चर्चा जा पहुँची। सिंह अणगार बेले-बेले का तप कर रहे थे और तप के साथ ध्यान एव घोर आतापना भी ले रहे थे। प्रकृति के भद्रिक और सरल थे। आवाज कानो में आते ही ध्यानावस्था मे ही उनके मन मे यह विचार हुआ कि गोशालक की भविष्यवाणी को लगभग ६ मास पूर्ण होने वाले है। ध्यान भग हुआ। पुन सोचा—प्रभु दो व्याधियो से पीडित है, अत्यन्त कृश-कमजोर हो गये है, कही ऐसा न हो कि गोशालक की वात सत्य हो जाय। यदि ऐसा हो गया तो अन्यतीर्थिक कहेगे कि प्रभु महावीर छद्मस्थावस्था मे ही काल कर गये। अत मुझे प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँच कर निर्णय कर लेना ही चाहिये क्योकि हाथ कगन को आरसी क्या। दिल मे निर्णय पाने का मार्ग ढूंढा और उस आतापना भूमि से प्रस्थान किया। मालुकाकच्छ के बीच मे आते-आते तो उनके दिल का दु ख दिल मे समाया नही, आँसू वन कर आँखो से वरसने लगा और वे वही खडे-खडे फूट-फूट कर रोने लगे।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु महावीर से कुछ भी छिपा हुआ नही था। उन्होने अपने निर्ग्रन्थो को उसी समय बुलाकर कहा—"अहो आर्यो! मेरा अन्तेवासी मुनि सिंह प्रकृति से सरल और भद्र है। मेरी अस्वस्थता के समाचारो से उसका चित्त आकुल-व्याकुल हो चुका है और वह मालुकाकच्छ मे उच्च स्वर मे रुदन कर रहा है। अत शीघ्र ही उसे यहाँ बुला लाओ।"

प्रभु का आदेश पाकर श्रमण निर्ग्रन्थ मालुकाकच्छ मे पहुँचे। सिंह मुनि को प्रभु के पास बुलाकर लाये। सिंह अणगार ने प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया। प्रभु ने फरमाया —"अहो सिंह मुनि ! मेरे शरीर सबधी असाता की बात सुनकर तुम चिंता में निमग्न हो गये। तुम्हारे मन मे अनेको कल्पनाएँ उठ रही है जिससे तुम बडे जोरो मे रोने लगे।"

सिंह मुनि ने निवेदन किया—"प्रभो ! आप बहुत समय से अस्वस्थ है। अत मुझे गोशालक की बात याद आ गई। मेरे मन सरोवर ने धैर्य की पाल का उल्लघन कर लिया। प्रभु मेरे अन्तर्मन मे आर्त्तध्यान का विषय गोशालक की भविष्य वाणी ही है।"

महावीर—अहो अणगार ! तुम कुछ भी चिता न करो। अभी तो मैं साढे पन्द्रह वर्ष तक आनन्दपूर्वक गधहस्ती की तरह भूमण्डल पर सचारण-विचरण करूँगा।

चिन्ता और रोग मिटाने का उपाय

सिंह मुनि बोले—प्रभु ! आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। क्या इस बीमारी को मिटाने का कोई उपाय नही है ?

महावीर—अहो आर्य ! मेढियग्राम मे रेवती गाथापत्नी के घर पर कुम्हड़े और बिजोरे से बनी हुई दो औषधियाँ है। इसमे से कुम्हडे की औषधि मेरे लिये बनाई गई है। उसे नहीं लाना है किन्तु जो बिजोरे की औषधि दूसरे के लिए बनाई गई है उसे तुम ले आओ। वह मेरे रोग को मिटाने मे समर्थ है।

मूल—

अहं णं अण्णाइ सोलसवासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि, त गच्छह णं तुम सोहा। मिढियागाम णयर रेवतीए गाहावय-णीए गिहे, तत्थ णं रेवतीए गाहावईए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया तेहिं णो अट्ठो अत्थि। से अण्णे पारियासी मज्जारकडए कुक्कुडमसए तमाहराहि, ते ण अट्ठो। तए ण ··

—भगवतीसूत्र, शतक १५

सिंह अणगार प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित हो रेवती के यहाँ पधारे। मुनि को पधारते हुए देख गाथापत्नी रेवती हर्षित होकर सात-

एक दिन मे एक से अधिक बाण नही चलाऊँगा। बाणविद्या मे चेटक नरेश इतने प्रवीण थे कि उनका बाण कभी खाली नही जाता था। प्रथम दिन महाराज कूणिक की तरफ से कालकुमार अपने तीन हजार हाथी, घोडे, रथ और तीन करोड पैदल का सेनापति बनकर सामने आया। उसने गरुड़व्यूह की रचना की। महाराज चेटक ने शकटव्यूह की रचना की। परस्पर भयकर युद्ध हुआ। चेटक ने अपने अमोघ बाण का प्रयोग किया। एक ही बाण मे कालकुमार जमीन पर गिर पडा। इसी प्रकार प्रतिदिन युद्ध होता रहा। कालकुमार की तरह ही एक-एक भाई अपनी-अपनी सेना के साथ आते और चेटक के बाण द्वारा मारे जाते थे। सेनापति बन-कर दसो भाई नरेश चेटक के बाण से मारे गये। इस प्रकार अपनी पराजय और दसो भाइयो की मृत्यु देखकर कूणिक नरेश घबराने लगे।

काली आदि महारानियों के प्रश्न

वैशाली मे युद्ध चल रहा था। उस समय श्रमण भगवत महावीर प्रभु चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र बगीचे मे पधारे। जनता प्रभु के दर्शन एव प्रवचन सुनने पहुँची। काली, महाकाली आदि दसो महारानियाँ भी प्रभु के समवसरण मे पहुँची, उपदेश सुना। काली महारानी ने प्रभु से निवेदन किया—प्रभो ! आप सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है आप से कोई भी विषय प्रच्छन्न नही है। मेरा पुत्र कालकुमार वैशाली के युद्ध मे गया हुआ है। प्रभो ! उसका क्या होगा ? मैं अपने लाल को कब देख सकूंगी ?

प्रभु ने फरमाया—वह कालकुमार मृत्यु को प्राप्त हो चुका है।

यह अप्रिय घटना सुनकर काली रानी को बहुत दुख हुआ। इसी प्रकार सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरसेनकृष्णा, रामसेनकृष्णा, पितृसेनकृष्णा, और महासेनकृष्णा ने भी क्रमश अपने पुत्रो के विषय मे पूछा। प्रभु महावीर ने जैसी थी वैसी घटना स्पष्ट सुनादी। प्रभु ने ससार की असारता और अनित्यता का उपदेश दिया। प्रभु का उपदेश सुनकर दसो महारानियो ने उसी समय सयम अगीकार कर लिया। अन्तकृत्दशागमसूत्र मे इसका विस्तृत विवेचन है। इन महारानियो ने सयम लेकर ग्यारह अग का ज्ञान प्राप्त किया।

काली साध्वी ने रत्नावली तप किया, आठ वर्ष तक सयम पर्याय की साधना और आराधना की।

साध्वी सुकाली ने कनकावली तप किया, नौ वर्ष तक सयम की साधना और आराधना की।

श्रमणी महाकाली ने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप किया, दस वर्ष तक सयम की साधना और आराधना की।

साध्वी कृष्णा ने महासिंहनिष्क्रीडित तप किया। ग्यारह वर्ष तक प्रव्रज्या पर्याय का सम्यक् पालन किया।

साध्वी सुकृष्णा ने सप्तसप्तिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। बारह वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया।

महाकृष्णा साध्वी ने लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा तप किया और तेरह वर्ष तक सयम की साधना-आराधना की।

वीरसेनकृष्णा साध्वी ने महासर्वतोभद्र प्रतिमा तप किया और चौदह वर्ष तक सयम की साधना और आराधना की।

साध्वी रामकृष्णा ने भद्रोत्तर प्रतिमा तप किया। पन्द्रह वर्ष तक सयम की साधना आराधना की।

पितृसेनकृष्णा ने मुक्तावली तप किया। सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया।

महासेनकृष्णा महासती ने आयविल वर्द्धमान तप किया। सत्रह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया।

इन विकट तपस्याओ से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया। उनकी हड्डियो से कडकड की आवाज आने लगी। अपना शरीर लम्बे समय तक साधना के लिये अनुपयुक्त समझ कर दसो महासतियो ने मासिक सलेखना करके, कर्म नष्ट किये, केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त किया। आयु पूर्ण कर सभी सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुई।

प्रभु चम्पा से विहार कर मिथिला नगरी मे पधारे और यह वर्षावास भी मिथिला मे ही किया।

सत्तावीसवाँ वर्षावास : मिथिला

कूणिक को इन्द्र की सहायता

महाराज चेटक की लडाई मे कूणिक पीठ दिखाने की स्थिति मे आ गया था फिर भी जाति स्वभाव से ही कूणिक पीठ दिखाने वाला नही था। अत उसने अपना अन्तिम उपाय सोचा। अष्टमभक्त तप करके उसने शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। दोनो इन्द्र प्रकट हुए। कूणिक ने इन्द्र से कहा - चेटक के विरुद्ध युद्ध चल रहा है। उसमे मेरी विजय होनी चाहिये। पूर्वभव के वचनवद्ध होने से शक्रेन्द्र महाराज ने अभेद्य वज्र प्रति-

रूप कवच तैयार किया। उस कवच को महाराजा कूणिक ने धारण किया और युद्ध मे पहुँचे।

चेटक नरेश ने पूर्ववत् अपना अमोघ बाण छोडा। मगर कूणिक पर कोई असर नही हुआ। परस्पर दोनो तरफ के वीरो मे घमासान युद्ध चालू हो गया। इन्द्र की सहायता से चेटक की सेना पर महाशिला का प्रहार चालू हो गया। कहा जाता है कूणिक की तरफ के सैनिक लोग ककर-पत्थर, घास-फूस धूलि जो भी उठाकर फेंकते वह इन्द्र के प्रभाव से महाशिला के रूप मे पत्थरो की वर्षा होने लगती। इस प्रकार के युद्ध मे पहले दिन चौरासी लाख योद्धा मारे गये। दूसरे दिन के युद्ध मे कूणिक द्वारा रथ मूसल युद्ध हुआ। इसमे चमरेन्द्र की सहायता थी। चमरेन्द्र महाराज स्वय लडाई मे पहुँच गये। रथ के चारो तरफ मूसल लगे हुए थे। सामने या चारो तरफ जो भी व्यक्ति आते मूसल के प्रहार से कोई भी बच पाते। उस दिन ९६ लाख मानवो का सहार हुआ। इन दो दिनो मे एक करोड अस्सी लाख मानवो का विनाश हुआ।

इतने बडे भयावने विनाश का मूल कारण हार और हाथी ही थे। भगवतीसूत्र शतक सातवे मे इस युद्ध का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस लडाई मे चेटक राजा की, नौ मल्ली, नौ लिच्छिवी, काशी-कोशल देश के जो गण राजा थे इन सब ही की हार हो गई। कूणिक ने अपनी विजयपताका फहरा दी। कूणिक का हौसला बहुत बढ गया था। इन्द्र का बल उसे जो मिल गया था। चेटक अपनी बची सेना के साथ वैशाली नगरी मे चले गये। नगरी के द्वार बन्द कर दिये गये। कूणिक ने दरवाजो को खोलने का खूब प्रयत्न किया किन्तु दरवाजे खुले नही।

श्रमण कूलवालुक का पतन

वैशाली के दरवाजे नही खुले तब कूणिक ने नगर के चारो तरफ घेरा डाल दिया। इस बीच मे एक दिन आकाशवाणी हुई कि श्रमण कूलवालुक जब मागधिका वेश्या मे आसक्त होगा तब राजा अशोकचन्द्र यानि कूणिक वैशाली नगर पर अपना अधिकार करेगा। यह कूलवालुक तपस्वी वैशाली के समीप नदी किनारे रहता था। वह घोर आतापना लिया करता था। उसके तप मे इतना बल था कि एक बार वह नदी के बीच बैठकर ध्यान करने लगा तब उसके तपोबल से नदी का पानी रुक गया। पानी रुक जाने से नदी का पूरा मोड बदल गया। पानी ने दूसरा मार्ग बना लिया। इसी कारण से

उस तपस्वी को लोग कूलवालुक कहा करते थे। कूणिक ने तपस्वी का पता लगा लिया। प्रसिद्ध वेश्या मागधिका को बुलाकर तपस्वी को चलित करने पर पुरस्कार घोषित कर दिया। राजा के इशारे पर मागधिका वेश्या कपट श्राविका बनी और कूलवालुक मुनि के पास जाकर निकट ही अपना डेरा लगा दिया। उसने कूलवालुक को अपने जाल मे फँसा लिया।

कूलवालुक अब पतित हो चुका था। नैमित्तिक का वेश बनाकर वैशाली मे पहुँचा। उसे पहले ही मालूम था कि मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप के कारण वैशाली आबाद है यानि बची हुई है। नागरिको ने नैमित्तिक को देखकर सकट से बचने का उपाय पूछा। तब उसने बताया कि ये स्तूप टूटेगा तभी शत्रु सेना यहा से हटेगी। स्तूप को तोडना प्रारम्भ किया। कूणिक की सेना पूर्व सकेतानुसार दो तीन पडाव पीछे हट गई। जनता को विश्वास जम गया। जनता ने सत्य समझ कर पूरा स्तूप तोड दिया। कूलबालुक ने कूणिक को सावधान कर दिया। तब कूणिक की सेना ने वैशाली पर धावा बोल दिया। सभी दरवाजे टूट गये। वैशाली बरबाद हो गई। इस पाप के कारण कूलबालुक साधु मरकर दुर्गति मे गया। इस प्रकार वैशाली का विनाश होता हुआ देखकर हल्ल और विहल्ल शत्रु से बचने के लिये हार और हाथी को लेकर वैशाली से भागे। नगर के बाहर निकले तो किले की खाई सामने आ गई। हाथी को विभगज्ञान था अत हाथी वहाँ आकर रुक गया। हल्ल-विहल्ल दोनो उस पर सवार थे। उस खाई मे भयकर आग थी। आग ऊपर से मिट्टी की पतली परत से ढकी हुई थी। उन दोनो भाइयो को इस बात का पता नही था, किन्तु ज्ञान के बल से हाथी को आग का पता लग गया था। इसलिये वह रुक गया था। विहल्ल ने बहुत बल लगाया मगर हाथी आगे नही बढा। अन्त मे विवश होकर हाथी ने हल्ल-विहल्ल कुमार को सूण्ड से पकडकर नीचे उतार दिया। तब दोनो भाई कभी ऊपर आकाश की तरफ तो कभी हाथी की तरफ देखने लगे। इस प्रकार देखते ही देखते हाथी सेचनक उस खाई मे कूद पडा। उस भयकर अग्नि मे सथारा पूर्वक हाथी ने प्रवेश किया। उसकी मृत्यु हो गई। शुभभाव से मृत्यु पाकर हाथी का जीव प्रथम देवलोक मे देवपने उत्पन्न हुआ।

हाथी की मृत्यु पर दोनो भाइयो को अफसोस होने लगा कि हमने ही आगे बढने के लिये हाथी को प्रेरणा दी। दोनो भाई निराश होकर लौटने लगे उसी समय एक देव आया और उस देवप्रदत्त हार को भी उठा ले गया। शासन देव ने उन दोनो भाइयो को उनकी त्याग की भावना के

रूप कवच तैयार किया। उस कवच को महाराजा कूणिक ने धारण किया और युद्ध में पहुँचे।

चेटक नरेश ने पूर्ववत् अपना अमोघ बाण छोडा। मगर कूणिक पर कोई असर नही हुआ। परस्पर दोनो तरफ के वीरो मे घमासान युद्ध चालू हो गया। इन्द्र की सहायता से चेटक की सेना पर महाशिला का प्रहार चालू हो गया। कहा जाता है कूणिक की तरफ के सैनिक लोग ककर-पत्थर, घास-फूस धूलि जो भी उठाकर फेंकते वह इन्द्र के प्रभाव से महाशिला के रूप मे पत्थरो की वर्षा होने लगती। इस प्रकार के युद्ध मे पहले दिन चौरासी लाख योद्धा मारे गये। दूसरे दिन के युद्ध मे कूणिक द्वारा रथ मूसल युद्ध हुआ। इसमे चमरेन्द्र की सहायता थी। चमरेन्द्र महाराज स्वय लडाई मे पहुँच गये। रथ के चारो तरफ मूसल लगे हुए थे। सामने या चारो तरफ जो भी व्यक्ति आते मूसल के प्रहार से कोई भी वच पाते। उस दिन ९६ लाख मानवो का सहार हुआ। इन दो दिनो मे एक करोड अस्सी लाख मानवो का विनाश हुआ।

इतने वडे भयावने विनाश का मूल कारण हार और हाथी ही थे। भगवतीसूत्र शतक सातवे मे इस युद्ध का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस लडाई मे चेटक राजा की, नौ मल्ली, नौ लिच्छिवी, काशी-कोशल देश के जो गण राजा थे इन सब ही की हार हो गई। कूणिक ने अपनी विजयपताका फहरा दी। कूणिक का हौसला बहुत वढ गया था। इन्द्र का वल उसे जो मिल गया था। चेटक अपनी बची सेना के साथ वैशाली नगरी मे चले गये। नगरी के द्वार वन्द कर दिये गये। कूणिक ने दरवाजो को खोलने का खूब प्रयत्न किया किन्तु दरवाजे खुले नही।

श्रमण फूलबालुक का पतन

वैशाली के दरवाजे नही खुले तब कूणिक ने नगर के चारो तरफ घेरा डाल दिया। इस बीच मे एक दिन आकाशवाणी हुई कि श्रमण कूलवालुक जब मागधिका वेश्या मे आसक्त होगा तब राजा अशोकचन्द्र यानि कूणिक वैशाली नगर पर अपना अधिकार करेगा। यह कूलवालुक तपस्वी वैशाली के समीप नदी किनारे रहता था। वह घोर आतापना लिया करता था। उसके तप मे इतना वल था कि एक वार वह नदी के बीच बैठकर ध्यान करने लगा तब उसके तपोबल से नदी का पानी रुक गया। पानी रुक जाने से नदी का पूरा मोड बदल गया। पानी ने दूसरा मार्ग बना लिया। इसी कारण से

उस तपस्वी को लोग कूलवालुक कहा करते थे। कूणिक ने तपस्वी का पता लगा लिया। प्रसिद्ध वेश्या मागधिका को बुलाकर तपस्वी को चलित करने पर पुरस्कार घोषित कर दिया। राजा के इशारे पर मागधिका वेश्या कपट श्राविका वनी और कूलवालुक मुनि के पास जाकर निकट ही अपना डेरा लगा दिया। उसने कूलवालुक को अपने जाल मे फँसा लिया।

कूलवालुक अव पतित हो चुका था। नैमित्तिक का वेश बनाकर वैशाली मे पहुँचा। उसे पहले ही मालूम था कि मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप के कारण वैशाली आवाद है यानि वची हुई हे। नागरिको ने नैमित्तिक को देखकर सकट से वचने का उपाय पूछा। तव उसने वताया कि ये स्तूप टूटेगा तभी शत्रु सेना यहा से हटेगी। स्तूप को तोडना प्रारम्भ किया। कूणिक की सेना पूर्व सकेतानुसार दो तीन पडाव पीछे हट गई। जनता को विश्वास जम गया। जनता ने सत्य समझ कर पूरा स्तूप तोड दिया। कूलवालुक ने कूणिक को सावधान कर दिया। तव कूणिक की सेना ने वैशाली पर धावा वोल दिया। सभी दरवाजे टूट गये। वैशाली वरवाद हो गई। इस पाप के कारण कूलवालुक साधु मरकर दुर्गति मे गया। इस प्रकार वैशाली का विनाश होता हुआ देखकर हल्ल और विहल्ल शत्रु से वचने के लिये हार और हाथी को लेकर वैशाली से भागे। नगर के वाहर निकले तो किले की खाई सामने आ गई। हाथी को विभगज्ञान था अत. हाथी वहाँ आकर रुक गया। हल्ल-विहल्ल दोनो उस पर सवार थे। उस खाई मे भयकर आग थी। आग ऊपर से मिट्टी की पतली परत से ढकी हुई थी। उन दोनो भाइयो को इस वात का पता नही था, किन्तु ज्ञान के वल से हाथी को आग का पता लग गया था। इसलिये वह रुक गया था। विहल्ल ने बहुत वल लगाया मगर हाथी आगे नही वढा। अन्त मे विवश होकर हाथी ने हल्ल-विहल्ल कुमार को सूण्ड से पकडकर नीचे उतार दिया। तव दोनो भाई कभी ऊपर आकाश की तरफ तो कभी हाथी की तरफ देखने लगे। इस प्रकार देखते ही देखते हाथी सेचनक उस खाई मे कूद पडा। उस भयकर अग्नि मे सथारा पूर्वक हाथी ने प्रवेश किया। उसकी मृत्यु हो गई। शुभभाव से मृत्यु पाकर हाथी का जीव प्रथम देवलोक मे देवपने उत्पन्न हुआ।

हाथी की मृत्यु पर दोनो भाइयो को अफसोस होने लगा कि हमने ही आगे वढने के लिये हाथी को प्रेरणा दी। दोनो भाई निराश होकर लौटने लगे उसी समय एक देव आया और उस देवप्रदत्त हार को भी उठा ले गया। शासन देव ने उन दोनो भाइयो को उनकी त्याग की भावना के

१०—केशीकुमार श्रमण—महाप्रवाह वाले समुद्र मे नौका डगमगाने लगती है तो आप जिस नौका मे बैठे हुए हो वह नौका आपको समुद्र के पार कैसे पहुँचा सकती है ? और वह नौका कौनसी है ?

गौतम गणधर—अहो यतिराज ! सछिद्र नौका मे पानी भर जाने के कारण वह पारगामी नही होती किन्तु अछिद्र नौका ही पार पहुँचाने मे समर्थ होती है । हम जिस नौका मे बैठे है, वह अछिद्र नौका है । अत पार पहुँचाने मे समर्थ है । यह शरीर ही नौका है, जीव इसका नाविक है, ससाररूप समुद्र है । इस चतुर्गति रूप समुद्र को पार करने वाले महर्षि ही होते है ।

११—केशीकुमार श्रमण—घोर अन्धकार मे अनेको प्राणी है, इन प्राणियों के लिये लोक मे उद्योत कौन करता है ? वह सूर्य कौनसा है ?

गौतम गणधर—अहो व्रतीवर ! उदित हुआ सूर्य लोक मे सभी प्राणियो के लिये उद्योत करता है, प्रकाश करता है । वह सूर्य जिन भगवान है । जिनका ससार परिभ्रमण नष्ट हो चुका है, वे ही सारे विश्व मे उद्योत-प्रकाश करते है ।

१२—केशीकुमार—शारीरिक और मानसिक दु खो से दु.खित आत्मा के लिये क्षेम और शिव रूप आधि-व्याधि से रहित सभी उपद्रवो से रहित, दु खरहित स्थान कौनसा है ?

गौतम गणधर—अहो विज्ञवर ! चौदह राजु प्रमाण ऊँचे इस लोक के अग्रभाग मे एक ध्रुव स्थान है जो दुरारोह है । जहाँ जरा-मरण और व्याधि नही है । जीव को एक वार प्राप्त हो जाने पर फिर उसका वियोग नही होता है, वह ऐसा ध्रुव स्थान है । महर्षियो ने जिस स्थान को प्राप्त किया है, वह निर्वाण, सिद्धि, लोकाग, क्षेम, शिव और अव्यावाध इत्यादि वारह नामो से प्रसिद्ध है । वह स्थान शाश्वत है, चितारहित है ।

इस प्रकार गौतम गणधर के द्वारा अपने सभी प्रश्नो का समाधान सम्यग् प्रकार से पाकर केशीकुमार श्रमण अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे—हे महामुने ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । उन्होने गौतम को श्रुतसागर एव सशयातीत कहकर उनका अभिवादन किया । हे सर्वसूत्र-महोदधि ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । फिर सत्यप्रेमी और गुणग्राही होने से घोर पराक्रमी केशी ने शिर झुकाकर अपने शिष्यो सहित पाँच महाव्रतरूप धर्म को भाव से ग्रहण किया और प्रभु महावीर के भिक्षु सघ मे प्रविष्ट हुए ।

केशी और गौतम की इस ज्ञान गोष्ठी से श्रावस्ती मे ज्ञान, शील और धर्म का वडा अभ्युदय हुआ। उपस्थित सभी सभासद इस धर्मचर्चा से सतुष्ट होकर सन्मार्ग मे प्रवृत्त हुए। उत्तराध्ययन सूत्र के २३वें अध्ययन मे इन दोनो महापुरुषो के प्रश्नोत्तर का उल्लेख पद्य वद्ध रूप मे आता है।

श्रमण भगवत महावीर प्रभु भी श्रावस्ती नगरी पधारे। कुछ समय वहाँ ठहर कर वे पाचाल देश की अहिछत्रा नगरी मे पधारे। वहाँ से विहार कर हस्तिनापुर नगर पधारे। वहाँ सहस्राम्रवन में विराजे।

शिवराजर्षि की तत्त्वचर्चाएँ

हस्तिनापुर नरेश शिवराज वडे धर्मनिष्ठ व सतोषी थे। एक वार मध्यरात्रि मे नीद खुलने पर नरेश का चिन्तन जगा कि मेरे पास पुष्कल वैभव है, चतुरगिणी सेना है इसकी प्राप्ति का मूल कारण पूर्वभव मे सचित सुकृत है। अव मुझे भविष्य हेतु भी कुछ शुभ कर्म करना चाहिये। धीरे-धीरे वस्त्र जीर्ण होता हुआ एक दिन नष्ट हो जाता है वैसे ही मेरा यह तन धीरे-धीरे जीर्ण हो रहा है, एक दिन नष्ट हो जाएगा अत यह शरीर स्वस्थ है, तव तक मुझे कुछ साधना करनी चाहिये। ऐसा हृदय मे निश्चय करके प्रात होने पर पुत्र युवराज शिवभद्र का राज्याभिषेक किया। विपुल मात्रा मे चार प्रकार के आहार का निर्माण कराया। स्वजनादि को जिमाकर उनका योग्य सत्कार करके, सव के समक्ष अपने तापसी प्रव्रज्या के विचार रखे। सर्वानुमति प्राप्त करके लोही, लोहकडाह, कडुच्छुय, ताम्रभाजन आदि ग्रहण करके गगातटवासी दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ तापसो के समीप "दिशा-प्रोक्षक तापसी प्रव्रज्या" अगीकार कर ली। साथ ही यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि "आज से जीवन पर्यत छट्ठ-छट्ठ, दिशाचक्रवाल तप करूँगा।" शिवराज ऋषि वन गये।

पहली वार वेले के पारणे हेतु शिवराजर्षि तपोभूमि से अपनी कुटिया मे आये। वल्कल धारण किया, वाँस का पात्र और कावड (किढिण-साकायिका) को लेकर पूर्व दिशा का प्रोक्षण करते हुए वोले—"सोमदिशा के लोकपाल सोम! धर्म की साधना मे प्रवृत्ति करने वाला मैं शिवराजर्षि हूँ, मेरा रक्षण करो, और पूर्व मे स्थित कद-मूल-छाल-पत्र-पुष्प-फल और हरित वनस्पतियो को मै लेना चाहता हूँ आप आज्ञा प्रदान करे।"

इस प्रकार कहकर शिवराजर्षि साकायिका को लेकर पूर्व दिशा मे गये और कन्द-मूल, फल-पुष्प-दर्भ-कुश समिध पत्रामोट आदि लेकर अपनी

कुटिया मे आये। उन्हे एक तरफ रख कर अपने ही हाथो से वेदिका को साफ किया, फिर दर्भ सहित कलश को लेकर गगा के किनारे आये, स्नानादि क्रियाएँ की, पितरो को जल अर्पण किया, कलश भरकर पुन लौटे। कुटिया में आ, दर्भ-कुश और वालुका की वेदी बना, अरणि को शर से रगड कर अग्नि उत्पन्न की और समिध काष्ठो से उसे जलाया। अग्निकुण्ड की दाहिनी दिशा की ओर (१) सकह (सक्था), (२) वल्कल, (३) स्थान, (४) शय्या भाण्ड, (५) कमडल, (६) दण्ड, (७) आत्मा (स्वय) भी दाहिनी ओर बैठा। उसके पश्चात् मधु-घृत और चावल आदि से आहुति देकर चरु-वलि तैयार किया। फिर चरु से वैश्वदेव की पूजा की। तदनन्तर अतिथि का सत्कार करके स्वय (शिवराजर्षि ने) भोजन किया।

इसी प्रकार दूसरे वेले के पारणे मे दक्षिण दिशा और उसके लोक-पाल यम महाराज की अनुमति लेकर पूर्वविधि के अनुसार सारा कार्य करके पारणा किया।

तीसरे वेले के पारणे मे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण की अनुमति लेकर पूर्व विधि के अनुसार सारा कार्य-कलाप करने के पश्चात् पारणा किया।

यो ही चौथे पारणे मे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण की अनुमति ग्रहण करके पूर्ववत् सारा कार्य करके पारणा किया।

पाँचवी बार पुन पूर्व दिशा के समान सारा विषय समझ लेना चाहिये।

इस तरह लम्बे समय तक आतापनापूर्वक दिक्-चक्रवाल तप करते हुए शिवराजर्षि को विभगज्ञान उत्पन्न हो गया। वे उस ज्ञान के बल से सात द्वीप और सात समुद्र तक सभी स्थूल व सूक्ष्म रूपी पदार्थों को जानने व देखने लगे। इस नवीन ज्ञानोपलब्धि से शिवराजर्षि के मन मे बहुत प्रसन्नता हुई और वे सोचने लगे—'मुझे तपस्या के फलस्वरूप विशिष्टज्ञान उत्पन्न हुआ है। सात द्वीप और सात समुद्र के आगे कुछ भी नही है।' शिवराजर्षि तपोभूमि मे अपनी कुटिया मे आये और वल्कल पहना, लोह, लोहकुडुच्छुय, दण्ड, कमण्डल, ताम्रभाजन और साकायिका लेकर हस्तिनापुर के तापसाश्रम मे गये। भाजनादि सामग्री वहाँ रखकर हस्तिनापुर नगर मे गये और लोगों को अपने ज्ञान से जाने हुए सात द्वीप समुद्रो की बात बताई और यह भी कहा कि इससे अधिक द्वीप और समुद्र है ही नहीं।

समुद्र की तरगो को फैलते समय नही लगता, उसी तरह जनता मे शिव-राजर्षि के ज्ञान की वात फैल गई। चितनशीलो के दिल-दिमाग मे एक तरह से तहलका-सा मच गया।

उस समय श्रमण भगवत महावीर प्रभु हस्तिनापुर नगर मे पधारे। प्रभु की आज्ञा लेकर गणधर गौतम भिक्षार्थ नगर मे गये। जनता के मुंह से शिवराजर्षि के ज्ञान से देखे गये सात द्वीप समुद्र की वात सुनी। गौतम भिक्षा से लौट प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचे और सभा समक्ष ही प्रभु से पूछा—भगवन्! सात ही द्वीप-समुद्र हैं। क्या शिवराजर्षि का यह कथन सत्य है?

भगवान ने फरमाया—सात द्वीप समुद्र सम्वन्धी शिवराजर्षि का कथन असत्य है, मिथ्या है। जम्वूद्वीप आदि असख्य द्वीप है और लवण-समुद्र आदि असख्य समुद्र है। जम्वूद्वीप का आकार थाली के समान है और अन्य द्वीप समुद्रो का चूडी के आकार वर्तुल है। सभी का विस्तार भिन्न-भिन्न है। यानि जम्वूद्वीप लाख योजन का लम्वा-चौडा, लवण समुद्र दो लाख योजन का लम्वा चौडा, धातकीखण्ड द्वीप चार लाख योजन का और कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन का लम्वा चौडा है। इस तरह प्रत्येक द्वीप समुद्र पूर्व-पूर्व से द्विगुणित लम्वे-चौडे है। समवसरण मे बैठे हुए नाग-रिको ने यह वात सुनी और नगर मे प्रभु महावीर की वात फैल गई कि शिवराजर्षि का सात द्वीप-समुद्र का कथन मिथ्या है। प्रभु ने असख्यात द्वीप-समुद्र कहे है।

शिवराजर्षि ने भी प्रभु का कथन जन-जन के मुख से सुना तो सोचने लगे कि यह वात कैसे है? मैं तो सात ही द्वीप-समुद्र देख रहा हूँ और महावीर असख्यात द्वीप-समुद्र कह रहे है। ऐसा सकल्प-विकल्प करते-करते उनका विभगज्ञान लुप्त हो गया। शिवराजर्षि ने सोचा 'अवश्य ही मेरा ज्ञान अपूर्ण है, मेरे ज्ञान मे कमी है। महावीर का ही कथन सत्य होगा। भगवान महावीर सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी है तीर्थंकर हैं, अत मुझ सही निर्णय प्राप्त करने के लिए उनके पास जाना चाहिये।'

शिवराजर्षि अपने तापसाश्रम मे पहुँचे, अपने उपकरणो को लेकर तापसाश्रम से निकल कर नगर के मध्य मे होते हुए सहस्राम्रवन मे पहुँचे। प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके योग्य स्थान पर बैठ गये। प्रभु ने शिव-राजर्षि को और उस विराट् परिषद् को धर्मोपदेश दिया तो शिवराजर्षि के सरल व कोमल मन पर उसका वडा प्रभाव पडा। प्रभु को वन्दन-नमस्कार कर निवेदन किया—"प्रभो! मै आपकी वाणी पर श्रद्धा करता हूँ।

प्रभु महावीर—हे गौतम ! वह श्रमणोपासक (जिस की वस्तु चोरी मे चली गई थी) अपने पात्र की खोज करता है, अन्य के वस्त्र पात्रादि की अन्वेपणा नही करता है। जो वस्तु चोरी मे गई है वह उसे अपनी समझ कर खोज करता है, दूसरे की समझ कर खोज नही करता।

गौतम—भगवन् ! क्या शीलव्रत, गुणव्रत आदि प्रत्याख्यान और पौपधोपवास मे श्रावक के भाण्ड (पात्र) अभाण्ड (स्वामित्व से रहित) नही हो जाते ?

प्रभु महावीर—हाँ गौतम ! सामायिक, पौपधोपवास व्रत की स्थिति में अर्थात् जब तक वह सामायिक-पौपधव्रत मे रहता है तब तक उसका भाण्ड उसके लिये अभाण्ड माना जाता है क्योकि उसने उन भाण्ड आदि से अपना ममत्व उतने समय के लिये ही हटाया है, सदा के लिए नही। इसलिए उतने समय के लिए ही श्रमणोपासक का भाण्ड अभाण्ड हो जाता है।

गौतम—प्रभो ! श्रमणोपासक के सामायिक पौपध रूपव्रत अवस्था मे उसका भाण्ड अभाण्ड हो गया। उस समय उस भाण्ड की चोरी हुई। व्रत पूरा होने पर वह उसकी गवेपणा करता है तो वह अपने भाण्ड की गवेपणा करता है यह कैसे कह सकते है ? जब उसका भाण्ड ही नही रहा तो उसकी अन्वेपणा करने का उसे क्या अधिकार है ?

प्रभु महावीर—उपर्युक्त व्रत की अवस्था मे व्रती के मन मे यह वृत्ति होती है कि ये स्वर्ण-रजत-मणि रत्नादि पदार्थ मेरे नही है अर्थात् ममत्व नही रहता। वह उनका उपयोग उस समय नही करता किंतु उन पदार्थों पर से उसका ममत्व भाव सदा के लिए नही छूटता। ममत्व भाव नहीं छूटने के कारण वह पदार्थ अन्य का (पराया) नही होता, उसी का रहता है।

यह विपय भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ५ मे विस्तृत रूप से है।

गौतम—सामायिक पौपधव्रत की अवस्था मे श्रमणोपासक की पत्नी से कोई अनार्य पुरुप अनैतिक व्यवहार करे (व्यभिचार सेवन करे) तो क्या कहा जायेगा ? श्रमणोपासक की पत्नी के साथ अनैतिक व्यवहार किया या अपत्नी के साथ अनैतिक व्यवहार किया ?

प्रभु महवीर—पत्नी के साथ व्यभिचार किया किंतु अपत्नी से नही किया। यद्यपि सामायिक पौपध व्रत की अवस्था मे श्रमणोपासक की यह वृत्ति रहती है कि माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू, पत्नी आदि

कोई भी मेरे नही है। फिर भी उनके साथ जो प्रेमबन्धन है उसका समूल उच्छेद नही होता, अत पत्नी-सगम ही कहा जायेगा, अपत्नी-सगम नही।

आगे चलकर श्रमण भगवत महावीर प्रभु ने श्रावक के उनपचास (४६) भगो की व्याख्या बताते हुए श्रमणोपासक और आजीवक का भेद बतलाया है।

आजीवक भी अरिहत को देव मानते हैं। माता-पिता आदि की सेवा-शुश्रूषा करते है। गूलर, बड, बोर, शहतूत और पीपल इन पाँच फलो को नही खाते है तथा लहसुन प्याज आदि कद को भी उपयोग मे नही लेते है। बधिया किये हुए बैलो से काम नही लेते है। जब आजीवक उपासक भी इस तरह निर्दोष जीविका चलाते है तो श्रमणोपासक का तो कहना ही क्या ? श्रमणोपासक तो पन्द्रह कर्मादानो के त्यागी होते है।

इस वर्ष अनेक श्रमणो ने प्रभु की आज्ञा लेकर राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया। प्रभु ने यह वर्षावास राजगृह मे किया।

तीसवाँ वर्षावास : वाणिज्यग्राम

राजगृह का वर्षावास पूर्ण हुआ। प्रभु विहार कर पृष्ठचपा पधारे। पृष्ठचम्पा नरेश शाल ने प्रभु का पावन प्रवचन सुना, ससार से विरक्ति हुई। राजभवन मे आकर अपने विचार रखे और प्रस्ताव रखा कि राज्य का भार लघुभ्राता महाशाल सम्भाले। महाशाल ने बडे भ्राता के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा कि "जैसा उपदेश आपने सुना, वैसा ही मैंने भी सुना। जो भावना आपकी जागृत हुई है, वही भावना मेरे हृदय मे भी जग चुकी है। अत मै भी प्रभु के पास सयम स्वीकार करना चाहता हूँ।"

शाल-महाशाल की दीक्षा

महाशाल के अतिरिक्त अन्य कोई भी राज्य का उत्तराधिकारी न होने के कारण नरेश ने अपने भानजे गागली को बुलाया और उसका राज्याभिषेक करके दोनो (शाल-महाशाल) भ्राताओ ने प्रभु के श्रीचरणो मे सयम धारण किया। ग्यारह अगो का अध्ययन किया। दोनो भाइयो को केवलज्ञान हुआ। अन्त मे समूल कर्मो को नष्ट करके मोक्षश्री को प्राप्त किया।

दशार्णभद्र नरेश का स्वाभिमान

पृष्ठचम्पा से विहार कर प्रभु दशार्णपुर ।

पधारे। द्युतिपलाश उद्यान मे विराजे। जन-गण प्रभु को वदनार्थ और उपदेश सुनने हेतु पहुँचे। त्याग-वैराग्यमय प्रभु का पावन प्रवचन सुनकर जनता अपने-अपने घरो की तरफ लौट चुकी थी। उस समय पार्श्वापत्य मुनि प्रभु महावीर के समीप आये। कुछ दूर पर खड़े रहकर उन्होने प्रश्न पूछे।

१ गागेय—प्रभो ! नरकावास मे नारक जीव सातर (अन्तर सहित) उत्पन्न होते है या निरन्तर (बिना अतर के भी) उत्पन्न होते है ?

महावीर प्रभु ने फरमाया—हे गागेय ! नरक मे उत्पन्न होने वाले जीव सातर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी अर्थात् दोनो ही प्रकार से उत्पन्न होते है। इसी प्रकार असुरकुमारादि भवनपति के प्रश्न का भी उत्तर प्रभु ने फरमाया।

२ गागेय—प्रभो ! पृथ्वीकायादि ऐकेन्द्रिय जीव सातर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?

प्रभु महावीर—गागेय ! पृथ्वीकायादि पाँच स्थावरकाय के जीव सान्तर उत्पन्न नही होते किंतु वे अपने-अपने स्थानो पर निरन्तर उत्पन्न होते रहते है।

३ गागेय—प्रभो ! द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य और देव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर उत्पन्न होते है ?

प्रभु महावीर—अहो आयुष्मान् ! द्वीन्द्रिय यावत् देव सातर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

४ गागेय—प्रभो ! नारकी जीव सान्तर च्यवते है या निरन्तर च्यवते है।

प्रभु महावीर—अहो आर्य ! नैरयिक जीव सातर भी च्यवते हैं और निरन्तर भी। इसी प्रकार अठारह दण्डक के जीव सातर भी च्यवते है और निरतर भी च्यवते है। परन्तु पृथ्वीकायिकादि पाँच स्थावरकायिक निरतर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय जीव निरतर ही च्यवते है।

५ गागेय—प्रभो ! 'प्रवेशन' कितने प्रकार के है ?

प्रभु महावीर—गागेय ! "प्रवेशन" चार प्रकार का है—(१) नैरयिक प्रवेशन, (२) तिर्यंच प्रवेशन, (३) मनुष्य प्रवेशन और (४) देव प्रवेशन।

उसके पश्चात् भगवान ने विभिन्न नैरयिको के प्रवेशन के सम्बन्ध मे विस्तृत वर्णन किया।

६ गागेय—प्रभु ! तिर्यञ्च योनिक प्रवेशन कितने प्रकार का हैं ?

प्रभु महावीर—गागेय ! तिर्यञ्च योनिक प्रवेशन पाँच प्रकार का है। एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक प्रवेशन यावत् पचेन्द्रिय तिर्यंच प्रवेशन।

७ गागेय—प्रभु ! मनुष्य प्रवेशन कितने प्रकार का है ?

प्रभु महावीर—अहो गागेय ! मनुष्य प्रवेशन दो प्रकार का है—(१) सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशन और (२) गर्भज मनुष्य प्रवेशन।

८ गागेय—प्रभु ! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है ?

प्रभु महावीर—गागेय ! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है—(१) भवनपति देव प्रवेशनक, (२) वाणव्यतर देव प्रवेशनक, (३) ज्योतिपी देव प्रशवेनक और (४) वैमानिक देव प्रवेशनक।

इसके वाद चारो गति प्रवेशन के सम्बन्ध मे प्रभु ने विस्तार से वर्णन किया।

गागेय—प्रभो ! सत् नारक उत्पन्न होते है या असत् ? इसी प्रकार सत् तिर्यंचादि तीनो गति के प्रश्न पूछे।

प्रभु महावीर—गागेय सभी सत् उत्पन्न होते है, असत् कोई भी उत्पन्न नही होता। इसी प्रकार सत् च्यवते है, असत् नही च्यवते। सत् मरते है, असत् नही।

गागेय—प्रभु ! सत् की उत्पत्ति कैसी और मरे हुए की सत्ता किस प्रकार है ?

भ० महावीर—गागेय ! पुरुपादानीय पार्श्व अरिहत ने लोक को शाश्वत कहा है। उसमे सर्वथा असत् की उत्पत्ति नही होती और सत् का सर्वथा नाश भी नही होता।

यह उल्लेख भगवतीसूत्र मे सविस्तृत है।

गागेय अणगार—भगवन् ! आपने जो यह वस्तुतत्त्व वताया वह आप स्वय आत्मप्रत्यक्ष से जानते है या किसी हेतु, अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से ?

भ० महावीर—अहो गागेय ! यह सभी मै स्वय जानता हूँ। मैंने जो भी कहा वह आगम के आधार पर या अनुमान के आधार से नही कहा किंतु आत्म-प्रत्यक्ष से जानी-देखी हुई वात हो कही है और कहता हूँ।

गागेय—भगवन् ! अनुमान और आगम के आधार विना यह विषय किस प्रकार जाना जा सकता है ?

४. गौतम—प्रभो ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना वाला आराधक जीव कितने भवो तक परिभ्रमण करता है ?

भ० महावीर—गौतम ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना वाला जीव उसी भव मे अलेशी, अयोगी होकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होता है। कितने ही जीव दो भवो मे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते है। कितने ही जीव कल्पोपपन्न (१२ देवलोक मे) में उत्पन्न होते है और कितने ही जीव कल्पातीत (नवग्रैवेयक) और ५ अनुत्तर (विमान) मे उत्पन्न होते है। इसी प्रकार दर्शनाराधना और चारित्राराधना के विषय मे गौतम ने शकाएँ रखी। भगवान ने शकाओ का समाधान किया।

पुद्गल परिणाम का स्वभाव

१ गौतम—प्रभो ! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का है ?

भ० महावीर—अहो गौतम ! वर्ण-गध-रस-स्पर्श और सस्थान रूप पुद्गल परिणाम पाँच प्रकार का है।

कृष्ण, नील, लोहित, हरिद्रा और शुक्ल यो पाँच प्रकार का वर्ण परिणाम है। सुरभिगध और दुरभिगध रूप दो प्रकार का गध परिणाम है। तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस रूप रस परिणाम पाँच प्रकार का है। स्पर्श परिणाम कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, उष्ण, शीत, स्निग्ध और रूक्ष रूप आठ प्रकार का है। परिमण्डल, वर्तुल, त्र्यश, चतुरस्र और आयत यो सस्थान परिणाम पाँच प्रकार का है।

पुद्गलो के विषय मे और भी अनेको शकाएँ गौतम ने प्रभु के समक्ष रखी। प्रभु ने सम्यक् प्रकार से समाधान दिया जिसका उल्लेख भगवती सूत्र, शतक ८, उद्देशक १० मे है।

क्या जीव और जीवात्मा भिन्न है ?

गौतम—प्रभो ! अन्यतीर्थिको का अभिमत है कि प्राणातिपात, मृषावाद आदि अठारह दुष्ट भावो मे प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव अलग है और उसका जीवात्मा अलग है ? इसी प्रकार उपर्युक्त दुर्गुणो का परित्याग करके धर्ममार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले का जीव भिन्न है और जीवात्मा भिन्न है।

औत्पातिकी, वैनयिकी, पारिणामिकी और कार्मिकी बुद्धियुक्त जीव पृथक् है और जीवात्मा पृथक् है ?

पदार्थ का ज्ञान-तर्क-निश्चय और अवधारण करने वाले का 'जीव अलग है और जीवात्मा अलग है ?

अज्ञान और पराक्रम करने वाला है उसका जीव भिन्न है और जीवात्मा भिन्न है ?

चारो गतियो के देहधारियो का जीव अलग है और जीवात्मा अलग है ?

इसी प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मवान्, कृष्ण, नीलादि लेश्यावान्, दृष्टिवान्, दर्शनवान् और ज्ञानवान् आदि सभी का जीव अलग है और जीवात्मा अलग है—ऐसा जो कहते है इस सबध मे सत्यता की जानकारी मैं आपश्री के द्वारा जानना चाहता हूँ ?

महावीर प्रभु ने समाधान करते हुए कहा—हे गौतम ! अन्यतीर्थिको का यह अभिमत मिथ्या है। जीव और जीवात्मा एक ही पदार्थ है। जो जीव है वही जीवात्मा है किन्तु पृथक्-पृथक् नही है। ऐसा मेरा स्पष्ट मन्तव्य है।

केवलज्ञानी की भाषा

गौतम—प्रभो ! अन्यतीर्थिको की विचारधारा ऐसी सुनने मे आती है कि केवलज्ञानी भी यक्षाविष्ट तथा परवश होकर असत्य अथवा सत्यमृपा भापा वोलते है। क्या प्रभो ! केवली ये दो भापा वोल सकते है ?

गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते प्रभु ने फरमाया—अहो गौतम ! अन्यतीर्थिको की जो विचारधारा है वह बिल्कुल मिथ्या है। केवली को कभी भी यक्षावेश नही होता और न वे असत्य भापा या सत्यमृपा भाषा वोलते है। केवली की भापा सदा ही अपीडाकारी और असावद्य होती है। वे सदा सत्य भापा ही वोलते है।[1]

गागलि राजा का उद्धार

राजगृह मे अनेको प्रश्नोत्तर धर्मचर्चाएँ हुई। तदनन्तर प्रभु ने राजगृह से चपा को प्रयाण किया। शाल महाशाल मुनि ने अपने भाणेज गागलि को राज्यभार सौपकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। उन्हे उस समय विचार जगा और प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँच वदन-नमस्कार कर निवेदन किया—"प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो हम पृष्ठचपा के राजा गागलि को प्रतिवोध

---

१ भगवतीसूत्र, शतक १७, उ० ३।

देवे।" प्रभु ने गौतम गणधर के साथ शाल-महाशाल मुनियो को पृष्ठचम्पा जाने की आज्ञा दे दी।

गौतमादि पृष्ठचम्पा पधारे। गागलि नरेश को यह सदेश मिला कि मामा मुनि गौतम गणधर के साथ यहाँ पधारे है तो उनके हर्ष का पार न रहा। बडे हर्ष और उल्लास के साथ वन्दन करने और उपदेश सुनने के लिये पहुँचे। ससार की असारता, जीवन की क्षणभगुरतामय उपदेश श्रवण कर गागलि नृप को तथा उनके पिता पिठर और माता यशोमति को वैराग्य हुआ। पुत्र को राज्य देकर सभी ने दीक्षा ग्रहण की।

गणधर गौतम ने, शाल-महाशाल मुनि तथा नवदीक्षित गागलि मुनि, पिठर मुनि आदि के साथ पृष्ठचम्पा से चम्पा की तरफ विहार किया। प्रभु महावीर उस समय चम्पा मे विराज रहे थे। मार्ग मे शाल-महाशाल मुनि मे चितन जगा कि वहन, वहनोई ओर भानजा सभी प्रव्रजित हो गये, वहुत ही सुन्दर हुआ। इनकी आत्मा मे सयम की जागृति हुई। इधर गागलि मुनि विचार करने लगे—धन्य है दोनो ही मामा मुनि जिनकी कृपा से मुझे राज्यलक्ष्मी भोगने का सुअवसर मिला और इनकी ही अपार-असीम कृपा से अव मोक्ष लक्ष्मी का सुख प्राप्त करने का मार्ग मिला। इस प्रकार चितन करते-करते वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ हुए और शुभध्यान मे उन्हे केवलज्ञान हो गया। गौतम गणधर चम्पानगरी मे आये। साथ मे चारो मुनि भी थे। प्रभु को वन्दन-नमस्कार किया। मुनि केवली परिषद् की तरफ वढे। गौतम ने कहा—श्रमणो! आपको यह ज्ञात नही है, आप किधर जा रहे है, इधर आकर भगवान को वन्दन करो।

अनुगौतममायाता पञ्चानामपि वर्त्मनि।
शुभभाववशात्तेषामुदपद्यत केवलम्॥

—त्रिषष्टि० १०/६/१७६

भगवान ने कहा—गौतम! केवली की आशातना मत करो।

गौतम चुप हो गये और मुनिगण केवलि परिषद में जा वैठे।

पन्द्रहसौ तापस

प्रस्तुत घटना के साथ सलग्न एक अन्य घटना भी प्रसिद्ध है, जिसकी चर्चा आचार्य अभयदेव ने भगवतीसूत्र की टीका मे (१४/७) एव नेमिचन्द्र ने उत्तराध्ययन की टीका (१०/१) में व कल्पसूत्र की टीकाओ मे की है। वह इस प्रकार है :—

कोडिन्न, दिन्न और सेवाल नाम के तीन तापसो के गुरु थे। प्रत्येक के पॉच-पॉच सौ शिष्य थे, यो पन्द्रह सौ तीन तापस अष्टापद पर्वत पर आरोहण कर रहे थे। सभी तपस्या से अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। कोडिन्न तापस पॉच सौ शिष्यो के साथ पहली मेखला तक चढा था। दिन्न का परिवार दूसरी मेखला तक चढा था। सेवाल का परिवार तीसरी मेखला तक आरोहण कर गया था। अष्टापद पर्वत पर एक-एक योजन की आठ मेखलाएँ थी। ऊपर चढने से तापस खिन्न होकर बैठे थे। तभी गौतम स्वामी उधर से आये और देखते-ही-देखते, लब्धिबल से अष्टापद पर्वत के शिखर पर चढ गये। गौतम के इस तपोबल से सभी तापस बहुत प्रभावित हुए। उनके मन मे यह आश्चर्य हुआ कि हम तो एक-एक मेखला पार करने मे भी थककर चूर हो गये है और यह महान् तपस्वी एकदम शिखर तक जा पहुँचा। अवश्य ही यह महान् लब्धिधारी और तपोबली है। जब ये तपस्वी अष्टापद से उतर कर आयेगे तो हम इनके शिष्य बन जायेगे।

इन्द्रभूति गौतम शिखर से पुन नीचे आए। तापसो ने विनयपूर्वक कहा—आप हमारे गुरु हैं, और हम आपके शिष्य है। तापसो के आग्रह पर गौतम स्वामी ने उनको दीक्षा दी। अपने अक्षीणमहानसलब्धि के बल से खीर के एक ही भरे हुए पात्र से पन्द्रह सौ तापस श्रमणो को भरपेट भोजन भोजन कराया। अपने गुरु का यह अद्भुत लब्धिबल देखकर सभी तापस श्रमण बडे प्रसन्न हुए। उन सभी तापस श्रमणो को गौतम प्रभु महावीर के समवसरण मे लेकर आए। गौतम स्वामी एव भगवान के गुण-चिन्तन से उत्कृष्ट परिणाम होने पर उन्हे भी कैवल्य प्राप्त हो गया। वे भी उसी प्रकार केवली परिषद् मे जाने लगे तब भगवान् ने स्थिति का स्पष्टीकरण किया।[1]

हाँ तो, भगवान् की बात सुनकर गौतम को बहुत आश्चर्य हुआ और साथ ही अपनी छद्मस्थता पर खेद हुआ कि मेरे शिष्य तो सर्वज्ञ हो गये और मैं अभी तक छद्मस्थ ही रहा। गुरुजी गुड ही रहे और चेले शक्कर हो गये—सचमुच यह कहावत चरितार्थ हो रही है।

गौतम को चिन्ता हुई

अपने शिष्यो का विकास देख गौतम के मन मे ईर्ष्या तो नही किन्तु

---

१ पन्द्रह सौ तापसो का विषय 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' लेखक देवेन्द्र मुनि शास्त्री' से उद्धृत है।

कुछ विचार पैदा हुए। वे स्वय सोचने लगे—इतनी तपस्या, स्वाध्याय, ध्यान, साधना के होते हुए तथा प्रभु के प्रति मेरी अनन्य श्रद्धा है फिर भी मै छद्मस्थ कैसे रह गया ? मेरी साधना मे कहाँ कमी है ? ऐसी कौनसी रुकावट है जिससे मुझे कैवल्यश्री प्राप्त नही हो रही है ? काफी आत्म-निरीक्षण करने पर भी उन्हे कोई कारण ध्यान मे नही आया। चिन्ता और बढती गई, तब श्रमण भगवन्त महावीर प्रभु ने उनकी चिन्ता का निवारण करने के लिए कहा—"गौतम ! दो बध है—रागबध और द्वेष-बध। तुम्हारे मन मे मेरे प्रति स्नेहबन्धन है, अनुराग है, अत तुम मोह-नीय कर्म को नष्ट नही कर पा रहे हो। वस्तुत यही मोहनीय कर्म कैवल्यश्री को रोक रहा है। भगवतीसूत्र, शतक १४, उद्देशक ७ मे यह प्रकरण सविस्तार कहा गया है।

अहो गौतम ! इसी भव मे नही अतीतकाल से मेरे साथ तुम स्नेह बधन से बधे हुए हो ? अनेको भवो से मेरी सेवा करते रहे हो। देव और मनुष्यभव मे भी तुम्हारा स्नेहबधन रहा हुआ है। इस सुदीर्घ स्नेहबधन को मैंने तोड लिया है किन्तु तुम नही तोड पाये हो। केवलज्ञान कोई दूर नही है। स्नेहबधन को तोडने पर ही यह निहित है। तुम भी बहुत शीघ्र यानि इसी भव से मोहकर्म को नष्ट कर कैवल्यश्री प्राप्त करोगे। हम दोनो समान है और सिद्धि मे कोई अन्तर नही है।

स्वय प्रभु ने फरमाया कि तुम भी मेरे समान सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनोगे। यह सुन गौतम की सारी चिन्ता मिट गई और मन मे अपूर्व प्रसन्नता जग उठी।

मद्दुक श्रावक

प्रभु महावीर चम्पा से विहार कर पुन राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य मे पधारे। चैत्य के पास कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदक, नामोदक, अन्नपाल, सुहस्ती, गाथापति आदि अन्यतीर्थिक रहते थे।

एक दिन अन्यतीर्थिको मे पचास्तिकाय के विषय मे तर्क-वितर्कपूर्ण चर्चा चल रही थी।

श्रमण भगवत महावीर प्रभु नगरी के बाहर पधारे है यह जानकर राजगृह का श्रद्धालु श्रमणोपासक मद्दुक प्रभु को वदनार्थ अपने घर से निकला। तापसाश्रम के समीप से मद्दुक को जाते देखकर कालोदायी आदि तापसो ने अपने स्नेही साथियो से कहा—"यह मद्दुक महावीर के

सिद्धान्तो को अच्छी तरह जानता है अत. इस समय जो चर्चा का विपय चल रहा है उस विपय मे इसके विचार जान लेना चाहिए ।"

वे सभी मद्दुक के समीप आये, और सबोधन करके कहा—मद्दुक ! तुम्हारे धर्माचार्य पचास्तिकाय मे एक को जीव और चार को अजीव, एक को रूपी अन्य को अरूपी कहते है । इस विपय मे तुम्हारा अभिमत क्या है ? और अस्तिकायो के सबध मे तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?

मद्दुक—अस्तिकाय अपने-अपने कार्य से जाने जाते है । ससार मे कुछ पदार्थ रूपी (दृश्य) और कुछ पदार्थ अरूपी (अदृश्य) होते है, जो अनुभव, अनुमान और कार्य से जाने जाते है ।

अन्य तीर्थिक बोले—अहो मद्दुक ! अपने धर्माचार्य के कहे हुए द्रव्यो को जानते नही, देखते नही फिर भी उसे कैसे मानते हो ?

प्रतिप्रश्न करते हुए मद्दुक श्रमणोपासक ने कहा—हवा चल रही है, क्या तुम्हे उसका रग-रूप दिखाई देता है ?

अन्य तीर्थिक बोले—हे मद्दुक ! हवा अति सूक्ष्म है अत उसका रूप दिखाई नही देता है ।

मद्दुक—सुगन्ध के पुद्गल जो नाक के द्वारा ग्रहण करते हो, क्या तुम उनका रग-रूप देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—सुगन्ध के परमाणु भी सूक्ष्म होने से देखे नही जाते ।

मद्दुक- अरणी नाम की लकडी मे अग्नि रहती है । क्या वह अग्नि आप को दिखाई देती है ? उसका रग रूप आप देख सकते है ? देवलोक मे रहे हुए रग रूप वैभव को देख सकते है आप ? जिन्हे आप देख नही सकते है क्या वे वस्तु नही है ? दृष्टिगत नही होने वाले पदार्थो को यदि आप नही मानेगे तो ऐसी अनेक वस्तुओ का भी आपको निपेध करना होगा । भूतकाल की वशपरम्पराओ को भी छोडना पडेगा ।

इस प्रकार की चर्चा का अन्यतीर्थिक प्रत्युत्तर न दे सके, उन्होने मद्दुक की बात स्वीकार कर ली ।

अन्यतीर्थिको से चर्चा कर मद्दुक प्रभु महावीर के समवसरण मे पहुँचे । प्रभु ने फरमाया—अहो मद्दुक ! तुमने अन्यतीर्थिको को उत्तर दिया, वह बहुत ही अच्छा है । वह उचित और यौक्तिक है । ज्ञानचर्चा कर अपने स्थान पर मुद्दुक लौट गया ।

प्रभु के मुख से मद्दुक की बातें सुनकर गणधर गौतम ने निवेदन किया—प्रभो ! क्या यह श्रावक अणगार धर्म ग्रहण करेगा ? क्या यह आपका श्रमण शिष्य बनेगा ?

प्रभु ने फरमाया—अहो गौतम ! मद्दुक अणगारधर्म ग्रहण करने मे समर्थ नही है। यह आगार धर्म की आराधना करके समाधिपूर्वक आयु-पूर्ण कर पाँचवे ब्रह्मदेवलोक के अरुणाभ विमान मे देव होगा। फिर मानव बनकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा।[1]

अनेको क्षेत्रो मे धर्म की प्रभावना करते हुए प्रभु ने यह वर्षावास राजगृह नगर के नालदा उपनगर मे किया।

चौंतीसवाँ वर्षावास : नालन्दापाड़ा

वर्षावास पूर्ण होने पर प्रभु नालन्दापाडा से विहार कर राजगृह के गुणशीलक चैत्य मे पधारे। प्रभु की आज्ञा लेकर गौतम राजगृह नगर मे गोचरी हेतु गए। भिक्षा लेकर लौट रहे थे। मार्ग मे कालोदायी, शैवालोदायी, शैलोदायी आदि अनेको अन्यतीर्थिको के मध्य पचास्तिकाय के विषय मे चर्चा चल रही थी। गौतम को देख उनके समीप आये, अपनी चर्चा का विषय उनके समक्ष रखते हुए पूछा—

"आपके धर्माचार्य ज्ञातृपुत्र श्रमण भगवान महावीर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि पचास्तिकायो का निरूपण करते है, इसका क्या रहस्य है ? और इन रूपी-अरूपी कार्यो के सबध मे कैसा क्या समझना चाहिए। आप उनके प्रधान शिष्य है, अत जरा स्पष्ट समाधान कर दीजिये।"

गौतम—हम वस्तु स्थिति का यथातथ्य निरूपण करते है। हम अस्ति को अस्ति और नास्ति को नास्ति कहते है। अस्तित्व मे नास्तित्व और नास्तित्व मे अस्तित्व कदापि नही कहते। अस्ति नास्ति का स्वरूप समझने पर रूपी और अरूपी पदार्थ तथा पंचास्तिकाय का स्वरूप समझ मे आ जाएगा।

इतना कहकर गौतम आगे उद्यान की तरफ बढ गये।

कालोदायी तथा अन्यतीर्थिक गौतम के पीछे-पीछे ही उद्यान मे पहुँचे। श्रमण भगवत महावीर ने कालोदायी को सबोधित करते हुए कहा—

---

१ भगवतीसूत्र, शतक १८, उद्देशक ७

"तुम्हारे साथियो के साथ पचास्तिकाय के सबध मे चर्चा चल रही है, क्या यह बात यथार्थ है ?

कालोदायी—हाँ प्रभो ! जब से हमने आपश्री के मुखारविंद से पचास्तिकाय के बारे विचार सुने तब से ही हम सभी उस पर तर्क-वितर्क कर रहे थे। प्रभो ! अरूपी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय पर बैठने, उठने, लेटने, खडे रहने मे क्या कोई समर्थ है ?

प्रभु महावीर—कालोदायो ! अरूपी धर्मास्तिकाय आदि पर बैठने, लेटने आदि क्रिया नही हो सकती है। किन्तु रूपी अजीव काय पुद्गलास्तिकाय है, उसी पर बैठने आदि की क्रिया हो सकती है।

कालोदायी ने जिज्ञासापूर्वक पुन पूछा—प्रभो ! जीवो के दुष्ट-विपाक रूप कर्म पुद्गलास्तिकाय मे लगते है या जीवास्तिकाय मे लगते है ?

प्रभु महावीर—अहो कालोदयी ! कर्म कर्त्ता को ही लगते है। कर्म का कर्त्ता जीव है, पुद्गल नही। जीवो के दुष्ट विपाक रूप पाप तथा सब ही प्रकार के कर्म जीवास्तिकाय मे ही किये जाते है अत जीवास्तिकाय मे ही होते है। धर्मास्तिकायादि जड है, जड मे कर्म नही किये जाते हैं।

कालोदायी को शका का सम्यक् प्रकार से समाधान पाने पर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। प्रभु से धर्मोपदेश सुनने की भावना व्यक्त की। प्रभु ने उपदेश दिया। कालोदायी ने त्याग का स्वरूप समझा। प्रभु के श्रीचरणो मे अणगार धर्म स्वीकार किया। आचारागादि ग्यारह अगो का सविनय अध्ययन किया।[1]

उदकपेढाल और गौतम

राजगृह नगर के ईशानकोण मे नालदा नाम का एक उपनगर था। वह गगनचुम्बी उच्च प्रासादो से सुशोभित था।

निर्ग्रन्थ प्रवचन पर दृढ श्रद्धा रखने वाला दृढधर्मी प्रियधर्मी श्रीमन्त सेठ "लेव" वहाँ रहता था। "शेषद्रविका" नामक उसकी एक सुन्दर "उदकशाला" थी। शेषद्रविका नाम रखने कारण यह कहा जाता है कि गृह निर्माण से बचे हुए द्रव्य से वह शाला बनाई गई थी एतदर्थ उसका नाम "शेषद्रविका" रखा गया।

---

१. भगवतीसूत्र, श० ७, उ० १३

प्रभु महावीर अपने शिष्य समुदाय के साथ राजगृह के उपनगर नालदा मे स्थित "शेषद्रविका" नामक उदकशाला मे विराज रहे थे। उस समय प्रभु पार्श्वनाथ के श्रमण मेतार्य गोत्रीय पेढालपुत्र उदक निर्ग्रन्थ नामक भी वही निकट ही ठहरे हुए थे। उन्होने गौतम गणधर से पूछा—

"आपके प्रवचन का उपदेश करने वाले कुमारपुत्रीय श्रमण श्रमणोपासको को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं कि 'राज आज्ञा के कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने-छोडने के अलावा मैं त्रस जीवो की हिसा नही करूँगा' अहो आर्य ! यह प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही है किन्तु दुष्प्रत्याख्यान है। जो इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हे वे सुप्रत्याख्यान नही किन्तु दुष्प्रत्याख्यान कराते हे। इस ढग से प्रत्याख्यान करने और कराने वाले को यह अतिचार लगता है 'स्थावर जीव मर कर त्रस रूप मे उत्पन्न होते हे और त्रस जीव स्थावर मे उत्पन्न होते हैं। इसलिये जो जीव त्रस रूप मे अघात्य थे वे स्थावर रूप मे उत्पन्न हो गये तो घात्य हो गये।' इसलिये प्रत्याख्यान सविशेष करना और कराना चाहिये। प्रत्याख्यान मे इस प्रकार का विशेषण जोडना चाहिये कि 'त्रसभूत जीवो की हिसा नही करूँगा।' 'भूत' विशेषण से उपर्युक्त दोष टल जायगा। अहो गौतम ! मेरी बात आपको कैसी जचती है ?"

गौतम गणधर ने उदकपेढाल को सबोधित करते हुए कहा—

तुम्हारा कथन युक्तिसगत नही है। मेरी दृष्टि मे ऐसा कहने वाला श्रमण-ब्राह्मण सत्य भाषा नही बोलता और श्रमण-ब्राह्मणो पर झूठा आरोप लगाता है। यहाँ तक कि प्राणी विशेष की हिसा को छोडने वाले को भी दोषी बतलाता है। ससारी प्राणी त्रसकाय से स्थावरकाय और स्थावरकाय से त्रसकाय मे उत्पन्न होते है। त्रस मे उत्पन्न होने वाले "त्रस" कहलाते है। जिसने त्रस जीवो की हिसा का प्रत्याख्यान किया है उसके लिये वे अघात्य है अत प्रत्याख्यान मे "त्रसभूत" ऐसा विशेषण लगाने की आवश्यकता नही है। दूसरी बात आप जिन जीवो को "त्रस भूतप्राण" कहते हैं उन्ही को हम "त्रसप्राण" कहते है। एतदर्थ ये दोनो एकार्थ वाचक है, इनमें वास्तविक भेद नही है। इस प्रकार दो वाक्यो मे एक को मान्य करना और दूसरे का निषेध करना यह न्याय नही है।

कितने ही व्यक्ति ऐसे हे जो कहते है कि हमे श्रमणधर्म की रुचि है किन्तु अभी हम गृहस्थाश्रम का त्याग कर श्रमणत्व स्वीकार करने मे समर्थ नही है अत अपनी अविरति रूप प्रवृत्तियो को मर्यादित करते हुए

देशव्रत धारण करते हैं। आगारी गृहस्थ राजाज्ञा से गृहपति या चोर के बाँधने व छोडने के अलावा हम त्रस जीवो की हिंसा नही करेंगे। यह उनका देशव्रत है।

अहो आर्य उदक! अपने कहा कि त्रस जीव मर कर स्थावरकाय मे उत्पन्न हो जाता है तो त्रस की हिंसा के त्यागी के हाथ से उन जीवो की हिंसा होने से उसके व्रतो मे भग आता है, यह ठीक नही है, क्योकि त्रसनामकर्म का क्षय करके त्रस गति का आयु क्षीण हो जाने पर जीव स्थावर मे जाकर उत्पन्न हो जाते हैं उस समय वे जीव स्थावरकायिक कहलाते है, त्रसकायिक नही।

उदकपेढाल ने पुन प्रश्न रखा—कभी ऐसा भी समय आ सकता है कि समस्त त्रस जीव स्थावर के रूप मे उत्पन्न हो जाएँ तब त्रस जीव के अघातक श्रमणोपासक का त्रस की हिंसा का त्याग किस प्रकार रह सकेगा?

गौतम—अहो आयुष्मन् उदक! आपने जो बताया कि समस्त त्रस जीव स्थावर मे उत्पन्न हो जाएँ तो प्रत्याख्यान कैसे रह सकेगा, ऐसा हमारे सिद्धान्तानुसार कभी हो ही नही सकता। कदाच् कुछ समय के लिये ऐसा मान भी लें, तब भी श्रमणोपासक के त्रस-हिंसा-प्रत्याख्यान मे कोई भी रुकावट नही आती क्योकि स्थावर जीव की हिंसा मे उसका व्रत खण्डित नही होता है और त्रस जीव की हिंसा तो वह करता ही नही है।

इस प्रकार गणधर गौतम और उदकपेढाल का सवाद चल ही रहा था कि अन्य पार्श्वापत्य स्थविर भी वहाँ आ पहुँचे। गौतम ने उन्हे सबोधित करके प्रश्न पूछा—अहो आयुष्मान् निर्ग्रन्थो! किसी मनुष्य को यह नियम है कि जो ये अनगार साधु हैं उनको जीवन पर्यंत मैं नही मारूँगा। उनमे से कोई श्रमण श्रामण्यावस्था को छोड कर गृहवास मे चला जाय और श्रमण हिंसा का त्यागी गृहस्थ गृहवास मे रहते हुए पुरुष की हिंसा करता है तो क्या उसकी मर्यादा खण्डित होती है?

निर्ग्रन्थ स्थविरो ने उत्तर देते हुए कहा "प्रतिज्ञा भग नही होगी।"

गौतम ने निर्ग्रन्थो को सबोधित करते हुए कहा कि इसी तरह से त्रसकाय की हिंसा का प्रत्याख्यानी श्रमणोपासक स्थावरकाय की हिंसा करता हुआ भी अपने व्रतो का भग नही करता।

गौतम ने पुन प्रश्न किया—कोई गृहवासी या उसकी सतान वीतराग धर्म को सुनकर श्रमण बन जाता है, उस समय वह सर्वथा हिंसा का त्यागी कहलाएगा या नही?

निर्ग्रन्थ—उस समय वह सर्वथा हिसा का त्यागी कहलाएगा।

गौतम—वह श्रमण कुछ वर्ष तक सयम पर्याय का पालन कर पुन गृहस्थ वन जाय तो क्या वह सर्वथा हिसा का त्यागी कहला सकता है ?

निर्ग्रन्थ—वह गृहवासी सर्वथा हिसा का त्यागी श्रमण नही कहला सकता है।

गौतम—जैसे पहले सयत और बाद मे असयत व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्यागी नही कहला सकता वैसे ही त्रसकाय से स्थावरकाय मे गया हुआ जीव स्थावर है, त्रस नही।

एक और उदाहरण लीजिये कोई अन्यतीर्थिक परिव्राजक या परिव्राजिका अपने मत से निकल कर निर्ग्रन्थ धर्म मे श्रमणत्व स्वीकार कर लेता है, उस निर्ग्रन्थ के साथ अन्य श्रमण आहार-पानी आदि का व्यवहार कर सकते है या नही ?

निर्ग्रन्थ—आहार-पानी आदि का व्यवहार कर सकते है।

गौतम—श्रमण बना हुआ पुरुष पुन. गृहस्थ हो जाए तो क्या उसके साथ भी श्रमण आहारादि का व्यवहार कर सकते है ?

निर्ग्रन्थ—नही कर सकते।

गौतम—जो पूर्व मे श्रमण थे अब नही, उनके साथ श्रमणोचित व्यवहार नही रखा जा सकता, ठीक वैसे ही त्रसकाय से स्थावरकाय मे गया हुआ जीव त्रस नही किंतु स्थावर ही कहलाएगा। उसके घात से त्रसहिंसात्यागी को कोई दोष नही लग सकता।

इसी तरह अनेको दृष्टान्तो के द्वारा उदकपेढाल के तर्क का गौतम गणधर ने समाधान किया।

ससार के समस्त जीव स्थावर बन जाएँगे, ऐसा जो प्रश्न उदक ने रखा, उसका समाधान करते हुए गौतम ने कहा—जो श्रमणोपासक आगारधर्म का पालन करते हुए आयु के अन्त मे अनशनपूर्वक समाधिमरण मे मरते है और जो श्रमणोपासक जीवन मे तो व्रत आदि नहीं धारण करते किन्तु अन्तिम समय मे अनशनपूर्वक समाधिमरण को प्राप्त होते है। तो आपकी दृष्टि मे उसका मरण कैसा है ?

निर्ग्रन्थ—वह मरण प्रशसनीय है।

गौतम—समाधिमरण से मृत्यु प्राप्त जीव त्रस के रूप मे उत्पन्न होते है और वे ही जीव देशव्रत के धारक भी हो सकते है। बहुत से मानव

महारभी, महापरिग्रही अपने अशुभ कर्मो से अशुभगतियो मे उत्पन्न होते है, अनारभी श्रमण और अल्पारभी श्रमणोपासक मरकर शुभ गतियो मे उत्पन्न होते है। आरण्यक, राहसिक आदि तापस मरकर भवान्तर मे असुरो की गतियो मे उत्पन्न होते हैं, और वहाँ से निकलकर मनुष्य वनते है। दीर्घायुष्क, समायुष्क और अल्पायुष्क जीव मरकर पुन त्रसकाय मे उत्पन्न होते है ? उपर्युक्त सभी प्रकार के जीव यहाँ पर त्रस है और मरकर भी त्रसरूप मे उत्पन्न होते हैं। ये सभी त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय होते है। कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रतधारी तो नही किन्तु देशावकाशिक व्रतधारी है। सीमित क्षेत्र से वाहर जाने का प्रत्याख्यान करते है। उस सीमित क्षेत्र मे रहे हुए त्रस जीव मरकर त्रस होते है या स्थावर जीव मरकर त्रस होते है। स्थावर जीवो की निरर्थक हिंसा के भी श्रमणोपासक त्यागी होते हैं, वे श्रमणोपासक के व्रत का विषय है।

निर्ग्रन्थो ! ऐसा कदापि नही हो सकता कि सभी त्रस जीव मरकर स्थावर हो जायें और सभी स्थावर जीव मरकर त्रस हो जाएँ। जव ससार की ऐसी स्थिति है तो त्रस-स्थावर का कोई भी ऐसा पर्याय नही जो श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान का विषय हो। यह कथन तर्कसगत नही है, निष्कारण ही ऐसी वातो को लेकर मतभेद करना कदापि उचित नही है।

अहो उदक ! जो श्रमण व्राह्मण की निदा करता है वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त करके भी आराधक नही वन सकता और जो गुणी श्रमण व्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्रभाव से देखता है वह ज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर आराधक वनता है।

उदकपेढाल को गौतम गणधर की शिक्षाप्रद वाते सुनकर कुछ मन मे चुभन हो गई हो, कुछ झुंझलाहट आ गई हो, एतदर्थ तत्त्वचर्चा के वाद किसी भी प्रकार का अभिवादन किये विना चलने ही लगा कि गौतम को उसका यह अविनयपूर्ण व्यवहार उचित न लगा, सोचा—जिसका धर्म ही विनयमूलक है और वह इस प्रकार की तत्त्वचर्चा करके अविनयपूर्ण व्यवहार करे, यह उचित नही है। गौतम ने उसकी उपेक्षा नही करते हुए उठते-उठते उदकपेढाल से कहा—"अहो उदक ! **एगमवि सुवयणं** एक भी सुप्रवचन जिसके द्वारा सुनने को मिला हो, योग-क्षेम का उत्तम मार्ग दिखलाया हो तो क्या उसके प्रति कुछ भी आभार प्रदर्शित किये बिना चले जाना उचित है ?"

स्नेहपूर्ण वचन सुनकर उदकपेढाल वही रुक गया। सम्भ्रमित सा हो कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित कर क्या व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार विचारो मे निमग्न हो गया।

गौतम ने कहा—अहो आयुष्मन्! मेरे विचारो से तो ऐसे उत्तम व्यक्ति को मगलमय कल्याणकारी देवता स्वरूप मानकर उसकी पर्युपासना करनी चाहिये।

हित-मित और निर्भीक वचनो को सुनकर उदकपेढाल का हृदय गद्‌गद हो गया। अपनी भूल स्वीकार की। उनसे क्षमा माँगते हुए कहा—आयुष्मन् गौतम! ऐसे वचन मैंने कभी सुने नही थे। आपके वचनो को सुनकर मुझे विश्वास हो गया है कि आपका कथन यथार्थ है। मैं उसे स्वीकार करता हूँ।

उदक ने चार महाव्रतो से पाँच महाव्रतो को धारण करने की भावना व्यक्त की। गौतम के साथ प्रभु के समवसरण मे पहुँचे। प्रभु को सविनय वदन-नमस्कार कर पच महाव्रतिक सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार कर वे महावीर के श्रमण सघ मे सम्मिलित हो गये।

इस वर्ष जालि, मयालि आदि अनेको सतो ने विपुलाचल पर्वत पर अनशनपूर्वक शरीर त्यागा।

इस वर्ष भगवान् महावीर ने अपना वर्षावास नालन्दा मे सम्पन्न किया।

पैंतीसवाँ वर्षावास वैशाली

नालन्दा वर्षावास पूर्ण कर प्रभु अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए वैशाली पधारे।

सुदर्शन की दीक्षा

वैशाली के समीप वाणिज्यग्राम मे प्रभु का आगमन हुआ। उन दिनो व्यापार का प्रमुख केन्द्र वाणिज्यग्राम था। भगवान महावीर वाणिज्यग्राम के वाहर द्युतिपलाश उद्यान मे विराजमान है, यह सूचना जल-तरगवत् ग्राम मे विद्युत गति से फैल गई। नगर निवासी हजारो नर-नारी दर्शन एव अमृतमय वाणी सुनने की जिज्ञासा से प्रभु के श्रीचरणो मे पहुँचे। सुदर्शन सेठ भी प्रभु के समवसरण मे पहुँचा। उपदेश सुनकर हर्ष विभोर हो गया।

जिज्ञासापूर्वक प्रभु के श्रीचरणो मे अपने हृदय की शका सुदर्शन सेठ ने रक्खी—प्रभो ! काल कितने प्रकार का है ?

प्रभु महावीर—अहो सुदर्शन ! काल चार प्रकार का है—१ प्रमाण-काल, २ यथायुर्निवृत्तिकाल, ३ मरणकाल और ४ अद्धाकाल ।

सुदर्शन—भगवन् ! प्रमाणकाल कितने प्रकार का है ?

प्रभु महावीर—अहो सुदर्शन ! प्रमाणकाल दो प्रकार का है—१ दिवस प्रमाणकाल और २ रात्रि प्रमाणकाल । दिवस और रात्रि दोनो चार-चार प्रहर के होते हैं । ज्यादा से ज्यादा वडी पौरसी साढे चार मुहूर्त की होती है और कम से कम तीन मुहूर्त की पौरसी होती है ।

सुदर्शन—प्रभो ! पौरसी के दो प्रकार वताये हैं वे कव होती हैं तथा क्या दिन और रात कभी वरावर होते है ?

प्रभु महावीर—आपाढ की पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त का दिन होता है और वारह मुहूर्त की रात होती है । तव साढे चार मुहूर्त की दिन की पौरसी होती है । पौष की पूर्णिमा को वारह मुहूर्त का दिन और अठारह मुहूर्त की रात होती है तव कुछ कम तीन मुहूर्त की दिन की पौरसी होती है ।

चैत्र की पूर्णिमा और आश्विन पूर्णिमा को दिन-रात वरावर होते हैं अर्थात् पन्द्रह मुहूर्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात होती है । उस समय चार मुहूर्त में चौथाई मुहूर्त कम की एक पौरसी दिन और रात मे होती है ।

सुदर्शन—यथायुर्निवृत्तिकाल कितने प्रकार का है ?

प्रभु महावीर—चार गतियो मे से किसी भी गति का कोई जीव अपनी ही गति के समान अपना जो आयुष्य वाँधता है और उसका पालन करता है उसका नाम यथायुर्निवृत्तिकाल है ।

सुदर्शन—मरणकाल क्या है ?

प्रभु महावीर—शरीर से जीव का या जीव से शरीर का वियोग होना मरणकाल कहलाता है ।

सुदर्शन—अद्धाकाल किसे कहते है ?

प्रभु महावीर—अद्धाकाल समय, आवलिया, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, युग, सवत्सर, यावत् अवसर्पिणी रूप अनेक प्रकार का है ।

सुदर्शन—पल्योपम और सागरोपम की क्या आवश्यकता है ? प्रभो ! इनका भी क्षय होता है या नही ?

प्रभु महावीर—पल्योपम और सागरोपम के द्वारा चारो गतियो के जीवो के आयु का माप (प्रमाण) होता है। पल्योपम-सागरोपम की सख्या का माप छद्मस्थ नही कर सकता है किंतु ज्ञानी जिनेश्वरो ने इनका भी प्रमाण बताया है। जैसे वर्ष बीतते है वैसे ही ये बीतते है। तभी तो आयु आदि का प्रमाण होता है।

सुदर्शन को प्रश्नो का उत्तर प्रभु से मिलता रहा। जिससे उसमे चिंतन जगा। भगवान ने पूर्वभव की व्याख्या फरमाई—अहो सुदर्शन ! पूर्वभव मे तू महाबल राजकुमार था। ससार की असारता समझ कर जैनेन्द्री दीक्षा अगीकार की। सयम साधना करके आयु के अत मे सलेखना सथारापूर्वक मरणकर पाँचवे ब्रह्मदेवलोक मे दस सागरोपम की स्थिति वाला देव बना। वहाँ से आयु पूर्णकर यहाँ सुदर्शन बने हो। पूर्वभव के सस्कारो से इस भव मे भी तुम्हे जिनधर्म के प्रति श्रद्धा-रुचि है अत स्थविरो के मुखारविंद से जिनेश्वर के धर्म को सुनते रहे हो।

अपना पूर्वभव सुनकर चिंतन जगा और चिंतन करते-करते चादनी प्रगट हुई यानि जातिस्मरण ज्ञान हुआ। प्रभु के श्रीचरणो में वदन नमस्कार कर श्रमणत्व स्वीकार किया। विनयपूर्वक चौदह पूर्वो का ज्ञान सीखा। द्वादश वर्ष तक संयमधर्म का पालन किया अत मे कर्म क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया।[1]

आनंद-गौतम संवाद

प्रभु महावीर की आज्ञा लेकर गौतम गणधर वाणिज्यग्राम मे भिक्षार्थ पधारे। लौटते समय कोल्लागसन्निवेश के निकट गौतम ने सुना कि श्रमणोपासक आनन्द ने अनशन ग्रहण कर रखा है। गौतम ने सोचा आनन्द ने सथारा लिया है। वह प्रभु का परम उपासक, श्रद्धालु, व्रतधारी, दृढधर्मी, और प्रियधर्मी है। मुझे वहाँ पौषधशाला मे जाकर उसको देखना चाहिये। ऐसा सोचकर सीधे कोल्लागसन्निवेश से आनन्द की पौषधशाला मे पधारे।

सथारा-शय्या पर आनन्द धर्मचिंतन कर ही रहा था कि गौतम गणधर को आते देखा। हर्ष का पार न रहा। सविनय वन्दन नमस्कार

1 भगवतीसूत्र, शतक ११, उद्देशक ११

कर निवेदन किया—"प्रभो ! मेरी शारीरिक शक्ति क्षीण हो गई है। मैं उठने मे असमर्थ हूँ। कृपया आप इधर पधारे, मुझे कृतार्थ करे, जिससे मैं चरण-स्पर्श कर सकूँ।" गौतम आगे वढे, आनन्द के सन्निकट पधारे। उसने विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया। "मुझे दर्शन देने की कृपा की, प्रभो ! महती कृपा की"—इस प्रकार आभार प्रदर्शन किया।

वार्तालाप के दरम्यान श्रद्धापूर्वक सविनय आनन्द ने पूछा—"प्रभो ! घर मे निवास करते हुए तथा गृहस्थधर्म का पालन करते हुए क्या श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है ?"

गौतम—हाँ, आनन्द ! हो सकता है।

आनन्द—प्रभो ! अवधिज्ञान के द्वारा मैं पूर्व-दक्षिण और पश्चिम मे लवण समुद्र मे पाचसौ योजन, उत्तर मे क्षुद्रहिमवत वर्षधर, ऊपर सौधर्म देवलोक और नीचे प्रथम नरक का लोलच्चुअ नरकावास तक रूपी पदार्थो को जानता और देखता हूँ।

गौतम के हृदय मे आनन्द की वात को सुनकर आश्चर्य पैदा हुआ और सोचा श्रावक को इतना विशाल अवधिज्ञान ! वे वोले—अहो आनन्द ! श्रावक को गुणप्रत्यय अवधिज्ञान तो होता है किन्तु इतना विशाल नही हो सकता है। तुम्हारा कथन भ्रान्तिपूर्ण है। यह सत्य महसूस नही हो रहा है। अत तुम्हे अपनी इस भूल का पश्चात्ताप करना चाहिये और प्रायश्चित्त ग्रहण करके शुद्ध हो जाना चाहिये।

विस्मयपूर्वक सविनय आनन्द ने निवेदन किया—प्रभो ! क्या जिनेश्वर भगवान के शासन मे सत्य-तथ्य एव सद्भूत कथन के लिये भी पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना पडता है ?

गौतम—अहो आनन्द ! यह वात जिनशासन मे नही है।

आनद—प्रभो ! मैंने आपश्री को जो निवेदन किया है वह सत्य है अत प्रायश्चित्त कैसे लिया जाय ?

निर्भीक आनन्द की वाते सुनकर गौतम विचारमग्न हो गये, असमजस मे पड गये। अपनी वात पर शका पैदा हुई। तत्काल पौषधशाला से निकल द्युतिपलाश चैत्य मे जहाँ श्रमण भगवत प्रभु महावीर विराजमान थे वहाँ पहुँचे। सविनय वन्दन नमस्कार कर अत्यन्त नम्रता के साथ आनद से जो अवधिज्ञान की वार्ता हुई वह प्रभु के समक्ष रखी और पूछा—"भगवन !

इकतालीसवाँ वर्षावास : राजगृह

मिथिला नगरी का वर्षावास पूर्ण होने पर प्रभु ने मगधदेश की ओर विहार किया। मगध की राजधानी राजगृह नगर मे पधारे। गुणशीलक उद्यान मे विराजे।

महाशतक को मार्गदर्शन

राजगृह मे महाशतक श्रमणोपासक धर्मजागरणा कर रहे थे। महाशतक की धर्मपत्नी रेवती जो अभद्र स्वभाव की थी, उनकी धर्मसाधना से उसका मन असन्तुष्ट था। एक वार रात्रि मे धर्मजागरणा करते हुए महाशतक के पास गई और दुर्व्यवहार किया। पत्नी के दुष्ट व्यवहार से कुपित होकर उन्होने कठोर वचन कहे थे जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

प्रभु महावीर ने अपने प्रधान शिष्य गौतम गणधर को महाशतक के पास भेजा और उसने जो अपनी पत्नी को भविष्यवाणी कही थी उसकी उसे आलोचना करके आत्म-शुद्धि करनी चाहिये ऐसा सन्देश भिजवाया। प्रभु के आदेशानुसार गौतम वहाँ पहुँचे, प्रभु का सन्देश कह सुनाया। प्रभु की महती कृपामय शुभ सूचना मिलते ही महाशतक के हर्ष का पार न रहा। उसने विनयपूर्वक प्रभु का सन्देश सुना, आलोचना के द्वारा आत्म-शुद्धि की। अपने द्वारा कहे गये कटु वचनो का पश्चात्ताप करके प्रायश्चित्त लिया। आयु पूर्ण कर प्रथम स्वर्ग मे गये।

उष्ण पानी का कुण्ड

वैभारगिरि के महातपस्तीर प्रभवजलद्रहों के पानी बारे मे गौतम गणधर ने प्रभु महावीर से पूछा, तब प्रभु ने फरमाया कि उस द्रह मे उष्ण योनिये अप्काय के जीव उत्पन्न होते है और मरते रहते है। चार स्थावरो मे शीत, उष्ण और शीतोष्ण यो तीनो योनि पाई जाती है। उष्ण स्वभाव के जल पुद्गल भी आते रहते है। यही कारण है कि उन द्रहो का जल उष्ण है।

आयुष्य की चर्चा

गौतम गणधर ने प्रभु के श्रीचरणो मे निवेदन किया—प्रभो! अन्यतीर्थिक कहते है कि एक जाल है उसमे क्रमश गाँठे लगी हुई है। वे नियत अन्तर पर है, और एक दूसरी से सम्बन्धित है उसी तरह अनेक जीवो की अनेको भवो से सचित आयुकर्म की रचना होती है, आयुष्य भी एक-दूसरे

के नियत अन्तर पर होता है। इनमे से एक जीव एक समय दो आयुष्य का वेदन करता है—इस भव का और परभव का अर्थात् जिस समय इस भव का आयुष्य भोगता है, वेदता है उस समय परभव का भी आयुष्य भोगता है, वेदता है। प्रभु क्या उनका यह कथन तथ्यमय है ?

भगवान—अन्यतीर्थिको का यह कथन मिथ्या है ? जैसे कोई जाल एक दूसरी से मिली हुई रहती है। वैसे ही क्रम से अनेक जन्मो के सम्बन्ध को धारण करने वाला जीव शृ खला की कडी के समान क्रम से गू था हुआ होता है। ऐसा होने पर भी एक जीव एक समय मे एक ही आयु का अनुभव करता है।

जैसे जीव जिस समय इस भव के आयुष्य का अनुभव करता है उस समय परभव के आयुष्य का अनुभव नही करता है तथा इहभविक और परभविक दोनो आयुष्य सत्ता मे रहते है, किंतु एक साथ वेदते नही है, भोगते नही।

गौतम—प्रभो ! अन्यतीर्थिक कहते है कि प्राणभूत जीव और सत्त्व एकात दु ख को भोगते है। क्या यह सत्य है ?

भगवान—नही ! कितने ही जीव एकात दु ख को भोगते है किंतु कभी-कभी सुख को भोगते है। कितने ही जीव एकात नित्य सुख का अनुभव करते हैं और कभी दु खानुभव भी और कितने ही जीव अनियमित रूप से दु ख और सुख दोनो का अनुभव करते रहते है जैसे नारकीय प्राणी एकात दुख का वेदन करते है। तीर्थंकर के जन्म-कल्याणादि प्रसग पर कुछ सुख का भी अनुभव करते है। देवगण मुख्यरूप से सुखानुभव करते है किंतु च्यवन को जानकर दु खानुभव भी करते है। मनुष्य और तिर्यंच इन दो गतियो के जीव अनियमित रूप मे सुख-दु ख का वेदन करते है।[1]

अग्निभूति गणधर और वायुभूति गणधर एक मास के सथारेपूर्वक राजगृह के गुणशीलक उद्यान मे मोक्ष पधारे।

प्रभु ने यह इकतालीसवां वर्षावास राजगृह मे सम्पन्न किया।

चातुर्मास काल समाप्त हो जाने पर भी प्रभु कुछ समय तक राजगृह मे ही विराजे। उस समय गणधर व्यक्त, गणधर मण्डित और गणधर अकम्पित एक मास के सथारेपूर्वक मोक्ष गए।

बयालीसवां वर्षावास पावापुरी

राजगृह का वर्षावास पूर्ण करके प्रभु अनेकों क्षेत्रो मे विचरण करके चातुर्मास हेतु "पावा" पधारे।

---

१ भगवती सूत्र, ५।३ एव ६।६

'अरे आत्मा ! तू क्या मोह कर रहा है, यह सब तेरी मोह की दशा है। प्रभु तो वीतरागी थे, उनमे कहाँ स्नेह। मेरा एक पक्षीय मोह था। उनका राग-मोह खतम हो गया था। मुझे भी उसी प्रकार से मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त करनी है। आर्तध्यान से धर्मध्यान मे बढे और चितन करते-करते ही शुक्लध्यान मे प्रवेश किया। गौतम ने उसी रात्रि के अन्त मे मोह कर्म को नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। देवो ने उनका कैवल्य उत्सव मनाया।

दीप महापर्व

कार्तिक वदि अमावस्या को मध्यरात्रि मे प्रभु महावीर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। १८ गण देश के राजा पौषध व्रत मे बैठे हुए थे। उन्होने सोचा—आज ससार से भाव प्रकाश फैलाने वाले तीर्थंकर महाप्रभु चले गये है, उन्होने अपनी सिद्धिश्री को प्राप्त कर लिया है अत अब हम द्रव्य प्रकाश करेंगे। प्रभु का परिनिर्वाण हुआ, देवगण व देवेन्द्रो के गमनागमन से पृथ्वी प्रकाश से प्रकाशित होने लगी। अधकार को मिटाने के लिए मानवो ने दीप जलाये। इस प्रकार यह दीपमाला का पुनीत पर्व प्रारम्भ हुआ।

प्रभु महावीर के परिनिर्वाण के साथ ही साथ यह अन्धकार भी व्याप्त हो गया कि अब इस अवसर्पिणी मे श्लाघ्य पुरुष नही होगे। क्योकि प्रत्येक अवसर्पिणी मे श्लाघ्य पुरुष त्रेसठ ही होते है और प्रभु महावीर त्रेसठवे श्लाघ्य पुरुष थे।

६३ महापुरुषो की ६१ माताएँ हुई। सोलहवे, सत्रहवे और अठारहवे तीर्थंकर ही राज्यकाल मे चक्रवर्ती थे। अतः श्लाघ्य पुरुष ६ हुए और माताएं तीन हुई। इस प्रकार ६० माताएँ हुई। किन्तु प्रभु महावीर की दो माता होने से त्रेसठ श्लाघ्य पुरुषो की ६१ माताएँ हुई।

६३ श्लाघ्य पुरुषो के पिता ५२ हुए बलदेव और वासुदेव के पिता एक ही होते है। शातिनाथ, कुथनाथ, अरनाथ—ये तीनो चक्रवर्ती भी थे और तीर्थंकर भी थे। इसलिये इनके पिता भी एक-एक ही थे।

६३ श्लाघ्य पुरुषो के ६० शरीर थे। ३ चक्रवर्ती और ३ तीर्थंकर एक ही थे अत ६० शरीर हुए।

६३ श्लाघ्य पुरुषो की आत्माएँ ५९ थी। ३ चक्रवर्ती ही ३ तीर्थंकर होने से ६० आत्माएं हुई और प्रभु महावीर की ही आत्मा त्रिपृष्ठ वासुदेव का भव करके आई अत दोनो की एक ही आत्मा एक होने से ५९ आत्माएं हुई।

कहने का प्रयोजन यह है कि महावीर के निर्वाण से सभी लोगो को अधिक दु ख-शोक इसलिये भी हुआ कि ६३वे श्लाघ्य पुरुष मोक्ष पधार गये, अब हमारे सामने श्लाघ्य पुरुष नही होगे। इसलिए जनता ने द्रव्य दीप जलाकर प्रकाश किया और यह दीप महोत्सव जन-जन मे व्याप्त हो गया।

परिनिर्वाण कल्याण

प्रभु के मोक्ष पधारने पर भव्यात्माओ को महसूस होने लगा कि अब हम अनाथ हो गये हैं। अपने आप मे देव मनुष्य आदि सभी अनाथता का अनुभव करने लगे थे। देवगण, इन्द्र आदि अपने अपने परिवार के साथ पावा नगर मे आये। सभी के हृदय शोकाकुल थे। सभी भाव विह्वल हो रहे थे। जीताचार मे अनुसार शक्रेन्द्र ने आदेश दिया। आदेशानुसार गोशीर्ष चन्दन और क्षीरोदक लाया गया। प्रभु के पार्थिव शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया गया, गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया। दिव्य वस्त्र प्रभु के पार्थिव शरीर को ओढाया गया। तदनन्तर प्रभु के पार्थिव शरीर को शिविका मे रख देवो ने देवध्वनि के साथ फूलो की वृष्टि की। इन्द्रो ने शिविका उठाई और यथा-स्थान पर पहुँचाई। गोशीर्ष चन्दन के ऊपर प्रभु का शरीर रखा गया, फिर अग्निकुमार देवो ने अग्नि प्रज्वलित की, वायुकुमार जाति के देवो ने पवन के द्वारा आग को उद्दीप्त किया। अन्य देवो ने घृत मधु से चिता को सीचा। इस प्रकार प्रभु के पार्थिव शरीर की अतिम दाह क्रिया हुई। मेघकुमार देवो ने जल दृष्टि करके चिता को शात किया। शक्रेन्द्र ने ऊपर की दाई दाढो का, ईशानेन्द्र ने ऊपर की बाई दाढो का, चमेरन्द्र तथा बलेन्द्र ने क्रमश नीचे की दाई बाई-दाढो का सग्रह किया। अन्य देवगणो ने यथाप्राप्त अस्थियो को ग्रहण किया। मानवो ने भस्मग्रहण की। श्लाघ्य पुरुषो का जीवन प्रकाशमान होता है। इसी के स्मृति स्वरूप उनके अभाव मे द्रव्य दीप जलाये।

कार्तिक अमावस्या का यह दिन वस्तुत ससार मे शोक का दिन सिद्ध हुआ। एक महापुरुष जिसने पार्थिव शरीर मे ७२ वर्ष रहकर जन कल्याण का काफी कार्य किया। तीस वर्ष की आयु मे गृहस्थाश्रम का परित्याग कर साधना के घोर कण्टकाकीर्ण मार्ग मे दृढ कदमो से बढे। बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक देव-मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी घोर उपसर्गो और परिषहो को सहन किया। उन कष्टो को सुनने मात्र से हृदय-तन्त्री झनझना उठती है। उन कष्टो को प्रभु ने तन पर सहा परन्तु मन मे

गन्ध, उत्तमोत्तम मधुर फलो से शोभित होता है वैसे भगवान भी ज्ञान, शक्ति, शांति आदि गुण समूह से शोभायमान थे।

सय सहस्साण उ जोयणाणं, तिकडगे पंडगवेजयते ।
से जोयणे णवणवते सहस्से, उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ॥१०॥

प० अ०—जिस मेरु गिरि की उच्चता का लक्षयोजन मान है।
पडगाभिध-वन ध्वजायुत तीन काण्ड महान है ॥
निन्याणवे हजार योजन तुग अम्बर मे खडा ।
उ सहस्र योजन एक पूरा मेदिनी तल मे गडा ॥

हि० अ०—सुमेरु पर्वत एक लाख योजन का ऊँचा है। इसमे निन्याणवे हजार योजन ऊँचा आकाश मे और एक हजार योजन नीचे पृथ्वी के गर्भ मे है। सुमेरु के तीन विभाग है। सबसे ऊपर के विभाग मे पाडुकवन है। वह ऐसा शोभता है मानो सुमेरु के शिखर प्रदेश मे सुन्दर ध्वजा हो।

[जिस प्रकार सुमेरु पर्वत की प्रभा ऊँचा नीचा और मध्य—तीनो लोक मे व्याप्त है उसी प्रकार भगवान महावीर के ज्ञान-दर्शन आदि गुण तीनो लोको मे सपूर्णतया व्याप्त है।]

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए, ज सूरिया अणुपरिवट्टयंति ।
से हेमवन्ने वहुणदणे य, जंसी रइं वेदयती महिदा ॥११॥

प० अ०—वह भूमि को आकाश को है स्पर्शकर ठहरा हुआ।
चहुं ओर ज्योतिपगण फिरे फेरी सदा देता हुआ ॥
है नदनादिक चार वन से युक्त काति सुवर्णधर।
अनुभव करे रति का सदा देवेन्द्र जिस पर आन कर ॥

हि० अ०—वह सुमेरु पर्वत आकाश को तथा भूमि को छूकर स्थित यानी ठहरा हुआ है। सूर्यादि ज्योतिष्क देव जिसकी सदा प्रदक्षिणा करते है। और जो सोने की जैसी कान्ति वाला है। उसके ऊपर नदनादि चार महावन है। तथा जिस सुमेरु पर्वत पर देव और देवेन्द्र भी आकर रतिक्रीडा का अनुभव करते है।

[भगवान भी इसी प्रकार सुवर्ण समान वर्णवाले—दान-शील आदि चार महान धर्मो के वर्णन करने वाले—धर्मपिपासु जनता को धर्मोपदेश द्वारा आनन्दित करने वाले थे।]

से पव्वए सद्दमहप्पगासे, विरायती कंचण मट्ठवण्णे ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरीवरे से जलिए व भोमे ॥१२॥

प० अ०—वह मेरुपर्वत किन्नरो के गान से नित गूंजता ।
मल मुक्त कांचन तुल्य वह देदीप्यमान सुशोभता ॥
मेखला से दुर्ग सारे पर्वतो मे श्रेष्ठ है ।
भूदेश तुल्य विचित्र शोभावान अति उत्कृष्ट है ॥

हि० अ०—वह सुमेरु पर्वत किन्नरदेवो के गानरूप शब्दो मे गुंजायमान रहता है। तथा सोने की तरह पीले वर्णवाला शोभित होता है। सारे पर्वतो मे श्रेष्ठ है। पर्व अर्थात् मेखला आदि के कारण दुर्गम दुरारोह है। और वह पर्वतराज प्रधान सुमेरु पृथ्वी के समान है। अर्थात जिस प्रकार पृथ्वी अनेक तेजोमय ओषधी समूह से देदीप्यमान रहती है उसी प्रकार मेरु पर्वत भी अनेक तेजोमय वृक्ष समूह से देदीप्यमान रहता है—चमकता रहता है।

[भगवान भी इसी प्रकार गंभीर ध्वनि वाले, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि सद्गुणो से दमकने वाले, अद्वितीय श्रेष्ठतावाले एव विवाद करने वाले वादियो से सर्वथा अजेय थे।]

महीइ मज्झम्मि ठिये णगिंदे, पन्नायते सूरिय सुद्धलेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरिवन्ने, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥१३॥

प० अ०—भूमध्य मे स्थित पर्वतेश्वर लोक मे प्रज्ञात है ।
मार्तण्ड मण्डल तुल्य शुद्ध सुतेजयुत विख्यात है ॥
पूर्वोक्त शोभावान बहुविध वर्ण मे अभिराम है ।
दर्शक मनोहर सूर्यसम उद्योतकर छवि धाम है ॥

हि० अ०—पृथ्वी के मध्य प्रदेश मे स्थित पर्वतेन्द्र सुमेरु, ससार मे सर्वोत्कृष्ट रूप से जाना जाता है तथा सूर्य के समान शुद्ध तेज वाला है। पूर्वोक्त प्रकार की शोभा से विशेष प्रकार से चित्र-विचित्र रत्नो से शोभित होने से अनेक वर्णवाला मनोहर है। सूर्य की तरह दशो दिशाओ को प्रकाशित करता है।

[भगवान भी इसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट पूर्ण प्रतापी, विचित्र शोभामय, अज्ञानान्धकार नाशक, ससार मे ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे।]

सुदंसणस्से व जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसण-नाण-सीले ॥१४॥

(१७)

चउदे रतन सार, अद्भूत गुणाकार,
नरवर आज्ञाकारी बत्तीस हजार है।
षोडश हजार सुर, आज्ञाकारी तत पर,
षटखण्ड नरवर, सारा शिरदार है॥
नाटक बत्तीस विध, ऋद्धि सिद्धि नवनिध,
सऊ छोडी हुआ सिद्ध, लाया सुख सार है।
भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
कुन्थुनाथ ततसार, तिरत ससार है॥

(१८)

चउरासी लख बाज, रथरुडा गजराज,
पायदल सर्व साज, छिनवे करोड है।
छिनवे करोड गाव, चोसठ हजार बाम,
पासवान दुणी नाम, रहे कर जोड है॥
ऐसी ऋद्धि तज कर, जोग लियो जिनवर,
अजर अमरपुर गया कर्म तोड है।
भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
अरनाथ ततसार कटे कर्म कोड है॥

(१९)

विरगत रह्या आप, जग को न लागो पाप,
परहर सउताप, बैठा धर्म पोत हे।
दयावत खत दत, गुणा तणो नही अन्त,
उपगारी अरिहत, टाली मिथ्या छोत है॥
घट माही ज्ञान घाल, काटिया कर्म साल,
धर्म मे रह्या लाल, लई शिव जोत हे।
भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
मल्लिजिन किया ध्यान निरमल होत है॥

(२०)

वीसमा जिणदराय, सावली सुरत काय,
चारित्र मु चित्तलाय, तज्या राज ठाठ है।
आरिम्या ज्यु यथातथ, जिनमत परमत,
उपदिशा जिनपथ, मायातणो मेट है॥

पातिक पडल हर, घट मे उद्योत कर,
जीव घणा जिनवर, घाल्या शिववाट है।
भणै मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
मुनिसुव्रत ध्यान सेती, मिटे कर्म काट है॥

(२१)

राजऋद्धि परिहर, जोग लियो जिनवर,
डोले नही तिल भर, मेरु ज्यु अडिग है।
मिथ्या मत अतिघोर, फैल रह्यो चिहुँ ओर,
ताही कु हरण जोर, निरमल स्वर्ग है॥
थापिया तिरथ च्यार, तार्या घणा नरनार,
शिवपुर पाम्या सार, सुखाको न थाग है।
भणै मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
नमिजिन किया ध्यान, नासे कर्म ढग है॥

(२२)

समुद्रविजय नन्द, बावीसमा जिनचन्द,
सोहत सुरत इन्द बाल ब्रह्मचारी है।
पशु वेण सुनी कान, ततक्षण बोली जान,
बार बार कह्यो कान, ऐसी क्यु विचारी है॥
नारी तणो मारे नेम, मुगतिसु लाग्यो प्रेम,
राजमतिरिठ्ठनेम, हुवा जोग धारी है।
भणै मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
नेम प्रभु किया ध्यान, महासुखकारी है॥

(२३)

नव कर तन मान, सोहत सुरत भान,
पट्काया दियो दान, तजी धनराश है।
वड भागी वीतराग, गुणातणो नही थाग,
जथातथ जिनमार्ग, कीयो परकाश है॥
मोक्ष गया कर्म तोड, जग मे कीरत जोर,
सुर नर ठौर ठौर, सुमरत पास है।
भणे मुनि चन्द्रभान, सुणो हो विवेकवान,
पार्श्व प्रभु किया ध्यान, शिवपुर वास है॥

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है। आत्मा के पुनर्जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करने वाला ही वस्तुतः आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी एव क्रियावादी है।

जे अत्ताणं अब्भाइक्खति से लोगं अब्भाइक्खति।

—आचाराग १।१।३

जो अपनी आत्मा का अपलाप (अविश्वास) करता है, वह लोक (अन्य जीव-समूह) का भी अपलाप करता है।

आत्मा का स्वरूप

अह अव्वए वि अह अवट्ठिए वि। —ज्ञाता० १।५

मैं—आत्मा अव्यय-अविनाशी हूँ, अवस्थित—एक रूप हूँ।

जीवा सिय सासया सिय असासया,
दव्वट्ठयाए सासया भावट्ठयाए असासया। —भगवती ७।२

जीव (आत्मा) शाश्वत भी है, अशाश्वत भी।
द्रव्यदृष्टि (मूल-चेतन स्वरूप) से शाश्वत है।
भावदृष्टि (मनुष्य-पशु आदि पर्याय) से अशाश्वत है।

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया तं पडुच्च पडिसखाए॥

— आचाराग १।५।५

जो आत्मा है वह विज्ञाता है।
जो विज्ञाता है, वह आत्मा है।
जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है।
जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति होती है।

धर्म का स्वरूप और महिमा

धम्मो मगलमुक्किट्ठं अहिंसा सजमो तवो। —दशवै० १।१

अहिंसा, सयम एव तप रूप धर्म ही उत्कृष्ट मगल है।

समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए। —आचाराग १।८।३

आर्य पुरुषों ने समता-समभाव मे धर्म कहा है।

दीवे व धम्मं समियं उदाहु। —सूत्रकृताग ६।४

यह समता रूप धर्म, दीपक की भाँति अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाला है।

एगा धम्मपडिमा, जं से आया पज्जवजाए।

—स्थानाग १।१।४०

धर्म ही एक ऐसा पवित्र अनुष्ठान है, जिससे आत्मा की विशुद्धि होती है।

जरामरण वेगेणं बुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तम ॥

—उत्तराध्ययन २३।६८

जरा-मरण के वेग (प्रवाह) मे बहते-डूबते प्राणियो के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

धर्म के प्रकार

दुविहे धम्मे—सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव।

—स्थानाग २।१

धर्म के दो रूप हैं—श्रुतधर्म (तत्त्वज्ञान) और चारित्रधर्म (नैतिक आचार)।

चरित्तधम्मे दुविहे—
आगार चरित्तधम्मे चेव अणगार चरित्तधम्मे चेव।

—स्थानाग २।१

चारित्रधर्म दो प्रकार का है—आगार चारित्रधर्म (बारह व्रतरूप श्रावकधर्म) अनगार चारित्रधर्म (पचमहाव्रतात्मक श्रमणधर्म)।

चत्तारि धम्मदारा—
खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे। —स्थानाग ४।४

धर्म के चार द्वार हैं—क्षमा, सतोष, सरलता और विनय।

धम-साधना

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स अफला जति राइओ॥
जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्म च कुणमाणस्स सफला जति राइओ॥

—उत्तरा० १४।२४-२५

जो-जो रात्रि जा रही हैं, वह फिर लौट कर नही आती हैं। अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल चली जाती हैं।

जो-जो रात्रि जा रही हैं, वह फिर लौटकर नही आती हैं। धर्म करने वाले की रात्रियां सफल होती हैं।

अद्धाण जो महन्त तु सपाहेज्जो पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ छुहा-तण्हा विवज्जिओ ।।
एव धम्म पि काऊण जो गच्छइ पर भव ।
गच्छन्तो सो सुही होइ अप्पकम्मे अवेयणे ।।

—उत्तरा० १९।२१-२२

जो व्यक्ति पाथेय (मार्ग का सम्बल) साथ मे लेकर लम्बे मार्ग पर चलता है, वह चलते हुए भूख और प्यास के दुःख से मुक्त रह कर सुखी होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म करके परभव मे जाता है, वह अल्पकर्मा (कर्मभार से हलका) होकर जाते हुए वेदना से मुक्त, सुखी होता है।

अहिंससच्च च अतेणग च तत्तो य बभ अपरिग्गह च ।
पडिवज्जिया पच महव्वयाइ चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विउ ।।

—उत्त० २१।१२

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाच महाव्रत कहे गये है। इन महाव्रतो को स्वीकार कर विद्वान जिन-देशित धर्म का आचरण करे।

श्रमण धर्म

अट्ठ पवयणमायाओ समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ तओ गुत्तीउ आहिया ।। —उत्त० २४।१

समिति और गुप्ति रूप आठ प्रवचनमाताये कही गई है। समितियाँ पाच है और गुप्तिया तीन है।

इरिया भासेसणादाण उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती य अट्ठमा ।।

— उत्तराध्ययन २४।२

ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-समिति और उच्चार समिति—ये पाच समिति तथा मनगुप्ति, वचनगुप्ति और काय-गुप्ति ये तीन गुप्ति इस प्रकार ये आठ प्रवचनमाता कही गई है।

दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, त जहा—
खती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे लाघवे, सच्चे, सजमे, तवे, चियाए, बभचेरवासे । —स्थानाग १०

श्रमणधर्म दस प्रकार का है, यथा—१ क्षमा, २ निर्लोभता, ३ सरलता, ४ मृदुता, ५ लघुता, ६ सत्य, ७ सयम, ८ तप, ९ त्याग, १० ब्रह्मचर्य।

समभाव (तितिक्षा)

जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य।
तस्स समाइय होई इइ केवलिभासिय।—अनुयोग० १२८

जो त्रस एव स्थावर रूप समस्त प्राणिजगत के प्रति समभाव रखता है, उसी को सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान का कथन है।

अक्कोसेज्जा परो भिक्खू न तेसिं पडिसजले।
सरिसो होई बालाण तम्हा भिक्खू न सजले॥ —उत्त० २।२४

कोई भिक्षु को कठोर वचनो से आक्रोश करे, तिरस्कार करे तब भी भिक्षु उन पर क्रोध न करे। क्योकि क्रोध करने से भिक्षु भी उस अज्ञानी के समान हो जाता है, अत मन को शात रखना चाहिए।

नैतिक-नियम

णातिवेल हसे मुणी। —सू० १।६।२६

मर्यादा से अधिक नही हँसना चाहिए।

न यावि पन्ने परिहास कुज्जा। —सू० १।१२।१६

बुद्धिमान किसी का उपहास न करे।

अपुच्छिओ न भासिज्जा भासमाणस्स अतरा।
पिट्ठिमस न खाइज्जा मायामोस विवज्जए॥ —दश० ८।४७

बिना पूछे नही बोले, बीच मे न बोले, किसी की चुगली न खावे और कपट करके झूठ न बोले।

अट्ठावय न सिक्खेज्जा वेहाइय च णो वए। —सूत्र० १।६।१७

जुआ खेलना न सीखे, जो बात धर्म से विरुद्ध हो, वह न बोले।

निद्द च न बहु मन्निज्जा सप्पहास विवज्जए। —दश० ८।४२

अधिक नीद न ले और हसी मजाक न करे।

अणुन्नविय गेण्हियव्व। —प्रश्न० २।३

दूसरे की कोई भी वस्तु आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिये।

ण भाइयव्व, भीत खु भया अइति लहुय। प्रश्न० २।२

भय से डरना नहीं चाहिए। भयभीत मनुष्य के पास भय शीघ्र आते है।

न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए। —दश० ६।१।७

गुरुजनो की अवहेलना—अवज्ञा करने वाला कभी मुक्ति प्राप्त नही कर सकता।

न वाहिर परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे ।
सुयलाभे न मज्जिज्जा जच्चा तवसि वुद्धिए ॥

—दश० ८।३०

बुद्धिमान किसी का तिरस्कार न करे, न अपनी बडाई करे, अपने शास्त्र-ज्ञान, जाति और तप का अहकार न करे ।

समाहिकारए ण तमेव समाहि पडिलब्भइ ।

—भगवती ७।१

जो दूसरो को समाधि (सेवा-सुख) पहुंचाता है वह स्वय भी समाधि प्राप्त करता है ।

अहऽसेयकरी अन्नेसि इंखिणी ।

—सूत्र० १।२।१

दूसरो की निन्दा हितकर नही है ।

नो पूयण तवसा आवहेज्जा ।

—सूत्र० १।७।२७

तप के द्वारा पूजा-प्रतिष्ठा की कामना नही करनी चाहिए ।

गिहिवासे वि सुव्वए ।

—उत्त० ५।२४

धर्मशिक्षा सम्पन्न गृहस्थ गृहवास मे भी सुव्रती है ।

पियकरे पियवाइ से सिक्ख लद्धुमरिहइ ।

—उत्त० ११।१४

प्रिय (अच्छा) कार्य करने वाला और प्रिय वचन वोलने वाला अपनी अभीष्ट शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

परिशिष्ट [४]

श्री आचार्य पट्टावली

१ आचार्य श्री सुधर्मास्वामी जी
२ आ० श्री जम्बूस्वामी जी
३ आ० श्री प्रभवस्वामी जी
४ आ श्री शय्यभव स्वामी जी
५ आ० श्री यशोभद्रस्वामी जी
६ आ० श्री सभूतविजयस्वामी जी
७ आ० श्री भद्रवाहुस्वामी जी
८ आ० स्थूलभद्रस्वामी जी
९ आ० श्री आर्य महागिरिस्वामीजी
१० आ० बलसीह स्वामी जी
११ आ० सुहस्ती स्वामी जी
(श्री बहुल स्वामी)
१२ आ० श्री शान्ताचार्य स्वामी जी
१३ आ० श्री खदिलाचार्य जी
१४ आ० जितघर स्वामी जी
१५ आ० आर्य समुद्र स्वामी
(श्री वज्रधर स्वामी जी)
१६ आ० श्री वयर स्वामी
(नन्दिलाचार्य जी)
१७ आ० रेवतगिरि
१८ आ० सीहगणी (शिवभूति)
१९ आ० श्री स्थविर स्वामी जी
२० आ० शांडिलाचार्य
२१ आ० हिमन्ताचार्य
(आर्य नक्षत्र स्वामी जी)
२२ आ० श्री नागर्जुनाचार्य
२३ आ० गोविन्दाचार्य
२४ आ० भूतिदिन्न
२५ आ० लोहगणि
२६ आ० इन्द्रसेनजी
२७ आ० देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण
२८ आ० वीरभद्र जी
२९ आ० शकरसेनजी
३० आ० यशोभद्रजी स्वामी
३१ आ० वीरसेनजी स्वामी
३२ आ० वीरयशजी स्वामी
३३ आ० जयसेन जी म०
३४ आ० हरिसेनजी स्वामी
३५ आ० जिनसेनजी म०
३६ आ० जगमालजी म०
३७ आ० वीरदेवसेणजी म०
३८ आ० भीमसेणजी म०
३९ आ० कृष्णसेणजी म०
४० आ राजर्पिजी म०
४१ आ० देवसेणजी म०
४२ आ० लक्ष्मीवल्लभाचार्य जी म०

४३ आ० जसवन्तजी म०
४४ आ० सुपदमाचार्य जी म०
४५ आ० द्वितीय हरीसेणाचार्य
४६ आ० वीरकुम्भाचार्य म०
४७ आ० उमण जी म०
४८ आ० यक्षसेणाचार्य जी म०
४९ आ० विजयसेणाचार्य जी म०
५० आ० सूरसेणाचार्य जी म०
५१ आ० महासेणाचार्य म०
५२ आ० गजसेणाचार्य जी म०
५३ आ० मित्रसेणाचार्य जी म०
५४ आ० विजयसीह सेणाचार्य म०
५५ आ० द्वितीय गजसेणाचार्य म०
५६ आ० मूलसेणाचार्य म०
५७ आ० लालसेणाचार्य म०
५८ आ० नानकचन्द जी म०
५९ आ० वडा वीरजी म०
६० आ० छोटा वीरजी म०
६१ आ० रूपसीहजी म०
६२ आ० दामोदर जी म०
६३ आ० धनराजजी म०
६४ आ० धर्मसेणजी म०
६५ आ० मगराज जी म०
६६ आ० विमलसीह जी म०
६७ आ० श्री ज्ञानजी ऋषिजी महाराज साहब।

श्री अमर गच्छीय वंशावली : मुनि समुदाय

पूज्य आचार्य श्री जीवराजजी म० सा० के शिष्य लालचन्दजी म० सा०, आचार्य श्री अमर सिंह जी म० सा०, आ० श्री तुलसीरामजी म०, ज्ञानमलजी म०, सुजानमलजी म० सा०, आचार्य श्री जीतमलजी म०, आ० श्री ज्ञानमल जी म०, पूज्य आचार्य सम्राट श्री पूनमचन्द्र जी म० के सुशिष्य पूज्य जेठमलजी म०, और श्री ताराचन्द्र जी म०, ताराचन्द जी म० के सुशिष्य श्री पुष्कर मुनि जी म० और प० श्री हीरामुनिजी म०, भेरूमुनिजी म०।

पूज्य श्री पूनमचन्द जी म० के ९ शिष्य थे। सबसे बडे थे दयालचन्दजी म०। उनके शिष्य हेमराज जी म०, श्री पन्नालाल जी म० के शिष्य उत्तमचन्द जी म० और बागमलजी म०, श्री रामकिसन जी म० के शिष्य श्री नारायणदास जी म० और प्रतापमलजी म०।

वर्त्तमान परिवार में—

श्री पुष्कर मुनिजी म० के गुरु भ्राता प० श्री हीरामुनिजी म०, श्री पुष्कर मुनि जी म० के चार शिष्य है—देवेन्द्रमुनि, गणेशमुनि, रमेशमुनि और दिनेश मुनिजी। श्री हीरामुनि जी के एक शिष्य है मुनि भगवतीसिंह जी। देवेन्द्रमुनिजी म० के शिष्य राजेन्द्रमुनिजी और गणेशमुनिजी के जिनेन्द्रमुनिजी और श्री प्रवीण मुनिजी महाराज।

आर्या—सती समुदाय—

श्री सोहन कुवरजी म० का परिवार—श्री कुसुमवती जी म०, पुष्पवतीजी म०, श्री शोभागकुवरजी म०, चतरकुवरजी म०, प्रभावतीजी म०, श्रीमतीजी म०, प्रेमकुवरजी, चन्द्रावतीजी, चन्द्राकुवरजी म०, रतनकुवरजी म०, श्री कुसुमवतीजी म तथा उनकी चार सुशिष्या चारित्रप्रभाजी आदि।

श्री धूल्कुंवरजी म० का परिवार—विदुषी पण्डिता श्री शीलकुवरजी म०, श्री सुन्दरकुंवरजी म०, मोहनकुवरजी म०, श्री शायरकुंवरजी म०।

पण्डिता श्री शीलकुवर जी म० तथा उनका शिष्या परिवार—शायरकुवरजी म०, दयाकुवरजी, चन्दनबालाजी, खमाणीगजी म०, छेलणाकुवरजी, एजाजी कुवरजी, साधनाजी।

श्री हरकूजी म० का शिष्या-कुटुम्ब—श्री उमरावकुवरजी, सुकनोजी, श्री वगुजी, विमलाजी, मदनकुवरजी म० ज्ञानप्रभाजी म०।

सज्जनकुवरजी म० का परिवार—वल्लभकुवरजी, कौशल्याजी म०, श्री हेमवतीजी विनयवतीजी आदि।

श्री दयालचन्दजी म० की शिष्या सुखाजी और सिताजी पान्नाजी।

जीवन परिचय

पूज्य आचार्य सम्राट श्री अमरसिहजी म० सा०

भारत की राजधानी देहलीनगर के निवासी तातेडगोत्रीय ओसवाल सेठ देवीसिहजी के सुपुत्र थे। माता कमलादेवी के कुक्षि मे विक्रम् सवत् १७१९ आश्विन शुक्ला चतुर्दशी रविवार को आपका जन्म हुआ। पूज्य श्री लालचन्द जी म० की सेवा मे चौवीस वर्ष की युवावस्था वि० स० १७४१ मे भागवती दीक्षा अगीकार की। शाहशाह वादशाह की पुत्री को अठारह वर्ष की अवस्था मे गर्भ रह गया था। क्वारी कन्या को गर्भवती देखकर वादशाह ने मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया। भडारी खिमसिहजी जोधपुर के पूज्यश्री की सेवा मे थे। भडारीजी से मालूम हुआ तब आचार्यश्री ने फरमाया कि पुरुष के सयोग विना भी पाँच कारणो मे गर्भ रह सकता है। ठाणाग सूत्र की साक्षी से यह सुन करके भडारीजी ने वादशाह को सन्देश दिया कि 'वालक के जन्म तक प्रतीक्षा की जाए। शिशु के शरीर मे अस्थि (हड्डियाँ) नही होगी और वह पानी के बुल-बुले की तरह विखर जायगा।' उक्त वात सुनकर के वादशाह खुश हुए और कन्या को अभयदान मिल गया। उसके बाद पूज्य श्री मारवाड पधारे और फिर ग्रामानुग्राम विचरण करके जोधपुर पधारे। मारवाड मे उस समय यतीयो का जोर था और ईर्ष्या भाव से पूज्यश्री को आरोप की हवेली मे ठहराया। वहाँ के राजा ठाकुर साहब राजासिहजी ने जहर का प्याला पीकर प्राण

त्यागे और व्यन्तर देव हुए। रात्रि मे उस व्यतर देव ने बहुत परीषह दिया। किन्तु अपनी योगसाधना के बल पर प्रेत भी आपके वश मे हो गया। सुखपूर्वक प्रभात हुआ। शहर मे यह बात फैल गई। उसके बाद पूज्यश्री जी ने स्थानकवासी जैनधर्म का झण्डा लहराया। इस प्रकार के अनेकानेक परिषह सहन करके स्था० धर्म का प्रसार-प्रचार किया। किसनगढ मे पधारे। वहाँ से मेडता पधारे। वहाँ पर पूज्य श्री भूधर जी म० सा० के सुशिष्य तपोधनी पूज्य श्री रघुनाथमलजी म० सा० तथा पूज्य श्री जयमलजी म० सा० का सम्मेलन हुआ। पारस्परिक सगठन की रूपरेखा तैयार की। इस प्रकार सयम साधना और धर्मजागृति के साथ आपका आखरी वर्षावास अजमेर मे हुआ।

वि० स० १८१२ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन पण्डित। मरण सन्थारा करके ९३ वर्ष की आयु मे आप अमरपुर पधारे।

पूज्य श्री तुलसीदास जी म० सा०

जन्म जुनीया गांव मे, पाडेय अगवाल, पिता फकीर चन्दजी, माता फूलाबाई, विक्रम सवत् १७४३ मे जन्म हुआ। पूज्य अमरसिंह जी म० की सेवा मे वि० स० १७६३ मे दीक्षा ली। विक्रम सवत् १८३० मे ४५ दिन का सन्थारा करके स्वर्ग पधारे।

पूज्य श्री सुजानमलजी म० सा०

जन्म भूमि सरवाड वि० स० १८०४ मे भादवा वदि चौथ का जन्म। पिता विजय चन्दजी भण्डारी, माता यजुबाई। चौदह वर्ष की वय मे पूज्यश्री तुलसी दासजी म० सा० की सेवा मे दीक्षा ली और १८४६ मे जेठ वदि अष्टमी को किसनगढ़ मे स्वर्गवासी हुए।

पूज्य श्री जीतमल जी म० सा०

हाडोती राज्य के अन्तर्गत रामपुरा जन्म भूमि। पिता सुजानमल जी माता सुभद्रा की कुक्षि से जन्म १८२६ की कार्तिक शुक्ला पचमी को हुआ। १८३३ मे पूज्य श्री सुजानमल जी म० रामपुरा पधारे। वि० स० १८३४ मे दीक्षा हुई। द्वितीया के चन्द्रमा की तरह आपका तप तेज बढता रहा। आपने अपने अल्प समय मे ही १३००० (तेरह हजार) ग्रन्थो की प्रतिलिपि की थी। आप दोनो हाथो और दोनो पांवो मे एक साथ लिखते थे। आप चित्र कला मे अद्वितीय कलाकार थे। आपके द्वारा बनाये हुए अढाई द्वीप, त्रसनाडी, स्वर्ग-नरक, राजसभा, केशी-गौतम चर्चा, प्रदेशी राजा का स्वर्गीय का दृश्य आदि अनमोल चित्र वर्तमान मे भी सुरक्षित

है। आप श्री से राजा मानसिंह जी ने प्रश्न पूछवाया था कि जैनी पानी की एक बून्द मे असख्यात जीव कैसे मानते है ? तब एक सप्ताह के बाद पूज्यश्री ने एक चित्र बनाया। एक चने की दाल जितने भाग मे १०८ हाथियो की चित्र रचना की जिसको देखकर राजा बडे आश्चर्य मे पड गया। पूज्यपाद ने अपने दोहे की भाषा मे कहा—

जीव बताओ जु - जुवा अनघड नर कहे एम।
कृत्रिम वस्तु सूझे नहीं, जीव बताऊँ केम॥
दाल चिणो की तह मे, बाँधत है कछु घाट।
शका हो तो देखलो, हाथी एक सौ आठ॥

सातवें दिन दरबार ने भारी आश्चर्य के साथ चित्र देखा और सन्तोष प्रगट किया। उसी समय राजा मानसिंह जी ने सवैया बनाया—

काहू की न आश राखे, काहू से न दीन भाखे,
करत प्रणाम ताको, राजाराणा जेवडा।
सीधीसी आरोगे रोटी, बैठा बात करे मोटी,
ओढने को देखो जाके, धौला सा पछेवडा॥
खमाखमा करे लोक, कदीय न राखे शोक,
बाजे न मृदग चग, जगमाहि जे वडा।
कहे राजा मानसिंह, दिल मे विचार देखो,
दुखी तो सकल जन, सुखी जैन सेवडा॥

श्री जीतमल म० सा० ने स्थानकवासी धर्म का प्रसार-प्रचार करके ७८ वर्ष तक सयम का पालन किया।

एक मास का सन्थारा करके वि० स० १९१२ मे जोधपुर मे देवलोक वासी हुए।

पूज्य ज्ञानमलजी म० सा०

जन्मभूमि मेतरावा मारवाड मे, पिता जोरावरमलजी गोलेच्छा, माता मानादेवी। श्री जीतमलजी म० सा० का उपदेश सुनकर स १९६६ पोष वदी ३ बुधवार को जमाला मण्डप जोधपुर के पास प्रव्रज्या अगीकार की। १९३० मे जालोर चातुर्मास किया।

भादवा सुदी ४ को सम्वतसरी का उपवास किया, दूसरे दिन मुनि पारणा के लिए गये उस वक्त आप श्री स्थानक मे भक्तामर का पाठ पढ रहे थे। श्रोता श्रावकगण हाजिर थे। स्तोत्र पूरा होते ही अरिहत-अरिहत करते करते स्वर्ग पधारे।

पूज्य श्री पूनमचन्द जी म० सा०

आप श्री की जन्मभूमि जालोर, पिता उमजी राय गाँधी ओसवाल, माता फूला देवी जन्म संवत् १८९२ के मगसर सुदि ६ शनिवार को हुआ, अग्यारह वर्ष की वय में पूज्य ज्ञान मलजी म० सा० का उपदेश सुनकर वैराग आया। बहिन तुलसा जी के साथ में दीक्षा ले लेने की तैयारी की। आपके एक चचेरे भाई जो जालोर के कोतवाल थे, उन्होने दीक्षा रुकवाकर एक कमरे मे बन्द कर लिया। किसी तरह से छूटकर जोधपुर चले गये वहाँ दीक्षा लेने के लिए शहर के बाहर जुलूस पहुच गया। "श्रेयासि बहुविघ्नानि" वहाँ पर आपके फूफा रहते थे। उन्होंने भी दीक्षा रुकवाकर एक मकान मे बन्द कर दिया तथापि येन केन प्रकारेण गवाक्ष मे पार होकर जालोर पधार गये। उस समय घर मे नही रहने का पच्चखाण कर लिये। फिर वहाँ से आप भवराणी पधारे। तीन वर्ष तो विघ्न मे चले गये। संवत् १९०६ माह सुदि ६ मगलवार को भागवती मगल दीक्षा ज्ञानचन्द जी म० से ले ली। जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, ब्यावर, पाली, शाहपुरा, अजमेर, किसनगढ आदि क्षेत्रो मे चातुर्मास किया। वि० स० १९५० में जोधपुर मे श्री सघ ने पूज्य पदवी दी, १९५२ का चौमासा जालोर किया। भादवा सुदि पूर्णिमा के दिन स्वर्गवासी हुए।

अग्नि-संस्कार मे चमत्कार हुआ—आग मे माण्डी जलकर भस्मीभूत हो गई किन्तु उपर का तूरा ज्यों का त्यो रह गया। लोग उसे लेने को गये तो पचरगी हो करके आकाश मे उड कर चला गया। श्रावक स्नान करने कुण्ड पर गये तो वहाँ सारा पानी केसर का बन गया। आपके शिष्य अनेक थे। उनमे से बडे दयालचन्दजी, छोटे जेठमल जी म० सा०, इनसे छोटे ताराचन्द जी म० सा० थे।

जेठमलजी म० सा०

आध्यात्मिक योगी श्री जेठमलजी म० सा० की जन्मभूमि समदडी थी। पिता हाथीमलजी लूकड़ और मातुश्री लक्ष्मावाईजी के घर वि० स० १९१८ की पोस-वदी ३ को आपका जन्म हुआ। १९३१ मे तेरह वर्ष की वय मे पूज्य श्री पूनमचन्द जी म० के पास दीक्षा ली। दीक्षा समदडी मे ही हुई। आपने जैनागमो का अध्ययन खूब किया था। आप अपने युग मे [illegible] एवं पंचम आरे के केवली समझे जाते थे। उस [illegible] मे अधिक आया करते थे। संवत् १९७१ में आप [illegible] को सूचित (चेतावनी) कर दिया था कि [illegible] सुदि ४ के दिन शरीर को वोसिरा दूगा। उसी [illegible] लगी। ठीक समय आया और आप स्वर्ग पधा[illegible]

महास्थविर श्री ताराचन्द जी म० सा०

स्वर्गीय पूज्य गुरु महाराज की जन्मभूमि बम्बोरा, पिता शिवलालजी, माता नान्कुवरजी गोत्रीय, गुन्देचा वि० स० १९४० आश्विन सुदी चतुर्दशी को जन्म लिया। आपका जन्म नाम हजारीमल जी था। छ वर्ष की आयु मे ही आप अपने मातु श्री जी के साथ उदयपुर पधारे। यहा छगनकुवरजी म० आदि विराजते थे और सतीजी की सेवा मे आते जाते रहते थे। वैराग्य भावना प्रगट हुई वि० स० १९४९ मे पूज्य पूनमचन्द जी म० ने चौमासा उदयपुर किया। माताजी ने अपने सुपुत्र को पूज्यश्री जी की सेवा मे भिक्षा के रूप मे भेट किया तब माताजी ने १९५० मे चैत्र शुक्ला ७ के दिन छगनकुवरजी म० के नेश्राय मे सयम ग्रहण किया। बाद मे पूज्य श्री वहाँ से मारवाड पधारे। वि० स० १९५० जेठ सुदि १३ के दिन समदडी मे बड़े धूमधाम समारोह से दीक्षा हो गई। उस समय पूज्यश्री जी के शिष्य दयाल चन्दजी म० सा०, नेमिचन्दजी म०, पन्नालालजी, जेठमल जी म० वहाँ पर सेवा मे ही थे। आपश्री का दीक्षा नाम ताराचन्द जी रखा गया। जोधपुर पाली आदि के बाद जालोर चौमासा हुआ। वहाँ पर पूज्यश्री जी का स्वर्गवास हो गया। फिर आप नेमिचन्द जी म० सा० के साथ मेवाड पधारे। इण्डेडा, निवाहेड़ा, सनवाड, भिण्डर, गोगुन्दा, मादडी चौमासे किये। ऐसे छ चौमासे कविजी म० के साथ हुए। फिर आप श्री जेठमलजी म० की सेवा मे पधारे। सिवाना, समदडी, जोधपुर, पाली, सालावास चातुर्मास कर लिए। अब तक आप व्याख्यानादि मे सब तैयार हो गये। फिर सनवाड चौमासा किया। जालोर, बालोतरा, समदडी, पाली आदि मे चातुर्मास किये। एक बार अर्जीयाणा गाँव मे हिन्दुमलजी म० को कुत्ते ने काट लिया तब आपश्री उन्हे अपने कन्धे पर उठाकर सिवाना ले पधारे। हिन्दुमलजी म० महान त्यागी थे। जीवन पर्यन्त पाँचो विगय के त्याग कर चुके थे।

श्री हिन्दुमलजी म० की सेवा मे आप चार वर्ष लगातार समदडी विराजे। कारण कि तपस्वी जी म० एकान्तर तप उपवास किया करते थे। १९७४ मे आश्विन वदि १३ को तपस्वी जी म० देवलोक पधार गये। तदनन्तर आप नेमचन्दजी म० के साथ कराबास पधारे। श्री कालूरामजी म० की सेवा म कोई नहीं होने से आप उनके पास रहकर सेवा की। उसके पश्चात् जालोर चौमासा किया। वहाँ पर श्री नेमचन्द जी म० और मुलतानमलजी म० स्वर्गवासी हो गये। इसके बाद आप नारायणदास जी म० सा० के साथ मेवाड पधारे। चातुर्मास देलवाडा किया। वहाँ धन्नालाल नामक एक होनहार बालक सेवा मे रहने लगा। वहाँ से मारवाड पधारे। वि० स० १९८१ की जेठ सुदि १० को प्रतापमलजी तथा पुष्करमुनिजी म० (धन्नालाल)

को जालोर में दीक्षा दे दी । अब आपका आखिरी वर्षावास जयपुर हुआ । कार्तिक सुदी १४ को बारह घण्टे के संथारे से स्वर्गवासी हुए ।

आपके शिष्य समुदाय—श्री पुष्कर मुनिजी म०, श्री हीरामुनिजी म०, श्री देवेन्द्रमुनि, गणेशमुनि, मेरूमुनिजी म० आदि शिष्य बने । शेष जीवन पराग में देखो सविस्तार है । मेरूमुनिजी महाराज के १३ महिने संयम पाला और जयपुर में स्वर्गवासी हुए ।

वर्तमान साधु सतिया जी का जीवन परिचय

० श्री पुष्कर मुनिजी म०

आपकी जन्मभूमि नान्देशमा, पिता सूरजमलजी, माता वालीबाई, विक्रम संवत १९८१ में दीक्षा ले ली । आप संस्कृत, मराठी, हिन्दी, मारवाड़ी आदि कई भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् हैं । मेवाड़, गुजरात, मारवाड़, आन्ध्र, महाराष्ट्र, मालवा, पंजाब में आपका विचरण हुआ है । श्रमण संघ में प्रथम शिक्षा मन्त्री फिर उपप्रवर्त्तक और वर्त्तमान में उपाध्याय पद पर शोभा पा रहे हैं ।

० पं० रत्न श्री हीरामुनिजी म० सा०

जन्मभूमि उदयपुर के समीप समीजा मोमट, दीक्षा वि० सं० १९९५ पोष-सुदि ५ के दिन । महास्थविर श्री ताराचन्द जी म० के नेश्राय में दीक्षा हुई । जीवन पराग, संघचर्या, जैन जीवन, विचार ज्योति, सुबाहुकुमार, महावीर चरित्र आदि पुस्तकें लिखी, वर्त्तमान में उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म० की महती कृपा से संयम साधना शिक्षण विकास में विशेष प्रगति हो रही है । संयम यात्रा के दौरान हिन्दी संस्कृत प्राकृत और अनेक भाषाओं का अध्ययन तथा प्रान्तीय भाषाओं जैसे मराठी, गुर्जर भाषा आदि का भी ज्ञान प्राप्त हुआ ।

० श्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न

जन्मभूमि उदयपुर, वि० सं० १९९७ चैत्र सुदि ३ को खण्डप ग्राम में दीक्षा हुई । आपश्री का गौरवर्ण ऊंचा कदम प्रकृति से द्राक्षा की तरह कोमल । वर्तमान में आप जैन साहित्य व दर्शन के मूर्धन्य विद्वान कहलाते हैं । आपकी माता प्रभावती जी, बहन पुष्पावती जी ने भी दीक्षा ली है । पिता जीवन सिंहजी बरडिया हैं । आपने अपने जीवन में दर्शन पर इतना लिखा जाता है कि स्थानकवासी समाज के साहित्यिक भंडार की काफी अभिवृद्धि हुई है । सम्प्रति आपश्री उपाध्याय श्री जी के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे हैं । पूज्य उपाध्याय श्री के अन्तेवासी, प्रधान शिष्य हैं । आपकी मधुर व्याख्यान शैली से हर प्रान्त तक पहुंच गई है । गुरु सेवा भक्ति में लीन बने हुए हैं ।

० श्री गणेश मुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न

आपकी जन्मभूमि उदयपुर के समीप वागपुरा झालावाड में है। वि० सं० २००३ की आश्विन विजय दशमी के दिन मालवा धारा नगरी में दीक्षा ग्रहण की। नन्हीं कोमल वय में चौदह वर्ष की आयु में संयम लेकर आप श्री ने साहित्यिक क्षेत्र में खूब उन्नति की है। कवि के साथ प्रवचन शैली में चतुर होने से वाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। आपने अपनी संयम यात्रा में हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुर्जर, मराठी आदि अनेक भाषाओं का अध्ययन किया है। आप अच्छे लेखक हैं, इन्द्र भूति गौतम, विचार दर्शन, भगवान महावीर के हजार उपदेश, उस तरह दर्जनों पुस्तकों की रचना की है। आप श्री जी के साथ मातुश्री जी प्रेमकुँवरजी ने भी संयम लिया।

० श्री जिनेन्द्र मुनिजी काव्यतीर्थ शास्त्री

आपकी जन्मभूमि उदयपुर के निकट सोमट पटावली है। जाति प्रजापत (कुम्हार) में जन्म होने पर भी जिनेश्वरों के वचनों में भारी श्रद्धालु बने। प्रकृति के कोमल, मधुर, मिलनसार, मधुर सुकण्ठी गायक, गुरु परम भक्त, सेवानिष्ठ है। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी के धुरन्धर विद्वान हैं। व्याख्यान शैली आपकी मंजी हुई है। आपकी कविता और लेख लिखने में अच्छी रुचि है। ऐसी आपकी अनेक रचनाएं है। आपकी दीक्षा जालोर में २०२० में हुई थी।

० श्री रमेश मुनिजी शास्त्री

आपकी जन्मभूमि मारवाड में वा है। आपके पिता जी उदयपुर अधिक रहते थे उदयपुर में वैराग्य प्रगट किया, और आपकी दीक्षा सिवाणा में हुई है।

० श्री राजेन्द्र मुनिजी शास्त्री

आप रमेश मुनिजी के सहोदर छोटे भाई हैं। आपने अपने भाई के साथ ही संयम लिया। शिक्षा दीक्षा आदि उन्हीं की तरह हुए। आपकी विशेषता है गुरु भक्ति। आप अच्छे लेखक हैं। आप दोनों भाई तथा माताजी की दीक्षा साथ हुई है।

० तरुण तपस्वी प्रवीण मुनिजी म० प्रभाकर

आपकी जन्मभूमि मेवाड रायपुर, पिताजी का नाम सुरजमलजी माताजी मलुबाई ओसवाल, वर्डी गोत्र, आपकी दीक्षा साण्डेराव मारवाड वि० सं० २०२८ पौष वदि १ को आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषिजी के कर कमलों में उस हुई।

साधु सम्मेलन में हुई जिसमें मरुधर केसरी मिश्रीमलजी म०, उपाध्याय पुष्कर मुनिजी म०, श्री ब्रजलालजी म०, श्री अम्बालालजी म०, कन्हैयालालजी म० 'कमल', श्री जीतमलजी म० आदि सन्त, सतीयाँ शीलकुंवरजी म० सहित १०८ के लगभग ठाणा विराजमान थे। आप श्री गणेशमुनिजी म० के नेश्राय में शिष्य हुए। वर्तमान में श्री हीरामुनिजी म० की सेवा में अध्ययन कर रहे हैं। आप अपने गुरु जी के अन्तेवासी शिष्य हैं। आपको तपस्या के प्रति अच्छी रुचि है। आचार्य भगवन्त ने मास खमण की तपस्या में आपको तरुण तपस्वी की पदवी से अलकृत किया। ज्ञानार्जन के साथ व्याख्यान में भी रुचि रखते हैं तथा प्रवचन फरमाते हैं। आपके ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्री जिनेन्द्र मुनिजी म० से ज्ञान ध्यान का सहयोग अच्छा रहा तथा श्री हीरा मुनिजी म० की सेवा में भी रहकर ज्ञान ध्यान अच्छे ढग से कर रहे हैं।

० नव दीक्षित दिनेश मुनिजी

आपकी जन्मभूमि उदयपुर के निकट जालावाड देवास गाव है। पिता का नाम रतनलाल जी। आपने अजमेर २०३० विजयदशमी के दिन दीक्षा ली। गुरु भक्ति गुरु सेवा और ज्ञान ध्यान मन लगाकर कर रहे हैं।

० नव दीक्षित मुनि भगवतीसिंह

जन्म वि० स० २०१७ जेठ वदी ११ सोजत के निकटवर्ती गाव सम्राड। पिता मगलसिंह जी (राजपूत) माट्टी माता कानकुँवर बाई राठोड। ससार को असार जानकर सयम धारण करने की उत्कण्ठा जगी। प० रत्न पूज्य श्री हीरा मुनि जी म० सा० की सेवा मे डेढ वर्ष रहकर अध्ययन आदि किया व जोधपुर मे वि० स० २०३५ मे मे आसोज सुदी ७ के दिन दीक्षा अगीकार की।

वर्त्तमान सती समुदाय का परिचय

० शोभागकुंवरजी म०

आपकी वि० स० १९७४ की दीक्षा, जन्म उदयपुर। अभी उदयपुर ही विराजे हैं। थोकडे बोल चाल मे आपकी अच्छी गति है। मधुर व्याख्यानी भी हैं।

० पण्डिता शीलकुँवरजी महाराज

आपकी जन्म भूमि उदयपुर के निकट जालावाड मे नाकाड है। मातुश्री श्री शम्भु कुवर जी म० के साथ सयम अगीकार किया। आपकी दीक्षा १९७२ में नावट गाव में हुई। आपने अपने सयमी जीवन में आत्मोन्नति तथा स्वाध्याय की साधना में खूब प्रगति की है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं का गूढ अध्ययन किया है। आगमो में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी, सुखविपाक

आदि अनेक शास्त्र कण्ठाग्र किये तथा बत्तीसो आगमो का खूब मन्थन किया, स्तोक (थोकडे) ५०० पांचसो के करीब कण्ठाग्र है। आपकी वाणी मे जादू है। श्रोता व्याख्यान सुनकर त्याग वैराग्य के मार्ग मे बढते है। आप का शुद्ध व त्यागी जीवन वैराग्य की आधारशिला पर निर्मित है। भव्यो को त्याग की ओर मोड लेने मे आप दक्ष है, व जन-जीवन को धर्ममय बनाने मे आप बहुत कुशल हैं— आपकी यह बडी विशेषता है। जहा भी आप विराजते है दर्शनार्थियो का तांता लगा रहता है। आपका विहार मेवाड, मारवाड, मालवा आदि प्रान्तो मे हुआ है। वर्तमान मे आप सिवाणची मे विराज रहे हैं। हीरा मुनिजी को देहाती जीवन मे मुक्ति दिलाकर जैन जीवन बनाने मे आपश्री का प्रथम उपकार है। आपश्री से ही वैराग्य पाकर महास्थविरजी श्री ताराचन्दजी म० के श्री चरणो मे प० रत्न हीरामुनिजी ने संयम ग्रहण किया। इसी प्रकार आपश्री ने अनेक भूले हुए भव्यात्माओ को जैनदर्शन का महामार्ग बतलाया है। वर्तमान मे आपके पास मे एक बहिन बोध पाकर जालोर मे दीक्षा ले रही है।

० सुन्दरकुंवरजी महाराज

जन्मभूमि गोगुन्दा १९८९ मे दीक्षा हुई। वर्तमान मे मारवाड मे विचरण कर रही हैं। व्याख्यान वाणी ठीक है।

० मोहनकुंवरजी महाराज

जन्मभूमि गोगुन्दा, दीक्षा १९९५ मे और ज्ञान ध्यान व्याख्यान सेवा आदि सभी मे आपकी गति उत्तम है।

० कुसुमवतीजी महाराज

जन्मभूमि देलवाडा दीक्षा १९९३ मे फाल्गुन सुदि १० को हुई। आप शान्त स्वभावी संस्कृत प्राकृत की अच्छी विदुषी है। आपश्री की व्याख्यान शैली बडी रोचक है। वर्तमान मे ठाणा ८ से दिल्ली मे विचरण कर रही हैं। आपने अपनी माता कैलासकुंवरजी के साथ दीक्षा ली।

० पुष्पवतीजी म०

आपकी जन्मभूमि उदयपुर शहर, दीक्षा १९९८ मे हुई। शिक्षा व्याकरण मे व्याकरण मध्यमा, काव्य मध्यमा, हिन्दी साहित्यरत्न आदि। अध्ययन, व्याख्यान बढिया है। अभी उदयपुर मे है। श्री देवेन्द्रमुनिजी की आप संसार पक्षीय बहिन लगती है।

० प्रभावतीजी म०

जन्म गोगुन्दा, दीक्षा १९९७ आषाढ सुदि ३ उदयपुर में हुई। आपका बोल चाल स्तोक का ज्ञान अच्छा है। आपका जीवन त्यागमय है और देवेन्द्रमुनिजी की आप माताजी है। सुसराल उदयपुर का है।

० प्रेमकुँवरजी म०

आपका जन्म वागपुरा, सुसराल करणपुर, दीक्षा वि० सं० २००२ जेठ वदि ११ के दिन हुई। आप पं० श्री गणेश मुनिजी म० की मातुश्री है। वर्तमान में उदयपुर में प्रचार कर रही है।

० शायरकुंवरजी म०

जन्मभूमि देलवाडा, दीक्षा २००५, ज्ञान ध्यान अच्छा है।

० दयाकुंवरजी म०

जन्मभूमि रावलिया, दीक्षा २००६। आपने अपने जीवन में कठोर तप किया तीन मासखमण किये। छोटी बडी फुटकर अनेक तपस्याएँ की है। तपस्या में आपको अच्छी प्रीति है।

० विदुषी चन्द्रावतीजी म०

आपकी जन्मभूमि उदयपुर। आपने अपनी माताजी के साथ अर्थात् माता-पुत्री दोनों ने एक साथ संयम ग्रहण किया। आप अच्छी विदुषी सती है लेखिका भी है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी का खूब अध्ययन किया। थोकडे, बोल व शास्त्र कण्ठस्थ किये। आपकी व्याख्यान शैली अनूठी है।

० महासती खमाणगजी

जन्मभूमि कराई, दीक्षा वाटी में २००६ की, आप सेवाभावी उपशान्तात्मा हैं।

० विदुषी चन्दनबालाजी म०

आपका जन्म स्थान (राज०) उदयपुर, दीक्षा २००९ में छोटी बालावय में ही हो गई थी। इस छोटी सी उमरिया में आपने अपनी गुरुणीजी म० की सेवा में रहकर जैन सिद्धान्ताचार्य की परीक्षा दी। हिन्दी संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं पर आपका अधिकार है। कई शास्त्र व अनेक थोकडे आपने कण्ठाग्र किये। व्याख्यान शैली बडी ही विलक्षणता पूर्ण है। आपकी प्रकृति कोमल, वाणी अमृत जैसी है। आप अपने गुरुणीजी की अन्तेवासी शिष्याओं में से एक प्रमुख शिष्या है। आप अच्छी कवि यत्री, सुलेखिका है। कई भजन स्तवन थोकडों की पुस्तकें लिखी है। आप अपने विहारों में प्रचार और प्रसार कर रही है।

० साधनाजी म०

आपका जन्म मारवा ससुराल समदडी है। आप अपने गुरुणीजी म० की सेवा बड़ी दिलचस्पी से करते हुए यश प्राप्त कर रही है।

० छेलणाजी म०

आपकी जन्मभूमि मेवाड़ मायरागाव, ससुराल तिरपाल, दीक्षा भीलवाड़ा मे हुई। आप यथाविधि गुरुणीजी की सेवा करती हैं। श्रीसुन्दर कुंवरजी की सेवा मे रह कर ज्ञानार्जन कर रही है। व्याख्यान की योग्यता भी प्राप्त कर रही है।

० उमरावकुंवरजी म०

जन्मभूमि गढ़सिवाना। दीक्षा वि० स० १९९४ मे ली। आप अच्छी प्रभावशालिनी सती हैं। थोकडे, बोल चाल खूब याद हैं।

० सुकनोजी म०

आपकी दीक्षा १९९६ पादू मे हुई। सेवार्थी तथा ज्ञान, ध्यान व्याख्यान मे अच्छी योग्यता है।

० सुन्दरकुंवरजी म०

जन्मभूमि पीपाड़ शहर, ससुराल कारसा... । आप ज्ञान, ध्यान और सेवाभावी सती हैं। सबके ऊपर अच्छा अनुशासन रखती है व आत्मनिष्ठ है।

० प्रेमकुंवरजी म० (वक्षुजी)

आपका ससुराल गढ सिवाना है। मां बेटी दोनो ने साथ दीक्षा लेकर ज्ञान ध्यान का समीचीन अध्ययन किया। चौपाई सुनाने मे आपकी शैली अच्छी है।

० विमलवतीजी म०

मां बेटी दोनो ने साथ दीक्षा ली। छोटी उमर मे दीक्षा हो जाने से संस्कृत प्राकृत हिन्दी का ठीक अध्ययन किया। कई वर्षों के बाद बम्बई मे रहकर हिन्दी साहित्य का बोध किया। व्याख्यान की शैली सुमधुर है। कुछ पुस्तके भी लिखी है।

० मदनकुंवरजी म०

आपका जन्म स्थान सण्डप और ससुराल अजित। ज्ञान ध्यान और सेवा भावों मे आपका नाम समुज्वल है। आप सरल शान्त स्वभावी सती है।

० ज्ञानप्रभाजी म०

जन्मभूमि महाराष्ट्र बडगाव, पिता सिद्धरामजी, जन्म धर्मोद, सानुरी बाई महाराष्ट्रियन होते हुए भी मारवाडी मे बोल लेती व समझ लेती है। आपकी सेवा

केलवारोड महाराष्ट्र मे वि० स० २०२३ मे हुई। आपके पिताजी तो बडे धर्मात्मा है। वर्षो से हर एक चौमासे मे एकान्तर करते है।

० श्रीमतीजी म०

जन्मभूमि गोगुन्दा, सुसराल उदयपुर। पति पत्नी दोनो ने एक साथ सयम ग्रहण किया। वि० स० १९९८ नाथद्वारा मे यह मगल कार्य सम्पन्न हुआ। ससार पक्षीय पतिदेव का नाम शान्ति मुनिजी म० है।

० विलम कुंवरजी म०

जन्मभूमि यशवन्तगढ, दीक्षा १९९८ मे। वर्तमान मे आप उदयपुर शहर मे धर्मप्रचार कर रही है। आप बडी सेवाभावी सती है।

० हेमवतीजी म०

पीअर नान्देशमा, सुसराल सेमल। ज्ञान-ध्यान के साथ ही सेवाभावी सती है। आप वर्तमान मे उदयपुर ठाणापति सतीयाजी की सेवा बजा रही है। आप आत्मार्थी सती है। सयम का पूरा कठका है। उत्कृष्ट भावो मे सयम का पालन कर रही है।

० पान्नाजी म०

आप वर्तमान मे जालोर मे ठाणापति विराज रही है। दीक्षा २००८ जालोर मे हुई।

० सीताजी म०

आपका मायका कारणा, सुसराल गढसिवाना मे है। दीक्षा १९९४ मे सिवाना मे हुई। आप अभी मोकलसर ठाणापति के रूप मे विराज रहे है।

० सुकनोजी म०

मायका गढ सिवाना सुसराल पादरू मे है। दीक्षा २००२ मे हुई। प ज्ञानी ध्यानी और सेवा-भावी है। सिताजी की सेवा खूब कर रही है।

० कौशल्याजी म०

आपकी जन्मभूमि नान्देशमा है। आप बाल ब्रह्मचारिणी है। दीक्षा २००५ वैशाख सुदि ५ को हुई। आपने ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया। आप विदुषी सती है। आपका कण्ठ कोयल के समान भारत कोकिला की पदवी से अलकृत है। जैन सिद्धान्त आचार्य की परीक्षा दी है। आप महान पण्डिता है। आपके भाई सा० ने भी सयम लिया, नाम भगवती मुनिजी है। वर्तमान बम्बई घाटकोपार अध्ययन के लिए विराजे हुए है।

० विनयवतीजी म०

आपका जन्म और सुसराल पदराडा गाँव का है। आप प्रकृति से बहुत ही कोमल हैं। मिलनसार सती हैं, पढ़ी लिखी हैं और सेवाभावी हैं।

० प्रियदर्शनाजी म०

आपकी जन्मभूमि खास उदयपुर है। आप अच्छी पण्डिता विदुषी सतीजी हैं। व्याख्यान शैली बहुत ही सुहावनी है। आपका प्रवचन त्याग प्रधान है।

(१) एजाजी (२) श्री छतरकुँवर जी म० (३) रतनकुँवर जी भी उदयपुर ठाणापति से विराज रही हैं। आपकी त्याग तपस्या सयम साधना अनमोल है।

० चारित्रप्रभाजी म०

जन्म नाम हीरा कुमारी, जन्म स्थल वगडुन्दा, जन्म वि० सवत् २००४ हरियाली अमावस्या। दीक्षा वि० स० २०२६ का फाल्गुन सुदी ५ नाथद्वारा। श्री कुसुम वती जी म० सा० के नेश्राय मे, माता हजाबाई, पिता कन्हैयालाल जी छाजेड़ भाई गोपीलालजी, दिलखुशलाल जी, अध्ययन साहित्यरत्न (दर्शन), शास्त्री, सिद्धान्त शास्त्री।

० दिव्यप्रभाजी म०

जन्मभूमि उदयपुर, पिता कन्हैयालाल जी सियाल, माता चौथबाई जी, भाई रणजीत सिंह, यशवन्त सिंहजी, दीक्षा पूर्व नाम "स्नेहलता" २०१४ का जन्म मगसिर वदि १०। दीक्षा अजमेर २०३० कार्तिक सुदी १३ श्री कुसुमवतीजी के नेश्राय मे, शिक्षा दर्शनाचार्य और साहित्यरत्न।

० दर्शनप्रभाजी म०

जन्मस्थल देहली, जन्म तिथि २३-१०-५५ दीक्षा तिथि २०-२-७५ ब्यावर गुरुणी जी श्री चारित्रप्रभाजी, माता कमलादेवी जैन, पिता रतनलाल जी लोढा, बाबू सतीश, राजेन्द्र, नरेन्द्र, विजेन्द्र ये आपके भाई व बहिन शकुन्तला। अध्ययन साहित्यरत्न, जैन सिद्धान्त शास्त्री।

० दर्शन प्रभाजी ! माता सुदर्शन प्रभाजी म०

जन्मभूमि नन्दूरबार (खानदेश), पिता पूनमचन्दजी सा० सतीन (लोढा) आप दोनो माता पुत्री ने श्री कौशल्या कुँवर महासती जी की नेश्राय मे दीक्षा ली। वर्तमान घाटकोपर बम्बई मे श्रमणी विद्यापीठ मे पढ़ रही है।

० चन्दनप्रभाजी काठियावाड़ी म०

जन्मभूमि अहमदाबाद, पिता तादूभाई मेहता, माता कनन बहिन, वि० स० २०३४ का माघ शुक्ला पञ्चमी की दीक्षा अहमदाबाद मे, आप मलयप्रभाजी की चेली है व उमराव जी की पोती चेली है। शिक्षा सिद्धान्तशास्त्री तथा थोकडा बोल चाल का ज्ञान बहुत है।

० सुमतिप्रभाजी

वर्तमान नाम सुमित्रा बहिन, पिता मिश्रीमलजी छाजेड, माँ उकीबाई, दीक्षा वि० स० २०३५ का जेष्ठ सुदी ३ गढ सिवाना, भाई लालचन्दजी, अध्ययन जैन सिद्धान्त प्रभाकर, स्तोक बोल चाल और शास्त्रीय ज्ञान अच्छा है।

० देवेन्द्रप्रभाजी म०

जन्मस्थान जालोर गढ, पिता भूलचन्दजी माता उगमबाई, दीक्षा वि० स० २०३४ फालगुन सुदी ६ के दिन जालोर मे। गुरुणी श्री शीलकुँवर जी म० सा० की पोती चेली और चन्दन बालाजी की प्रधान चेली है। आपको शास्त्रो का गहन ज्ञान है और थोकडे तो अनगिनत याद हैं। स्कूली अध्ययन मेट्रिक तक का है।